UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186424

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 630
S 58 G.

Accession No. H 3448

Author सिंह, संत बहादुर तथा सिंह, अनुप्रसाद

Title गहन रेवती 1961.

This book should be returned on or before the date last marked below.

गहन खेती

हिन्दी समिति ग्रन्थमाला—४६

गहन खेती

लेखक

डा० सन्त बहादुर सिंह,

श्री भानुप्रताप सिंह

प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग

उत्तर प्रदेश

प्रथम संस्करण

१९६१

मुद्रक

पं० पृथ्वीनाथ भार्गव,

भार्गव भूषण प्रेस, गायघाट, वाराणसी

प्रकाशकीय

खाद्यान्नों के प्रति एकड़ उत्पादन में भारत अन्य छोटे-छोटे देशों तक से बहुत पिछड़ा हुआ है। यहाँ की विशाल जनसंख्या की आवश्यकता को देखते हुए खाद्य वस्तुओं की पैदावार पर्याप्त नहीं है, इसीसे हमें प्रतिवर्ष करोड़ों रुपये का अन्न बाहर से मँगाना पड़ता है। यह असन्तोषजनक स्थिति तभी दूर हो सकती है जब हम "गहनखेती" का सहारा लें। देश में कृषियोग्य भूमि का क्षेत्र तो प्रायः सीमित है, अतः उसका विस्तार आंशिक रूप से ही संभव है, किन्तु श्रम, पूँजी और कृषिज्ञान की सहायता से प्रति एकड़ उपज में यथेष्ट वृद्धि की जा सकती है। जापान की आबादी घनी है और भूमि की वहाँ कमी है, फिर भी कृषि के उन्नत तरीकों पर ध्यान देकर उसने अपनी पैदावार यथेष्ट बढ़ा ली है। परिणामस्वरूप वहाँ प्रति एकड़ गेहूँ की उपज भारत की तुलना में चौगुनी तथा धान की तिगुनी से भी अधिक है।

यह पुस्तक हिन्दी समिति ग्रन्थमाला का ४६ वाँ पुष्प है। इसके प्रणेता श्री सन्तबहादुर सिंह तथा श्री भानुप्रताप सिंह अपने विषय के अच्छे जानकार और अनुभवी विद्वान् हैं। उन्होंने गहन खेती के विविध साधनों और उपायों का वर्णन बहुत ही सरल भाषा में और सुलझे हुए ढंग से किया है। हमारे देश में इस नूतन प्रयोग से लाभ उठाने की पर्याप्त संभावना है, अतः इसका सहारा लेकर हम निश्चित रूप से खाद्यान्न की कमी पूरी कर सकते हैं, यहाँ तक कि कुछ समय बाद हम उसका एक अंश बाहर भेज सकने की स्थिति में भी हो सकते हैं, जैसा कि लेखकद्वय ने लिखा है।

अपराजिता प्रसाद सिंह
सचिव, हिन्दी समिति

"आबादी तेजी से बढ़ेगी, पहले से ज्यादा तेजी से, और वह समय दूर नहीं, जब कम से कम भूमि से निर्वाह कर सकने की कला ही सब कलाओं से मूल्यवान् मानी जायगी। जिस समाज का हर एक आदमी यह कला सीखे हुए है, वह किसी भी तरह के दमन का शिकार कभी नहीं हो सकता। ऐसा समाज शासकों, महाजनों और जमींदारों, सबसे मुक्त रहकर चलेगा....।"

--अब्राहम लिंकन (१८५९)

भूमिका

हमारे देश की लगभग ७०% जनसंख्या कृषि-उत्पादन के कार्य में लगी हुई है। इसमें से अधिकांश छोटी-छोटी जोतों के किसान हैं। समस्त देश के किसानों की जोत के क्षेत्रफल का औसत साढ़े सात एकड़ है। उत्तर प्रदेश के किसानों की जोत का औसत केवल ५.३ एकड़ है। हमारी औसत पैदावार प्रति एकड़ साढ़े सात मन है। इतनी कम पैदावार लेकर इतनी छोटी जोत पर एक किसान-परिवार का सुख से जीवन निर्वाह करना कठिन है। देश में कृषिभूमि का क्षेत्रफल भी सीमित है। अतः यदि हमें अपने देशवासियों का जीवन-स्तर ऊँचा उठाना है, तो स्पष्ट है कि हम ऐसा केवल प्रति एकड़ पैदावार बढ़ाकर ही कर सकते हैं।

प्रति एकड़ उत्पादन बढ़ाने के लिए अधिक श्रम, पूँजी और कृषि-ज्ञान की आवश्यकता होती है। जब इन तीनों का एक साथ अधिक मात्रा में प्रयोग करके खेती की जाती है, तो ऐसी खेती को **गहन खेती** कहते हैं। बहुत लोग छोटे पैमाने की खेती और गहन खेती को पर्यायवाची समझते हैं। परन्तु उनका ऐसा समझना ठीक नहीं है। छोटे पैमाने की खेती में यदि श्रम, पूँजी और कृषि-ज्ञान कम लगाया जाय, तो उससे न तो पैदावार ही अधिक होगी और न उसे गहन खेती ही कहा जा सकता है। इसके विपरीत यदि बड़े पैमाने का किसान अपने पूरे क्षेत्रफल पर अधिक श्रम, पूँजी और कृषि-ज्ञान का प्रयोग करता है, तो उसमें प्रति एकड़ पैदावार अधिक होगी और उसे निःसंदेह **गहन खेती** कहा जा सकता है।

लेखक को सबसे अच्छी गहन खेती का उदाहरण जो मालूम है, वह एक बड़े किसान का ६०० एकड़ का फार्म है। यह किसान देश की औसत प्रति एकड़ पैदावार का लगभग चौगुना अपने पूरे क्षेत्रफल पर पैदा करता है। इससे यह स्पष्ट है कि **गहन खेती छोटे और बड़े दोनों प्रकार के किसान कर**

सकते हैं। गहन खेती के लिए भूमि के अतिरिक्त अन्य तीनों साधन, अर्थात् श्रम, पूँजी और कृषि-ज्ञान का एक साथ लगना आवश्यक है। इन तीनों में से किसी एक के अभाव में जो खेती की जाती है, उसे गहन खेती नहीं कहा जा सकता और न उससे पूरी पैदावार ही मिल सकती है।

बहुत-से लेखकों ने गहन खेती को श्रम-प्रधान खेती कहा है, परन्तु यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि अधिक उत्पादन के लिए श्रम के अतिरिक्त पूँजी और कृषि-ज्ञान की भी आवश्यकता पड़ती है। केवल श्रम द्वारा गहन खेती सम्भव नहीं। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, हमारे देश की प्रति एकड़ पैदावार बहुत ही कम है। गहन खेती द्वारा इसको चौगुना तक बढ़ाया जा सकता है। अन्य देशों में, विशेष कर जापान में, गहन खेती द्वारा कृषि में बड़ी उन्नति की गयी है। हमारे देश में भी यदि किसान गहन खेती को अपना सकें, तो हमारा देश खाद्यान्न में न केवल स्वावलम्बी बन सकता है, अपितु खाद्यान्न निर्यात करनेवाले देशों में प्रमुख स्थान ग्रहण कर सकता है।

जहाँ हमारे लिए यह शर्म की बात है कि प्रति एकड़ उत्पादन में हमारा देश लगभग सबसे पीछे है, वहाँ यह आशा का कारण भी है, क्योंकि ७–८ मन प्रति एकड़ को बढ़ाकर १५–१६ मन कर लेना उतना कठिन नहीं है, जितना ४० मन को बढ़ाकर ४५ मन प्रति एकड़ करना। तात्पर्य यह है कि अपने देश में कृषि-उत्पादन बढ़ाने की अभी बहुत सम्भावना है। सौभाग्य से हमारे देश का जलवायु भी कृषि-उत्पादन के लिए बहुत ही उपयुक्त है। बहुत से अन्य देशों में इतनी ठंड पड़ती है कि पौधे जाड़ों में बढ़ नहीं सकते। परन्तु हमारे देश में सिंचाई द्वारा साल के बारहों महीने खेती की जा सकती है।

दूसरी आशाजनक बात यह है कि हमारे देश के अच्छे किसानों की पैदावार किसी देश के अच्छे किसानों से कम नहीं है। दुर्भाग्य इतना ही है कि हमारे देश में अच्छे किसानों की संख्या बहुत कम है और इसी लिए हमारी औसत पैदावार कम हो जाती है। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि हमारे देश के अधिकांश किसान निरक्षर होने के कारण कृषि-विज्ञान की बुनियादी बातों को नहीं समझते, और उनके पास धन की भी इतनी कमी है कि वे आवश्यक पूँजी नहीं लगा सकते। कृषि-ज्ञान और पूँजी के अभाव को बिना पूरा किये

कृषि-उत्पादन में वृद्धि की आशा करना व्यर्थ है। इस पुस्तक को लिखने का उद्देश्य कृषि-ज्ञान की कमी को कुछ हद तक दूर करना है। इसको पढ़कर यदि थोड़े से किसान भी गहन खेती द्वारा अपनी पैदावार बढ़ा सकने में सफल हो गये, तो इस पुस्तक के लिखने का परिश्रम सफल होगा।

भारतीय और जापानी कृषि की तुलना

गहन खेती और साधारण खेती की पैदावार तथा उनमें लगनेवाली पूँजी, श्रम और कृषि-ज्ञान की तुलना के लिए हम नीचे जापान तथा भारत की कृषि के कुछ आँकड़े दे रहे हैं। इन आँकड़ों से गहन खेती की आवश्यकताओं का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है।

उत्पादन			
जापान		भारत	
फसल	मन प्रति एकड़	फसल	मन प्रति एकड़
गेहूँ	२७.७	गेहूँ	७.७
ज्वार-बाजरा	१४.२	ज्वार-बाजरा	४.१
धान	४५.८	धान	१४.७
आलू	१४३.४	आलू	६५.२
मूँगफली	१९.६	मूँगफली	८.४
तम्बाकू	२१.८	तम्बाकू	७.७
रुई	१.४	रुई	१.०८
सिंचाई			
९५% सिंचित क्षेत्रफल		२०% सिंचित क्षेत्रफल	

खाद			
जापान		**भारत**	
नत्रजनीय उर्वरक की खपत		(नत्रजन मीट्रिक टन)	
१९५४–५५	६,३२,५००	१९५४–५५	७९,६००
१९५६–५७	७,७०,६००	१९५६–५७	८२,०००
फास्फेरिक खादों की खपत		(पी२ वो५ मीट्रिक टन)	
१९५४–५५	३,१४,०००	१९५४–५५	१४,४००
१९५६–५७	३,८१,९००	१९५६–५७	१४,०००

सूचना––भारत की कृषिभूमि का क्षेत्रफल जापान की कृषिभूमि के क्षेत्रफल की तुलना में २६ गुना बड़ा है, परन्तु जापान में नत्रजनीय उर्वरक का प्रयोग ९ गुना और फास्फेरिक खादों का २५ गुना अधिक है। इस प्रकार से जापान में भारत की तुलना में प्रति एकड़ नाइट्रोजन औसतन २६×९=२३४ गुना और फासफोरस २६×२५=६५० गुना अधिक प्रयोग में लाया जाता है। यह हिसाब केवल रासायनिक खादों का है, इसके अतिरिक्त कम्पोस्ट और मल-मूत्र इत्यादि की खाद भी जापानी किसान भारतीय किसान की तुलना में कहीं अधिक प्रयोग करते हैं।

शिक्षा	
जापान	**भारत**
शत प्रतिशत कृषक पढ़-लिख सकते हैं, कृषि-विज्ञान की प्रारंभिक बातें समझ सकते हैं।	अधिकांश कृषक पढ़-लिख नहीं सकते और कृषि-विज्ञान की जानकारी सम्भवतः १% किसानों को भी नहीं है।
औसत कृषक की पूँजी	
जापान के औसत किसान की पूँजी १३,२४,३०० येन है, जो लगभग १७,००० रुपये के बराबर है।	भारतीय औसत कृषक की पूँजी के आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं। पाठकगण स्वयं अपने पड़ोस के किसानों की दशा से अनुमान लगा लें।

शक्ति का प्रयोग	
जापान	**भारत**
जापान का औसत कृषक .२२ हॉर्स पावर से काम लेता है।	भारतीय कृषक .१४ हॉर्स पावर से काम लेता है।

उत्पादन विक्रय	
कृषि वस्तुओं के मूल्य कृषि और औद्योगिक वस्तुओं के मूल्यों में संतुलन बनाये रखने की दृष्टि से निश्चित किये जाते हैं। विक्रय सहकारी संगठनों द्वारा होता है। अतः माल को उपभोक्ता तक पहुँचाने का व्यय कम पड़ता है।	कृषि-वस्तुओं के मूल्य प्रायः औद्योगिक वस्तुओं के मूल्यों की तुलना में कम होते हैं। विक्रय की कोई उचित व्यवस्था न होने के कारण, माल को उपभोक्ता तक पहुँचाने में व्यय अधिक पड़ता है।

विषय-सूची

भूमिका ... —७—

अध्याय		पृष्ठ-संख्या
१. कृषि-उत्पादन बढ़ाने के उपाय	...	१
२. खाद और भूमिसुरक्षा	...	३
३. सिंचाई	...	४५
४. उन्नत बीज	...	५३
५. फसल सुरक्षा	...	६१
६. फसलों को पाँतों में बोना	...	७६
७. मिश्रित खेती	...	८२
८. कृषि में समय का महत्त्व	...	८८
९. फसलें	...	९३
क—गन्ने की खेती	...	९३
ख—धान की खेती	...	१०९
ग—गेहूँ की खेती	...	१२४
घ—मक्का	...	१३५
ङ—माइलो की खेती	...	१३८
च—मूँगफली की खेती	...	१४०
छ—चेना सावाँ की खेती	...	१४४
ज—बरसीम	...	१४७
झ—तम्बाकू	...	१५१
१०. फल और तरकारियों की खेती	...	१५८
क—आलू की खेती	...	१५८
ख—अरवी या घुइयाँ	...	१७१
ग—बण्डा	...	१७३

अध्याय		पृष्ठ-संख्या
	घ—प्याज, लहसुन	... १७४
	ङ—लहसुन	... १७६
	च—टमाटर	... १७७
	छ—बैंगन, मिरच	... १८०
	ज—गोभी	... १८१
	झ—परवल	... १८८
	ञ—केला	... १८६
	ट—पपीता	... १९१
	ठ—अनन्नास	... १९६
	ड—निम्बू जाति के फलों की खेती	... २०१
११.	फसलों के कुछ लाभदायक हेर-फेर	... २०९
१२.	उत्तर प्रदेश का औसत किसान सुखी कैसे हो ?	... २२८
	परिशिष्ट	... २३६

चित्र-सूची

१.	पैदावार बढ़ाने के आठ उपाय	... २
२.	उत्पादन उसी स्तर तक होगा जहाँ तक कोई भी न्यूनतम पोषक तत्त्व रहेगा	... ... ४
३.	दलहन जाति के एक पौधे की जड़ (जीवाणु निवास-ग्रन्थियुक्त)	१२
४.	गहरी जड़ोंवाली हरी खाद की फसलें पोषक तत्त्वों को ऊपर से नीचे लाती हैं	... १५
५.	मक्का के पूरे जीवनकाल में पोषक तत्त्वों की आवश्यकता एक-सी नहीं रहती	... २८
५. (क)*	नत्रजन की कमी दिखानेवाला चित्र	... ३०
५. (ख)*	फास्फोरस की कमी से पत्तियों में बैंगनीपन आ जाता है	... ३२

५. (ग) * पोटैशियम की अधिक कमी होने से पत्तियों के किनारे झुलसे हुए-से दिखाई देते हैं ... ३४
६. खाद की उपयोगिता जाँचने का सरल ढंग ... ३१
७. पानी की एक बूँद, भूमि से टकराते समय ... ३८
८. मिट्टी की गहराई का प्रति एकड़ पैदावार पर प्रभाव ... ४२
९. विभिन्न सस्यचक्रों का भूमि के कटाव पर प्रभाव ... ४३
१०. हाथे द्वारा सिचाई का ढंग ... ५०
११. भूमि की नमी पर गोबर की खाद का प्रभाव ... ५१
१२. रोगी पौधों के विनाश द्वारा आलू के कुष्ठ रोग की रोक-थाम ... ६५
१३ क––बाग में पयाल द्वारा मल्चिंग की गयी ... ७३
१३ ख––बाग में हरी खाद के लिए फसल बोयी गयी है ... ७४
१३ ग––गुड़ाई-जुताई से बाग को साफ किया गया ... ७४
१४.* बाईं ओर प्लास्टिक मल्चिंग, दाहिनी ओर बिना मल्चिंग ... ७३
१५. खेत में सीधी पाँत बनाने का ढंग ... ७८
१६. पाँतवार बोवाई ... ८०
१७. भारतीय कृषि की गिरावट का चक्र ... ८४
१८. खेत में गड्ढे बनाने की विधि ... ९९
१९. प्रत्येक गड्ढे में गन्ने के छः टुकड़े बोये जाते हैं ... १००
२०. प्रति चार गड्ढों के बीच एक नया गड्ढा ... १०१
२१. लाल सिरवाले गन्ने के टुकड़ों को अलग करना ... १०३
२२. जापानी किसान जापानी धान के खेत में ... ११५
२३. धान के खेत में अमोनिया स्वतन्त्र नाइट्रोजन में परिवर्तित हो जाता है ... ११६
२४. अगहनी धान पर पिछड़कर रोपाई करने का प्रभाव ... १२१
२५. जापानी वीडर का प्रयोग ... १२२
२६. बोआई के लिए डिबलर का प्रयोग ... १२८
२७. डिबलिंग ढंग के प्रयोग से उत्पन्न गेहूँ के पौधे ... १३०

२८. गेहूँ के बढ़ने की रफ्तार ... १३३
२९. माइलो (अमेरिकन ज्वार) के पौधे ... १३९
३०. चेना सावाँ की फसल ... १४५
३१. बायीं ओर देशी तथा दायीं ओर कलकतिया तंबाकू के पत्ते ... १५३
३२.* तंबाकू के पौधों में फूलों को ऊपर से तोड़ देना चाहिए १५९
३३. आलू के स्वस्थ और रोगग्रस्त पौधे और उनकी उपज ... १५९
३४. मल्चिग किये और बिना मल्चिग किये खेत मे आलू की पैदावार १६९
३५. बंडे की खेती में नालियाँ बनाने का तरीका ... १७३
३६. वर्षा ऋतु मे गोभी की बेहन उगाने का ढंग ... १८३
३७. बोने के लिए मिट्टी के लोंदे पर लिपटी हुई परवल की लतर ... १८५
३८. केले की दो प्रकार की पुत्तियाँ ... १८९
३९. पपीते के फलों की कौओं से रक्षा के लिए फलों के बीच-बीच और ऊपर की कुछ पत्तियाँ तोड़ देनी चाहिए ... १९५
४०. मूँगफली की हर पाँच लाइनों के बाद अरहर की एक लाइन ... २११
४१. अरहर के पौधे इस प्रकार लगाये जायँ कि वे नालियों की मेड़ों पर पड़ें ... २१२
४२. गेहूँ-बरसीम का खेत, गेहूँ कटने के बाद ... २१६
४३. गन्ने की उपज, गेहूँ-बरसीम वाले खेत में ... २१७
४४. आलू की दुहरी पंक्तियाँ मिट्टी चढ़ाने के बाद ... २१९

तारकांकित चित्र अलग छपे हैं।

अध्याय १

कृषि-उत्पादन बढ़ाने के उपाय

भूमि से अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए कई उपाय किये जा सकते हैं। इनमे से प्रत्येक द्वारा कुछ न कुछ पैदावार बढ़ेगी, फिर भी यदि इन सबको एक साथ प्रयोग में लाया जाय, तो इनका सामूहिक फल बहुत ही अच्छा होगा। मुख्य-मुख्य उपाय निम्नलिखित हैं --

(१) खादों का प्रचुर मात्रा में उचित प्रयोग करके तथा भूमि-सुरक्षा की ओर विशेष ध्यान देकर;
(२) सिंचाई के साधनों का पूरा प्रयोग करके;
(३) ऐसी फसलों को उगाकर जिनमें अधिक उत्पादन देने की क्षमता हो, अर्थात् अच्छे बीजों का प्रयोग करके;
(४) मिश्रित खेती करके;
(५) फसलों को पंक्तियों में बोकर उनके बीच-बीच में निकाई-गुड़ाई करके;
(६) फसल को बीमारियों, कीड़ों-मकोड़ों तथा खर-पतवार से बचाकर;
(७) कृषि-क्रियाओं को ठीक समय पर समाप्त करके;
(८) भूमि को फसलों से अधिक से अधिक समय तक ढके रखकर।

उपर्युक्त उपायों का अगले अध्यायों में विस्तारपूर्वक वर्णन किया जायगा। इनको प्रयोग में लाकर किसान अपनी छोटी जोतवाली खेती की पैदावार बहुत बढ़ा सकते हैं। बहुधा यह कहा जाता है कि भूमि रबड़ नहीं है और इसको बढ़ाया नहीं जा सकता। भूमि भले ही रबड़ न हो, परन्तु उससे मिलने-वाली पैदावार उपर्युक्त उपायों द्वारा रबड़ की ही तरह बढ़ायी जा सकती है।

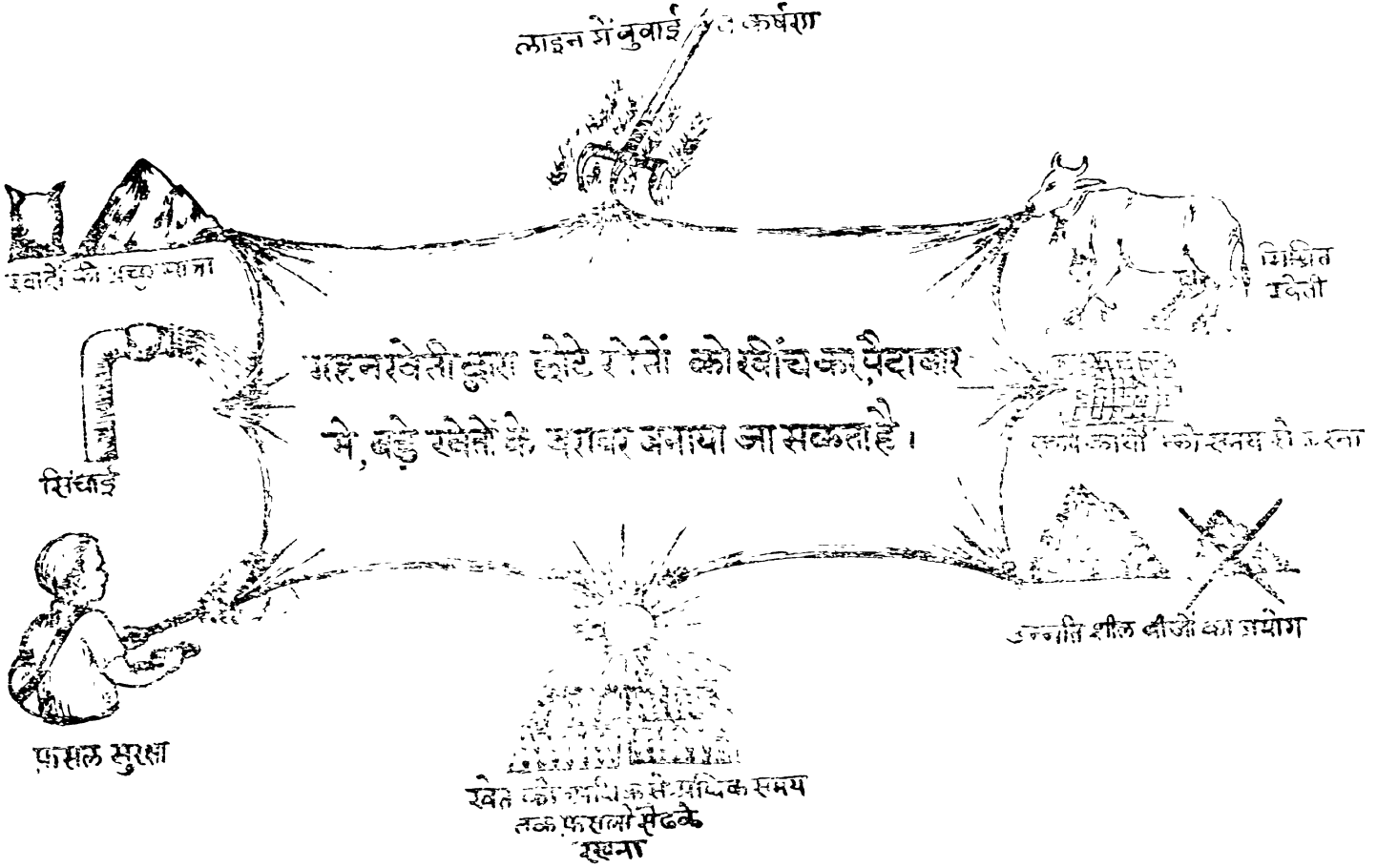

गहन खेती द्वारा छोटे खेतों को खेंच कर पैदावार में, बड़े खेतों के बराबर बनाया जा सकता है।

चित्र १—पैदावार बढ़ाने के आठ उपाय।

अध्याय २

खाद और भूमि-सुरक्षा

जिस प्रकार मनुष्य और अन्य जानवरों को जीवित रहने के लिए भोजन की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार से पौधों को भी भोजन की आवश्यकता होती है। अन्तर केवल इतना ही है कि जानवर, पौधों तथा अन्य जानवरों का भोजन करते हैं, और पौधे अपना भोजन स्वयं तैयार करते हैं। परन्तु पौधे अपना भोजन उसी दशा में तैयार कर सकते हैं, जब उनके पोषक तत्त्व उनको प्राप्त हों। पौधों के मुख्य-मुख्य पोषक तत्त्व कार्बन, आक्सिजन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, फासफोरस, पोटैशियम, कैलशियम, मैगनिशियम, गंधक और लोहा हैं। इनके अतिरिक्त थोड़ी-थोड़ी मात्रा में मैंगनीज, बोरान ताँबा, जस्ता तथा मोलिबडीनम की आवश्यकता होती है। पौधे इन तत्त्वों को, इनके यौगिक पदार्थों को तोड़कर अपने उपयोग में लाने की क्षमता रखते हैं। परन्तु यह आवश्यक है कि इन तत्त्वों के यौगिक पदार्थ पानी में घुलनशील हों। पौधे केवल पानी में घुलनशील पदार्थों को ही ग्रहण कर सकते हैं। यह समझ लेना अति आवश्यक है कि पोषक तत्त्व चाहे जितनी मात्रा में भूमि में प्राप्त हों, परन्तु यदि वे पानी में घुल नहीं सकते, तो वे पौधो के लिए व्यर्थ हैं।

पौधे अपने लिए कार्बन और आक्सिजन हवा की कार्बन डाइ-आक्साइड गैस से और हाइड्रोजन भूमि के अंदर पानी से लेते हैं। कारबन, आक्सिजन और हाइड्रोजन मिलकर पौधों का $\frac{९५}{९८}$ भाग होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि पौधों के बनानेवाले तत्त्वों के $\frac{९५}{९८}$ भाग के लिए किसान को कोई प्रबंध या चिन्ता नहीं करनी पड़ती। उसे केवल $\frac{३}{९८}$ भाग का प्रबन्ध करना पड़ता है। इस $\frac{३}{९८}$ भाग में से भी बहुत-से पोषक तत्त्व भूमि में इतनी प्रचुर मात्रा में प्राप्त है कि उन्हें भी बाहर से मिलाने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

पौधों के पोषण के विषय में एक बात और समझ लेना आवश्यक है। पौधे पोषक तत्त्वों का पूरा-पूरा लाभ तभी उठा सकते हैं, जब कि सभी पोषक

तत्त्व आवश्यक मात्रा में प्राप्त हों। यदि कोई पोषक तत्त्व आवश्यक मात्रा से कम प्राप्त है, तो अन्य पोषक तत्त्वों के प्रचुर मात्रा में प्राप्त होने पर भी फसल की पैदावार उसी स्तर तक होगी, जिस स्तर तक कोई भी न्यूनतम पोषक तत्त्व प्राप्त है। इसको समझने के लिए एक ड्रम का अनुमान कीजिए, जिसकी दीवारें लकड़ी के भिन्न-भिन्न ऊँचाई के टुकड़ों से बनी हैं। यदि सभी लकड़ी के टुकड़े बराबर ऊँचाई के होते, तो ड्रम में उसी ऊँचाई तक पानी भरा जा सकता

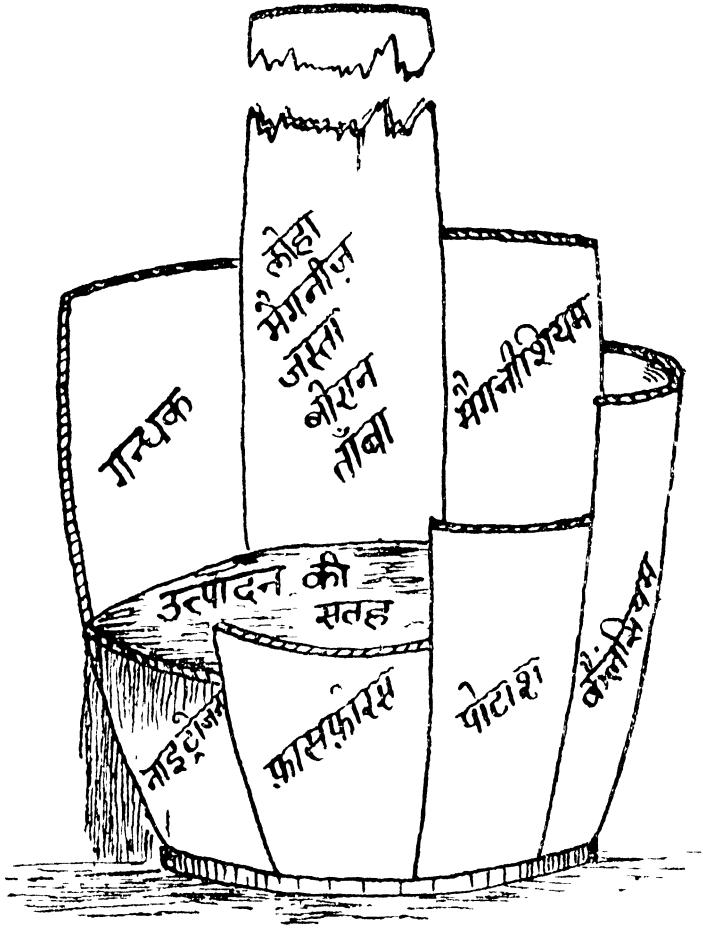

चित्र २—**उत्पादन उसी स्तर तक होगा, जहाँ तक कोई भी न्यूनतम पोषक तत्त्व रहेगा।**

था। परन्तु यदि भिन्न-भिन्न ऊँचाई के लकड़ी के टुकड़े लगे हुए हों, तो पानी उसी स्तर तक भरा जा सकता है, जिस स्तर तक लकड़ी का सबसे कम ऊँचा टुकड़ा होगा, जैसा कि चित्र संख्या २ में दिखाया गया है।

इससे यह स्पष्ट है कि पानी भरने के उद्देश्य से लकड़ी के अन्य टुकड़ों का बहुत ऊँचा होना व्यर्थ है, जब तक कि एक टुकड़ा नीचा ही रहता हो। इसी प्रकार से भूमि में यदि एक भी पोषक तत्त्व की कमी है, तो बिना उसको पूरा किये, अन्य तत्त्वों का अधिक मात्रा में प्राप्त होना पूर्णतया व्यर्थ है।

भूमि की बनावट

फलीदार पौधों को छोड़कर, जो अपने लिए नाइट्रोजन हवा से प्राप्त करते हैं, अन्य पौधे, कार्बन और आक्सीजन के सिवा, सभी पोषक तत्त्व भूमि से ही प्राप्त करते है। यह समझने के लिए कि पोषक तत्त्व भूमि से पौधों को किस प्रकार से प्राप्त होते हैं, हमें थोड़ा यह समझना चाहिए कि भूमि कैसे बनी है। प्रारम्भ में पृथ्वी की सब सतह चट्टानों से ही परिपूर्ण थी। ये चट्टानें गर्मी, सर्दी, हवा, वर्षा तथा कुछ अंश तक कीड़े-मकोड़ों की क्रियाओं द्वारा टूटकर पहले छोटे-छोटे पत्थर के टुकड़े बने, बाद में परस्पर घिसकर बालू और बारीक कण बने, जिनके द्वारा आज की भूमि बनी हुई है।

ज्यों-ज्यों चट्टानें टूटती गयीं, त्यों-त्यों उनमें पौधे और बाद में कुछ जीव-जन्तु भी रहने लगे। इन पौधों और जीव-जन्तुओं के मरने के बाद उनके अवशेष चट्टानों के छोटे-छोटे टुकड़ों में मिलते गये। इस प्रकार चट्टानों से घिसकर बनी हुई बालू और कणों से, जिन्हें खनिज द्रव्य कहा जा सकता है, एवं जैविक पदार्थों के अवशेषों से, जिन्हें कार्बनिक द्रव्य कहा जा सकता है, मिलकर भूमि की सतह बनी है। इसमें खनिज द्रव्य का भाग बहुत अधिक है। उसकी तुलना में कार्बनिक द्रव्य का, जिसे ह्यूमस भी कहते हैं, भाग बहुत थोड़ा होता है। परन्तु कृषि की दृष्टि से इस छोटे भाग का ही अधिक महत्त्व है, क्योंकि पौधों का मुख्य पोषक तत्त्व नाइट्रोजन इसी भाग से प्राप्त होता है। इतना ही नहीं कि ह्यूमस से नाइट्रोजन प्राप्त होता है, बल्कि ह्यूमस की सहायता से पौधों को अन्य पोषक तत्त्व प्राप्त होने में सहायता मिलती है।

ह्यूमस में एक तेजाबी अंश तैयार होता है, जिसकी उपस्थिति में वे पदार्थ घुलनशील हो जाते हैं—जो शुद्ध पानी में अघुलनशील रहने के कारण पौधों के लिए अप्राप्य होते है। ह्यूमस को प्रचुर मात्रा में भूमि में बनाये रखना किसानों के लिए बहुत ही आवश्यक है। यह पौधों को पोषक तत्त्व देता है, खनिज भाग के पोषक तत्त्वों को घुलनशील और प्राप्य बनाने में सहायक होता है, और जैसा कि हम आगे देखेंगे, यह पौधों की जड़ों को अधिक जाड़े, गर्मी, सूखा, और वर्षा के दुष्परिणामों से भी सुरक्षित रखता है। ह्यूमस के अभाव में मिट्टी की बनावट बिगड़ जाती है। जिस मिट्टी में ह्यूमस नहीं होता उसके कण एक दूसरे से बहुत निकट रहते हैं, जिसके कारण उसमें हवा और पानी का प्रवेश कठिन हो जाता है। परन्तु जिस भूमि में ह्यूमस पर्याप्त मात्रा में होता है, उसके कणों के बीच में से हवा और पानी का प्रवेश आसानी से होता रहता है।

जिस भूमि में ह्यूमस की कमी रहती है, उसमें पानी पड़ने पर मिट्टी सिमट-कर बैठ जाती है और पानी नीचे प्रवेश नहीं कर पाता। ऐसे खेतों में अधिक वर्षा होने के बाद पानी देर तक लगा रहता है, जिससे फसलों को नुकसान पहुँचता है। जिस भूमि में ह्यूमस प्रचुर मात्रा में होता है, उसमें पानी कणों के बीच में से होता हुआ, आसानी से भूमि में चला जाता है और फसलों को नुकसान नहीं पहुँचता। ह्यूमस की कमीवाली भूमि सूखने पर बहुत सख्त हो जाती है, जिसमें कर्षण क्रिया बड़ी कठिनाई से की जा सकती है। ह्यूमस मटियार भूमि को भुरभुरी बनाता है और बलुई भूमि को अधिक ठोस बनाकर उसमें पानी रोकने की क्षमता बढ़ाता है।

प्राकृतिक वातावरण में भूमि की उर्वरा शक्ति इसलिए बनी रहती है कि जो भी पेड़ पौधे उगते हैं, वे जब सूख जाते हैं, तब उनके अवशेष मिट्टी में मिलते रहते है। इस तरह भूमि के पोषक तत्त्व निकलकर कहीं दूसरे स्थान पर नहीं जाते। परन्तु जब मनुष्य खेती करता है और फसलें काट-काटकर खेत के बाहर ले जाकर उनकी पैदावार बेचता रहता है, तब भूमि के अन्दर प्राप्त पोषक तत्त्वों की कमी होने लगती है। निम्नलिखित तालिका में पोषक तत्त्वों की वे मात्राएँ दी गयी हैं, जो भिन्न-भिन्न फसलों के पैदा करने में भूमि से निकलती हैं।

फसलों के पैदा होने में भूमि से निकलनेवाले पोषक तत्त्वों की मात्रा (पौंड में)

फसल	फसल का अंश	पैदावार प्रति एकड़ (पौण्ड में)		नाइट्रोजन	फास्फरस	पोटाश
गेहूँ	दाना	२,०००		३१	२०	१०
	भूसा	४,०००		२१	६	५०
			जोड़	५२	२६	६०
जौ	दाना	२,२००		३३	१९	१२
	भूसा	४,४००	,,	१५	७	१००
				४८	२६	११२
धान	दाना	२,५००		२३	१२	८
	भूसा	५,०००	,,	४०	९	१०२
				७३	२१	११०
मक्का	दाना	२,४००		४२	२२	१३
	चारा	२,६००	,,	६०	२०	८०
				१०२	४२	९३
ज्वार	दाना	१,०००		१५	९	७
	चारा	४,०००		३१	७	७०
			,,	४६	१६	७७
बाजरा	दाना	८००		१३	६	९
	चारा	३,२००		१२	४	८१
			,,	२५	१०	९०

एक एकड़ भूमि की ऊपरी ६,७" सतह का वजन औसतन २० लाख पौण्ड होता है। इसी २० लाख पौण्ड मिट्टी में से अधिकांश पौधे अपनी खुराक लेते हैं। साधारण उर्वरा शक्ति की २० लाख पौण्ड मिट्टी में लगभग २,००० से ३,००० पौण्ड नाइट्रोजन होता है। यदि औसत २,५०० पौण्ड मान लिया जाय, तो हम देखेंगे कि उपर्युक्त तालिका के अनुसार $\frac{२५००}{१००}$ = लगभग २५ फसलें मक्का की ली जा सकती हैं। इसी प्रकार हिसाब लगाने से मालूम होगा कि अन्य फसलों की भी २५ से ५० वर्षों तक खेती करने से भूमि के अन्दर प्राप्त सम्पूर्ण नाइट्रोजन समाप्त हो जायगा। अर्थात् यदि बाहर से नाइट्रोजन न मिलाया

जाय, तो केवल २५ से ५० वर्षों में ही भूमि की फसल पैदा करने की पूरी शक्ति नष्ट हो जायगी। वास्तव में इससे बहुत पहले ही अच्छी फसलें मिलना बंद हो जायगा, क्योंकि कुल पोषक तत्त्व जो भूमि में हैं, वे ऐसे रूप में नहीं होते, जो फसलों को प्राप्त हो सकें।

भूमि, एक कारखाना––उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि भूमि में उपलब्ध पोषक तत्त्वों को ऐसे रूप में परिवर्तित करने का, जिसमें वह पौधों को प्राप्त हो सके, तथा बाहर से पोषक तत्त्व मिलाने का प्रयत्न किसान को सदा करते रहना चाहिए। हमारे देश में हजारों वर्षों से खेती होती आ रही है, अतः कुछ ऐसे स्थानों को छोड़कर, जहाँ बाढ़ द्वारा मिट्टी हमेशा नयी हुआ करती है, भूमि की स्वाभाविक उर्वरा शक्ति प्रायः समाप्त हो चुकी है। अच्छी उपज, अर्थात् गहन खेती के लिए यह आवश्यक है कि हम भूमि में बाहर से खाद देते रहें, तथा और सभी ऐसे उपाय करते रहें, जिनसे भूमि के अन्दर मौजूद पोषक तत्त्वों की मात्रा बढ़ती रहे। गहन खेती करनेवालों को अपनी भूमि को एक कारखाना समझना चाहिए। जिस प्रकार किसी चीनी के कारखाने में एक ओर से कच्चा माल अर्थात् गन्ना लगाने पर दूसरी तरफ तैयार माल अर्थात् चीनी बनती रहती है, उसी प्रकार किसान के इस कारखाने में भूमि में खाद और पानी देकर तैयार फसल प्राप्त करने का यत्न किया जाता है। कृषि-उत्पादन का कारखाना भूमि है, इसका कच्चा माल खाद, पानी और हवा है एवं इसको चलानेवाली शक्ति सूर्य का प्रकाश है। यदि कच्चे माल की कमी हो जायगी, तो उत्पादन निश्चय ही कम हो जायगा।

भौतिक गुण भी महत्त्वपूर्ण

अच्छी फसलें पैदा करने के लिए भूमि में पोषक तत्त्वों का प्रचुर मात्रा में होना आवश्यक है। परन्तु भूमि की उपज-शक्ति केवल इसी पर निर्भर नहीं है कि भूमि में पोषक तत्त्व कितनी मात्रा में प्राप्त है। यदि उपज-शक्ति केवल पोषक तत्त्वों की मात्रा पर ही निर्भर होती, तो यह सम्भव था कि खेतों में केवल रासायनिक खाद देकर अधिक-से-अधिक पैदावार प्राप्त की जा सकती। परन्तु यह सभी किसान जानते हैं कि लम्बे अरसे तक केवल रासायनिक खादों

का प्रयोग करने से खेतों की बनावट बिगड़ जाती है और पैदावार बढ़ने के बजाय गिरने लगती है। पैदावार भूमि के रासायनिक गुणों के अतिरिक्त भौतिक गुणों पर भी बहुत हद तक निर्भर होती है। जिस प्रकार कोई व्यक्ति, भोजन का बहुत अच्छा प्रबंध होने पर भी, रहने के लिए निवासस्थान न होने पर स्वस्थ एवं सुखी नहीं रह सकता, उसी प्रकार फसलें उन खेतों में अच्छी नहीं उग सकतीं, जिनमें पोषक तत्त्व तो प्रचुर मात्रा में प्राप्त हों, परन्तु उनकी बनावट या भौतिक गुण बिगड़ गये हों। मिट्टी की बनावट मुख्यतः उसमें मौजूद कार्बनिक पदार्थों या ह्यूमस की मात्रा पर निर्भर रहती है।

भूमि-जीवाणु

रासायनिक खादों के आविष्कार से पहले का हमारा अनुभव बतलाता है कि जानवरों का गोबर या खर-पतवार खेतों में डालने से उनकी उर्वरा शक्ति बढ़ती है। जानवरों की विष्ठा और खर-पतवार पौधों के भोजन के रूप में किस प्रकार परिवर्तित होता है, इसकी जानकारी सभी किसानों के लिए आवश्यक है।

खेती करने योग्य सभी भूमियों में कई प्रकार के जीवाणु पाये जाते हैं। इन जीवाणुओं में यह शक्ति होती है कि वे सभी वानस्पतिक तथा प्राणिज निर्जीव पदार्थों को पौधों के भोजन, नाइट्रेट, के रूप में बदल देते हैं। ये जीवाणु कई प्रकार के होते हैं, और उनके काम भिन्न-भिन्न होते हैं। एक प्रकार के जीवाणु केवल पदार्थों को सड़ाने तथा गूढ़ यौगिकों को सरल यौगिकों में परिवर्तित करने का काम करते हैं। ज्यों ही कोई वानस्पतिक तथा पाशविक पदार्थ इनके सम्पर्क में आता है, ये उस पर अपनी क्रिया शुरू कर देते हैं और उनको सड़ा-गलाकर सरल पदार्थों में बदल देते हैं। इन सरल पदार्थों पर दूसरे प्रकार के जीवाणु अपना कार्य शुरू कर देते हैं, जिसके फलस्वरूप अमोनिया गैस तैयार होती है। अमोनिया गैस तैयार होने पर तीसरे प्रकार के जीवाणु उसे पौधों की खूराक नाइट्रेट के रूप में बदल देते हैं। यदि भूमि में ये जीवाणु न होते, तो खेती का काम चल ही न सकता था।

ये जीवाणु जब किसानों के लिए इतने लाभदायक हैं, तो हमें यह भी जानना चाहिए कि इनके पोषण तथा वृद्धि के लिए कैसे वातावरण की आवश्यकता

है। प्रयोगों से यह सिद्ध हुआ है कि औसत दर्जे की गर्मी, औसत दर्जे की नमी, अधिक-से-अधिक हवा का भूमि में प्रवेश, ग्रीष्म ऋतु, बलुई की अपेक्षा दूमट और मटियार भूमि जीवाणुओं के लिए उचित वातावरण है। परन्तु सबसे आवश्यक यह है कि भूमि में वानस्पतिक तथा प्राणिज पदार्थों की प्रचुरता बनी रहे, क्योंकि ये ही जीवाणुओं का भोजन हैं और इनकी कमी होने पर, उचित वातावरण रहते हुए भी, कोई लाभ नहीं हो सकता। जीवाणु, जिनका वर्णन अभी तक किया गया है, केवल भूमि के अन्दर मिले हुए वानस्पतिक पदार्थों में प्राप्त नाइट्रोजन को ही पौधों की खूराक नाइट्रेट के रूप में बदल सकते हैं। वे बाहर से नाइट्रोजन इकट्ठा नहीं कर सकते। इसलिए यदि जीवाणुओं से लाभ उठाना है, तो आवश्यक है कि किसान अपने खेतों में अधिक-से-अधिक वानस्पतिक पदार्थ पहुँचाया करें।

जहाँ भूमि में हमारे इतने सहायक जीवाणु हैं, वहाँ एक प्रकार के ऐसे जीवाणु भी हैं, जो अवसर पाकर किसानों को हानि पहुँचाने से नही चूकते। ये जीवाणु भूमि में मौजूद नाइट्रेट को तोड़कर आक्सीजन अपने काम में ले लेते हैं और नाइट्रोजन को हवा में उड़ा देते हैं। परन्तु ये जीवाणु यह दुष्कर्म केवल तभी करते हैं जब भूमि में हवा की कमी होती है। इनको जीवित रहने के लिए आक्सिजन की आवश्यकता होती है। हवा की कमी में ये जब आक्सिजन नहीं पाते, तब विवश होकर भूमि में प्राप्त नाइट्रेट को तोड़कर अपने लिए आक्सिजन प्राप्त करते हैं। अतः यदि किसान को अपनी भूमि की उर्वरा शक्ति बनाये रखना है, तो उसे सदैव इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उसकी भूमि में हवा का प्रवेश होता रहे। जुताई, गुड़ाई, भौराई आदि कर्षण-क्रियाएँ एक तो खेत में उगे खर-पतवार को मारने के लिए की जाती है, और दूसरा बड़ा उद्देश्य यह भी होता है कि भूमि को भुरभुरी बनाये रखा जाय, जिससे भूमि में आसानी से हवा का प्रवेश होता रहे। जिस वर्ष वर्षा अधिक होती है और खेतों में पानी लगा रहने के कारण जुताई नही हो सकती, उस वर्ष अगली रबी की फसल अच्छी नहीं होती। इसका मुख्य कारण यही है कि भूमि में हवा का प्रवेश न होने के कारण, जीवाणु नाइट्रेट को तोड़कर स्वतंत्र नाइट्रोजन में बदल देते हैं, जो हवा में उड़ जाता है।

अब तक जिन जीवाणुओं का वर्णन किया गया है, उनमें कुछ तो ऐसे हैं जो भूमि में मौजूद वानस्पतिक पदार्थों को नाइट्रेट के रूप में बदलते हैं। पर एक ऐसा जीवाणु भी है जो नाइट्रेट को तोड़कर नाइट्रोजन गैस में परिवर्तित कर देता है। इनमें से कोई भी ऐसा जीवाणु नही है, जो बाहर से नाइट्रोजन लाकर भूमि में एकत्रित करता हो। इससे स्पष्ट है कि नाइट्रेट को तोड़कर स्वतत्र नाइट्रोजन उत्पन्न करनेवाला जीवाणु भले ही अपना दुष्कर्म करने का अवसर कम पाता हो, फिर भी यह क्रिया यदि लाखों वर्षों से एक ही दिशा मे होती चली आती और कोई ऐसी व्यवस्था न होती, जिसके द्वारा स्वतंत्र नाइट्रोजन नाइट्रेट के रूप में परिवर्तित हो सकता, तो निश्चय ही अब तक हमारा सबका सब नाइट्रोजन स्वतंत्र रूप में ही होता और खेती का काम असम्भव हो गया होता। परन्तु सौभाग्य से ऐसा नहीं है। एक प्रकार के जीवाणु ऐसे भी है, जो स्वतंत्र नाइट्रोजन को नाइट्रेट के रूप में परिवर्तित करते रहते है।

दलहन की फसलों की विशेषता

स्वतंत्र नाइट्रोजन को नाइट्रेट के रूप में बदलनेवाले जीवाणु वे हैं, जो एक विशेष जाति के पौधों की जड़ों में पाये जाते हैं। ये जीवाणु पौधों के साथ साझेदारी में रहते हैं। जीवाणु अपना भोजन पौधों से प्राप्त करते हैं और बदले में उनकी खूराक के लिए हवा से नाइट्रोजन लेकर नाइट्रेट तैयार करते हैं। जिस जाति के पौधे इन जीवाणुओं की साझेदारी में रहते हैं, उन्हें लिग्यूमिनस जाति की फसल कहते हैं। लिग्यूमिनस जाति की फसलों के फूल तितलीनुमा होते हैं, और इनके दानों को फोड़ने पर दो दालें निकलती हैं। इसी लिए लिग्यूमिनस फसल को कभी-कभी दलहन की फसल भी कहते हैं, यद्यपि हरएक लिग्यूमिनस फसल से दाल तैयार नहीं होती। हमारे देश की मुख्य-मुख्य लिग्यूमिनस फसलें ये हैं—चना, मटर, मूँग, लोबिया, उरद, मसूर, अरहर, गुवार, ढेंचा, सनई, भटवास, मेथी, बरसीम, सेम शिवचना इत्यादि।

लिग्यूमिनस फसलों की यह विशेषता है कि इनकी जड़ों में उपर्युक्त जीवाणु अपने निवास के लिए छोटी-छोटी ग्रन्थियाँ बना लेते हैं। (देखिए, चित्र संख्या ३)

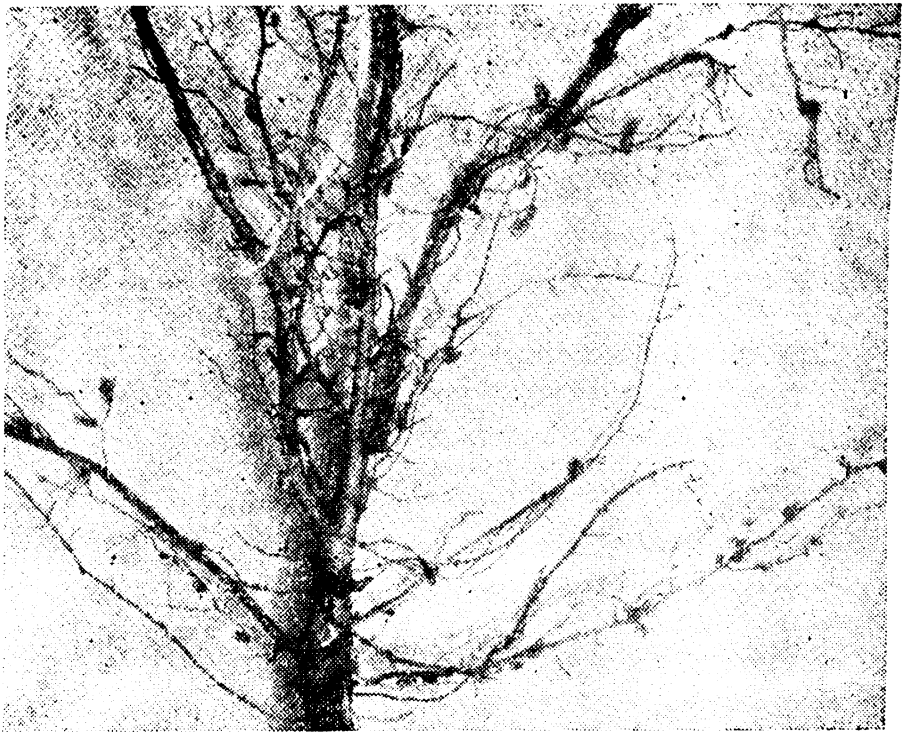

चित्र ३—**दलहन जाति के एक पौधे की जड़ (जीवाणु निवासग्रन्थि से युक्त)**

इन्हीं ग्रन्थियों में ये जीवाणु हवा से नाइट्रोजन लेकर उसे नाइट्रेट के रूप में एकत्रित करते रहते हैं। इस नाइट्रेट का प्रयोग पौधे अपने बढ़ने में करते हैं। जब पौधे सूख जाते हैं, तब ग्रन्थियों में बचा हुआ नाइट्रेट भूमि में मिलकर उसकी उर्वरा शक्ति को बढ़ाता है। दलहन की फसलों में रहनेवाले सब जीवाणु एक ही प्रकार के नहीं होते, न उनमें हवा से नाइट्रोजन एकत्रित करने की क्षमता ही बराबर होती है। कुछ जीवाणु अधिक नाइट्रोजन इकट्ठा करते हैं और कुछ कम। नाइट्रोजन इकट्ठा करने की क्षमता कुछ हद तक वातावरण पर भी निर्भर होती है। अतः यह तो निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि कौन-सी दलहन की फसल कितनी मात्रा में नाइट्रोजन इकट्ठा करेगी, परन्तु मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि अच्छी दलहन की फसलें २५ से १२५ पौंड तक प्रति एकड़ नाइट्रोजन खेत में पहुँचा सकती हैं। भिन्न-भिन्न हरी खाद की फसलों से औसतन कितना प्रति एकड़ वानस्पतिक पदार्थ

और नाइट्रोजन भूमि को पहुँचाया जा सकता है, इसका अनुमान निम्नलिखित तालिका में दिया गया है।

हरी खाद	वानस्पतिक पदार्थ	नाइट्रोजन
सनई	२०० मन	४० सेर
ढेचा	२०० मन	३३ सेर
उरद	१२० मन	१९ सेर
मूँग	८० मन	१६ सेर
गुवार	× .. ×	२७ सेर
लोबिया	१५० मन	२५ सेर
कुलथी	१०० मन	१३ सेर
नील	१०० मन	३२ सेर
सेंजी	२८६ मन	६० सेर
मटर	२०१ मन	३० सेर
मसूर	५० मन	१६ सेर
बरसीम (एक कटाई)	१५५ मन	२७ सेर
मेथी	११६ मन	१६ सेर
खेसारी	१२३ मन	२७ सेर

यहाँ यह भी समझ लेना आवश्यक है कि कुल का कुल नाइट्रोजन, जो जीवाणुओं द्वारा दलहन की जड़ों में एकत्रित होता है, जड़ों में ही नहीं रह जाता,

बल्कि पौधों के अन्य भागों—पत्तियों और फलों में भी पहुँचता है। अतः यदि दलहन की पूरी फसल पलटकर मिट्टी में न मिला दी जाय, तो सभी एकत्रित नाइट्रोजन अगली फसलों के काम नहीं आता। इसी लिए हरी खाद के लिए दलहन की पूरी फसल को जोतकर मिट्टी में मिला दिया जाता है। जब दलहन की फसलों के ऊपर का हिस्सा काटकर जानवरों को खिला दिया जाता है और उसे भूमि में फिर वापिस नहीं किया जाता, तो भूमि को पूरा लाभ नहीं मिल सकता।

यदि दलहन की फसलों के जीवाणु भूमि में पहले से मौजूद न हों, तो इनके अभाव में ये फसलें ठीक से नहीं बढ़तीं। इसलिए ऐसी फसलों को बोने के पहले, जिनके जीवाणु पहले से ही भूमि में मौजूद न हों, यह आवश्यक हो जाता है कि भूमि में जीवाणुओं का कल्चर (जीवाणु युक्त मिट्टी) मिलाया जाय। हमारे देश की जो पुरानी दलहन की फसलें हैं उनसे संबंधित जीवाणु प्रायः सभी भूमियों में पाये जाते हैं और बाहर से कल्चर मिलाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। परन्तु बरसीम एक ऐसी फसल है जिसके जीवाणु सभी भूमि मे नहीं पाये जाते, इसलिए जिन खेतों में बरसीम की खेती पहले से नहीं होती आयी है, उनमें इस खेती को शुरू करने से पहले यह आवश्यक है कि जीवाणुओं के कल्चर को मिट्टी में मिलाया जाय। इसी प्रकार नैतोड़ भूमि में चना, अरहर आदि की खेती करने से पहले इनके जीवाणुओं का कल्चर मिलाना लाभप्रद होगा।

हरी खाद से लाभ

दलहन की फसलों की हरी खाद देने से भूमि में नाइट्रोजन की मात्रा तो बढ़ती ही है, इसके अतिरिक्त अन्य कई लाभ हैं, जैसे—

(१) वर्षा ऋतु में हरी खाद से ढके रहने के कारण भूमि कटाव से बच जाती है और वे पोषक तत्त्व, जो पानी के साथ बहकर नष्ट हो जाते, खेत में ही सुरक्षित बने रहते हैं।

(२) अधिकांश दलहन की फसलों की जड़ें भूमि में काफ़ी गहराई तक जाती हैं और भूमि के नीचे से उन पोषक तत्त्वों को, जो साधारण फसलों को

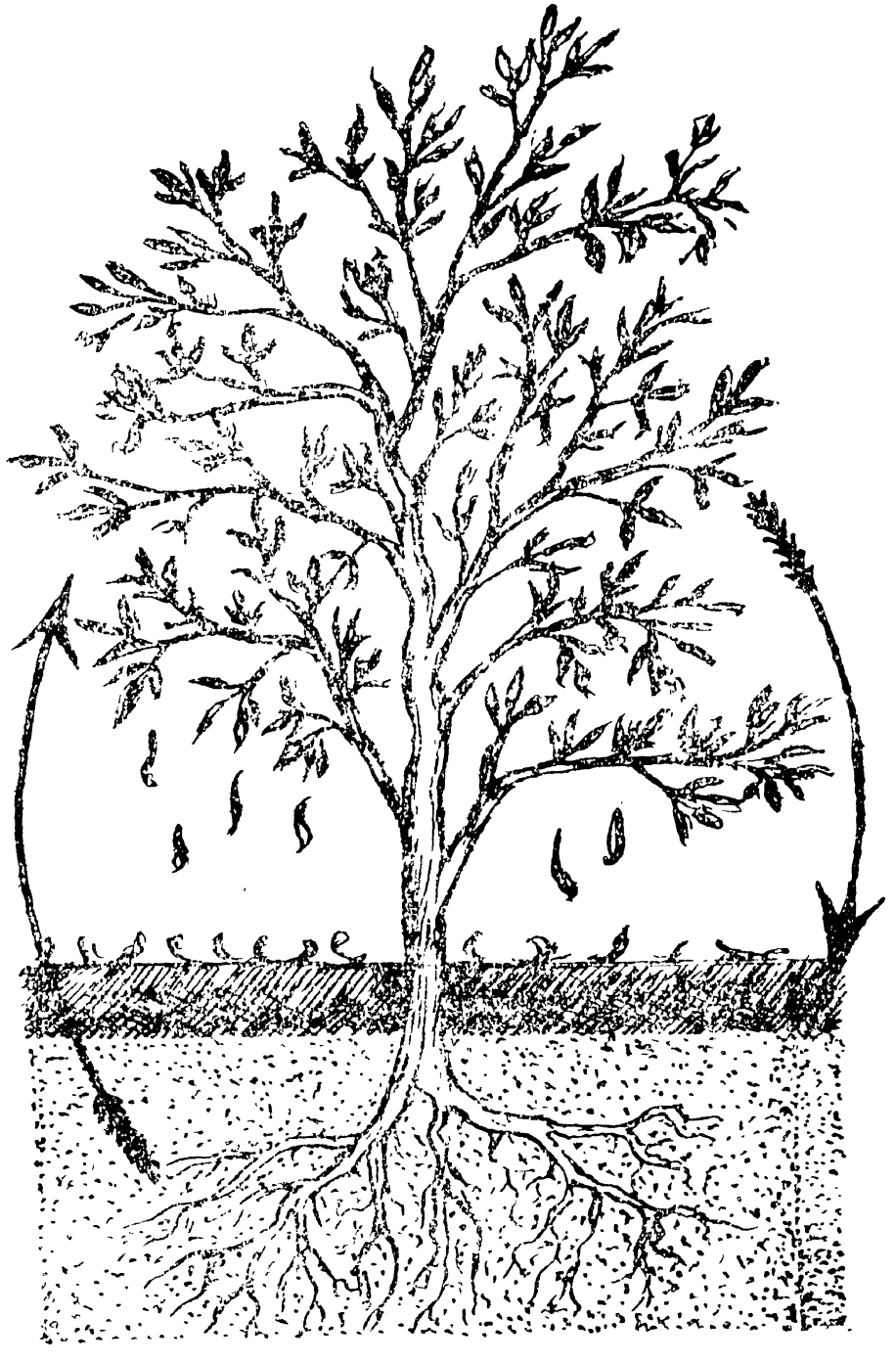

चित्र ४—गहरी जड़ोंवाली हरी खाद की फसलें पोषक तत्वों को ऊपर से नीचे लाती हैं।

प्राप्त नहीं हो सकते, अपने बढ़ाव के काम में लाती हैं। ऐसी फसलों की पत्तियाँ और डंठल जब मिट्टी में मिलते हैं, तो उनमें एकत्रित पोषक तत्त्व भी भूमि की ऊपरी सतह में मिल जाते हैं (चित्र संख्या ४)। इस प्रकार गहरी जड़ोंवाली हरी खाद की फसलों के प्रयोग से भूमि की निचली सतह की उर्वरा शक्ति ऊपर लायी जा सकती है।

(३) हरी खाद की फसलें घनी होने के कारण, उनके नीचे तक सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँचता। जो खर-पतवार वहाँ उगता है, वह सूर्य के प्रकाश की कमी से मर जाता है। इस प्रकार हरी खाद के प्रयोग से खेत को घासों से साफ़ रखने में भी सहायता मिलती है।

(४) हरी खाद के प्रयोग से मटियार मिट्टी भुरभुरी और बलुई मिट्टी कुछ भारी हो जाती है, जिससे उसकी उपज-शक्ति बढ़ जाती है।

यद्यपि गहन खेती करनेवाले किसानों का उद्देश्य यह होगा कि भूमि पर अधिक-से-अधिक आमदनी देनेवाली फसलें ही उगायी जायँ, फिर भी भूमि की उर्वरा शक्ति बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि फसलों के बीच-बीच में दलहन की फसलें बोयी जायँ और उनका हरी खाद के रूप में प्रयोग किया जाय। ऐसा करने से न केवल सस्ते दामों पर पौधों के पोषक तत्त्व भूमि में पहुँचाये जा सकते हैं, बल्कि भूमि की बनावट भी ठीक रखी जा सकती है। पोषक तत्त्व तो रासायनिक खादों के रूप में खरीदे भी जा सकते है, परन्तु भूमि की बनावट को ठीक रखने का एक मात्र उपाय यही है कि उसमें अधिक-से-अधिक मात्रा में वानस्पतिक पदार्थ मिलाये जायँ। और यदि यह वानस्पतिक पदार्थ दलहन की फसल के रूप में हों, तो नाइट्रोजन भी भूमि में पहुँचता रहेगा। भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाने के लिए सबसे सरल और सस्ता उपाय यही है कि दलहन की फसलों को उगाया जाय और उनका प्रयोग हरी खाद के रूप में किया जाय।

दलहन फसलों की जड़ों में जीवाणुओं द्वारा एकत्रित नाइट्रेट की कमी नहीं रहती, इसलिए ऐसी फसलों में नत्रजनीय खाद देना अनावश्यक होता है। परन्तु इन फसलों में फास्फेटिक खाद देने से बहुत ही अच्छा नतीजा निकलता है। फास्फेट की उपस्थिति में हवा से नाइट्रोजन एकत्रित करनेवाली जीवाणुओं की क्षमता बढ़ जाती है। जिन भूमियों में फास्फेट की कमी है, उनमें केवल

हरी खाद की अपेक्षा, हरी खाद के साथ फास्फेटिक खादें देकर बोने से अगली फसल की पैदावार २० से ५०% तक बढ़ जाती है। अतः जिन भूमियों में फास्फेट की कमी हो उनमें हमेशा फास्फेटिक खादें देकर हरी खाद बोनी चाहिए।

हरी खाद के लिए सनई और ढेंचा की फसलें सबसे उत्तम सिद्ध हुई हैं। यह बहुत तेज़ी से बढ़ती हैं और घनी बोने पर काफ़ी मुलायम बनी रहती हैं, जिससे सड़ने में आसानी होती है। सनई केवल ऐसे ही ऊँचे स्थानों पर होती है, जहाँ पानी न जमा होता हो, क्योंकि यह पानी लगने पर नष्ट हो जाती है। ढेंचा यदि एक बार उग आये तो पानी लगने पर भी नहीं मरता। अतः नीची भूमियों में, विशेष कर धान के खेतों के लिए, ढेंचा का ही प्रयोग करना चाहिए।

हरी खाद के लिए इनको प्रथम वर्षा के साथ बो देना चाहिए। बोवाई के लगभग ७--८ सप्ताह बाद ये जोतने योग्य हो जाती हैं। खड़े खेत में पाटा चलाकर पौधों को गिरा देना चाहिए और फिर उन्हें मिट्टी पलटनेवाले हल से जोतना चाहिए। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जोताई के बाद खेत में सड़ने के लिए काफ़ी नमी बनी रहे और अगली फसल बोने से पहले इतना समय मिले कि हरी खाद ठीक से सड़ सके। अगस्त महीने का मध्य हरी खाद की जुताई के लिए ठीक समय है। इससे पिछड़कर जोतने से गेहूँ बोने के पहले खाद को सड़ने के लिए काफ़ी समय नहीं मिलता और गेहूँ को लाभ के बजाय हानि होने की सम्भावना रहती है।

यदि वर्षा देर से शुरू हो, और अगस्त के मध्य तक हरी खाद की फसल अधिक न बढ़े, तो भी उसे समय से ही जोत देना चाहिए, क्योंकि खाद की मात्रा कम होने से उतनी हानि होने का डर नहीं रहता, जितना गेहूँ बोने के समय खाद का अधसड़ी अवस्था में रहने से। यदि मध्य अगस्त के बाद वर्षा कम हो, तो खेत की सिचाई कर देनी चाहिए। केवल धान के खेतों के लिए जब हरी खाद का प्रयोग करना हो, उस समय इस बात की आवश्यकता नहीं रहती कि हरी खाद की फसलों को सड़ने का मौका दिया जाय। हरी खाद की फसल को जोतकर तुरन्त या दो-तीन दिन बाद ही धान बैठाया जा सकता है।

रबी की हरी खाद

खरीफ के अलावा, रबी में भी हरी खाद तैयार की जा सकती है। रबी में हरी खाद तैयार करने के लिए सबसे अच्छी फसल बरसीम की है। बरसीम दलहन की एक बहुत ही ज़ोरदार फसल है। इसमें हवा से नाइट्रोजन एकत्रित करने की जितनी शक्ति है, उतनी शायद ही किसी अन्य दलहन की फसल मे हो। यह कटने पर भी बढ़ती रहती है। इसे अक्टूबर में बोकर एक कटाई करके दुबारा बढ़ने पर दिसंबर के अंत मे या जनवरी के प्रथम सप्ताह में यदि जोत दिया जाय, तो फरवरी में गन्ना बोने के समय खेत तैयार हो जायगा। बरसीम में चूंकि पत्तियाँ ही पत्तियाँ होती है, और नाइट्रोजन का अंश उसमें अधिक होता है, इसलिए उसके सड़ने में अधिक देर नहीं लगती। शाहजहाँपुर गन्ना अनुसंधानकेन्द्र पर बरसीम की हरी खाद का बिना फास्फेट के और फास्फेट देकर गन्ने की पैदावार पर प्रभाव देखा गया। जो पैदावार मिली वह निम्नलिखित है--

बिना खाद	बरसीम बिना फास्फेट	बरसीम, फास्फेटिक अम्ल १०० पौंड प्रति एकड़ देकर
३७५ मन	४९८ मन	६४३ मन

उपर्युक्त प्रयोग में बरसीम का ४०० मन हरा चारा तीन कटाइयों में काटकर जानवरों को खिला दिया गया था, उसके बाद उसे जोतकर गन्ना बोया गया था। यदि यह ४०० मन हरा चारा काटकर खेत में ही छोड़ दिया गया होता, तो स्पष्ट है कि पैदावार में और भी अधिक वृद्धि होती।

बरसीम के अतिरिक्त रबी में मटर, मसूर, खेसारी इत्यादि का भी हरी खाद के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

ऐज़ोटोबैक्टर--दलहन किस्म के पौधों की जड़ों में रहनेवाले जीवाणुओं के अतिरिक्त, कुछ ऐसे भी जीवाणु हैं, जो थोड़ी-बहुत मात्रा में बिना किसी पौधे की सहायता के स्वयं ही वायु से नाइट्रोजन लेकर भूमि में एकत्र किया करते हैं। इनमें सबसे प्रमुख जीवाणु ऐजोटोबैक्टर हैं। ये जीवाणु भूमि के ऊपर हवा के सम्पर्क में पड़े कार्बनिक पदार्थो पर अपनी क्रियाएँ करते हैं। इन

क्रियाओं के फलस्वरूप भूमि में नाइट्रोजन इकट्ठा होता है। परन्तु इन जीवाणुओं को सक्रिय होने के लिए यह आवश्यक है कि भूमि की सतह पर कार्बनिक पदार्थों की प्रचुरता बनी रहे तथा चूने की भी कमी न हो। यदि भूमि में चूने के अंश की कमी है, तो फिर बाहर से चूना मिलाना लाभ-प्रद होगा।

फसलों का अधिक से अधिक भाग भूमि को लौटाइए

भूमि की उर्वरा शक्ति बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि भूमि में ह्यूमस अर्थात् जैविक पदार्थ की प्रचुरता बनायी रखी जाय। किसान की निपुणता इसी बात में है कि वह भूमि से फसल लेते हुए भी उसकी उपजाऊ शक्ति को बनाये रखे। यह तभी सम्भव है जब भूमि में कम-से-कम उतनी मात्रा में पोषक तत्त्वों को पहुँचाते रहा जाय, जितनी फसलों के रूप में उसमें से निकल जाती है। यह भी स्मरण रखना चाहिए कि फसलों के रूप में केवल नाइट्रोजन, फास्फ़ोरस और पोटाश ही नहीं निकलते, बल्कि थोड़ी-थोड़ी मात्रा में अन्य पोषक तत्त्व भी निकलते रहते हैं। इन सबकी कमी रासायनिक खादों द्वारा पूरी करना कठिन है, और यदि की भी जा सके तो ह्यूमस के अभाव मे भूमि का भौतिक गुण बिगड़ जायगा।

अतः किसान का प्रयत्न यह होना चाहिए कि फसलों के कम-से-कम भाग को बेचा जाय। यदि हम पृष्ठ संख्या ७ की तालिका में देखें तो मालूम हो जायगा कि भूमि से जितना पोषक तत्त्व फसलें लेती हैं, उनका काफ़ी बड़ा भाग पयाल या भूसे में रहता है। इससे स्पष्ट है कि यदि पयाल और भूसा, सीधे, या जानवरों को खिलाकर उनके गोबर की खाद बनाकर, खेतों को वापस कर दिया जाय, तो पोषक तत्त्वों के लगभग आधे भाग की पूर्ति की ही समस्या रह जायगी। अनाजों का भी यदि वही भाग बेचा जाय, जो मनुष्य के भोजन के प्रयोग में आता है और शेष खेतों को वापस कर दिया जाय, तो और भी अच्छा होगा।

उदाहरण के लिए, धान को धान के रूप में न बेचकर चावल बनाकर बेचा जाय, और भूसी को खाद बनाकर खेत में पहुँचाया जाय। इसी

प्रकार तेलहन की पेराई करके तेल बेचा जाय और खली को (सीधे, अथवा जानवरों के पेट में से होकर) भूमि को वापस कर दिया जाय, तो किसान को अपने खेत की उर्वरा शक्ति बनाये रखने में आसानी होगी। यदि किसी भूमि में इतने पोषक तत्त्व हैं कि उसमें बिना बाहर से खाद दिये, १०वर्ष तक अच्छी फसलें ली जा सकती हैं, तो यदि फसलों के वे भाग, जो मनुष्य के काम नहीं आते, खेतों को वापस किये जाते रहें, तब १०वर्ष के बजाय कम-से-कम २० वर्ष तक उससे अच्छी फसलें बिना अन्य खाद मिलाये ली जा सकती हैं।

फसलों के शेष भाग खेतों को कैसे लौटाये जायँ, यह इस पर निर्भर रहेगा कि किसान के पास जानवर हैं या नहीं, और हैं तो कितने। यदि जानवरों की संख्या अधिक है तो यह स्पष्ट है कि उन्हें खिलाने के लिए पयाल और भूसे को सुरक्षित रखना पड़ेगा। परन्तु यदि जानवरों को खिलाने से अधिक चारा बच जाता है तो उसे सीधे खेतों में मिलाया जा सकता है। ऐसा करने के लिए फसल काटते समय बड़े-बड़े डंठल खेत में छोड़ दिये जायँ और बाद में उसे मिट्टी पलटनेवाले हल से जोत दिया जाय। परन्तु इसके लिए दो बातें ध्यान में रखना चाहिए। प्रथम तो यह कि डंठल इत्यादि को सड़ाने के लिए भूमि में काफी नमी होनी चाहिए, और दूसरे यह कि जुताई के बाद दूसरी फसल बोने के पहले सड़ने के लिए काफी समय मिलना चाहिए। यदि डंठल इत्यादि को सड़ने का पूरा अवसर बिना दिये ही दूसरी फसल बो दी जायगी, तो सड़ानेवाले जीवाणुओं और फसल के बीच, भूमि में प्राप्त नमी और नाइट्रेट लेने के लिए होड़ लगेगी और इससे फसल को नुकसान होगा। यदि जुताई के पहले कोई नत्रजनीय खाद थोड़ी मात्रा में डंठल इत्यादि पर छिड़क दी जाय तो सड़ने का काम शीघ्रता से पूरा हो जायगा।

जानवरों का मल-मूत्र

जानवर जो कुछ भी खाते हैं, उसमें वर्तमान पोषक तत्त्वों का केवल बहुत थोड़ा अंश ही जानवरों के शरीर में रह जाता है, शेष ८०% मल और मूत्र के रूप में फिर बाहर आ जाता है। अतः यह सम्भव है कि किसान अपना भूसा

और पयाल अपने जानवरों को खिला भी दे, और उनके पोषक तत्त्वों का बहुत बड़ा अंश अपने खेतों में भी पहुँचा दे। परन्तु यह तभी सम्भव है जब कि वह बड़ी सावधानी से जानवरों के मल और मूत्र दोनों को उचित ढंग से सुरक्षित रखने का प्रयत्न करे। बहुत-से किसान गोबर की तो कुछ कद्र करते भी हैं, परन्तु मूत्र को नष्ट हो जाने देते हैं। वे भूल जाते हैं कि मूत्र में गोबर की तुलना में कहीं अधिक पोषक तत्त्व होते है। गोबर और मूत्र मे पोषक तत्त्व अलग-अलग किस अनुपात में होते हैं, यह नीचे दिया जाता है।

पोषक तत्त्व	गोबर मे	मूत्र में
नत्रजन	एक तिहाई	दो तिहाई
फास्फोरस	लगभग कुल	लगभग कुछ नही
पोटाश	$\frac{१}{५}$ भाग	$\frac{४}{५}$ भाग

इससे स्पष्ट है कि यदि मूत्र को नष्ट हो जाने दिया जाय, तो दो तिहाई नुकसान तो पहले ही हो चुका। मूत्र को सुरक्षित रखने के लिए उसे किसी चीज में सोखाना पड़ता है। जाड़ों में जब मक्खी-मच्छरों की अधिकता नहीं रहती, उस समय पशुशाला में पयाल या अन्य घास-फूस बिछाकर उसमें मूत्र को सोखाया जा सकता है। उस पयाल या घास-फूस का कम्पोस्ट बनाकर खेत में डाला जा सकता है। परन्तु गर्मी और बरसात में पशुशाला में सूखी बलुई मिट्टी बिछाकर मूत्र सोखाना चाहिए। इस काम के लिए वर्षा ऋतु शुरू होने के पहले सूखी बलुई मिट्टी इकट्ठी करके पशुशाला में रख लेनी चाहिए। पंद्रहवें या बीसवें दिन मिट्टी को उलट-पुलट देना चाहिए, जिससे बारी-बारी से सब मिट्टी मूत्र से तर हो जाय। कुल मिट्टी तर हो जाने के बाद उसे खेतों में सीधे खाद के रूप में डाला जा सकता है। यदि उसकी तुरन्त आवश्यकता न हो, तो गड्ढों में रखकर ऊपर से मामूली मिट्टी से ढक देना चाहिए।

गोबर की खाद तैयार करने में इस बात की सावधानी बरतने की आवश्यकता है कि उसका मूल्यवान् अंश पानी के साथ बह न जाय और अमोनिया गैस बनकर

हवा के साथ उड़ न जाय। प्रायः गाँवों में घूरे पर गोबर इकट्ठा करने की प्रथा है। यह बहुत ही ग़लत तरीका है। घूरे की खाद में से वर्षा के साथ पोषक तत्त्व घुलकर बह जाते हैं और धूप लगने पर नाइट्रोजन अमोनिया गैस बनकर उड़ जाता है। इस प्रकार असली तत्त्व नष्ट हो जाते हैं। इस हानि को बचाने के लिए खाद का गड्ढा ऐसे ऊँचे स्थान पर बनाना चाहिए, जहाँ बरसात में पानी न इकट्ठा होता हो। यदि खाद के गड्ढों के ऊपर छाजन हो तो और भी अच्छा है। परन्तु यदि यह सम्भव न हो तो गड्ढा भर जाने के बाद उस पर ९" (इंच) मोटी मिट्टी की तह इस प्रकार लगा देनी चाहिए कि उस पर पानी बिलकुल न रुके। गड्ढे के चारों ओर ऊँची मेड़ें बना देनी चाहिए, जिससे बाहर का पानी गड्ढे में न भर सके। गड्ढे की गहराई ३–४ फुट से अधिक न होनी चाहिए। इस प्रकार से गड्ढों मे रखा हुआ गोबर लगभग छः महीने में सड़कर खेत में डालने लायक तैयार हो जायगा।

गोबर की खाद का मूल्य

गोबर की खाद में प्राप्त पोषक तत्त्वों की मात्रा उसके सुरक्षित रखने के ढग तथा जानवरों को दिये जानेवाले भोजन पर निर्भर रहती है। यदि भोजन में दाने और खली की मात्रा अधिक होगी, तो खाद में भी पोषक तत्त्वों की मात्रा बढ़ जायगी। गाय-बैलों के मल-मूत्र से तैयार की हुई खाद में, यदि उसे ठीक से सुरक्षित रखा जाय और बाहर से खर-पतवार, पयाल या भूसा न मिलाया जाय, तो जानवरों को दिये जानेवाले भोजन के अनुसार .५–१.५% तक नाइट्रोजन, .३–.९% तक फास्फोरस और .५ से १.९% तक पोटाश पाया जायगा। परन्तु लापरवाही से रखी हुई खाद में .३% नाइट्रोजन, .२% फास्फोरस और .३% पोटाश औसतन पाया जाता है।

यदि किसान जानवरों के मल-मूत्र को सावधानी से सुरक्षित रखें और जानवरों को अच्छा भोजन दें, तो यह सम्भव है कि प्रति जानवर प्रति वर्ष १० गाड़ी खाद तैयार की जा सके, जिसमें १% नाइट्रोजन हो, जब कि अधिकांश किसानों के यहाँ ४ गाड़ी खाद प्रति जानवर प्रति वर्ष होती है, जिसमें केवल .५% नाइट्रोजन होता है। साधारण हिसाब लगाने के लिए

गोबर की खाद में .५% नाइट्रोजन .३३% फास्फोरस और .५% पोटाश मानना चाहिए। इस प्रकार से एक गाड़ी (१५ मन) गोबर की खाद में ६ पौंड नाइट्रोजन, ४ पौंड फास्फोरस और ६ पौंड पोटाश होता है।

प्रायः गोबर की खाद की रासायनिक खादों से तुलना करते समय किसान केवल नाइट्रोजन की ही मात्रा को जोड़ते हैं। परन्तु ऐसा करना उनकी भूल है, क्योंकि उपज बढ़ाने मे अन्य पोषक तत्त्व भी सहायक होते हैं। यदि नाइट्रोजन, फ़ास्फोरस और पोटाश सभी का मूल्य जोड़ा जाय, तो एक गाड़ी खाद का मूल्य रासायनिक खादों की वर्तमान दर के अनुसार ५.८४+२. ६६+४.५० = १३.०० रुपया होता है। यह तो सच है कि पोषक तत्त्वों की मात्रा बराबर होते हुए, गोबर की खाद की तुलना में रासायनिक खादों के प्रयोग से पैदावार मे वृद्धि अधिक होती है, परन्तु गोबर की खाद का असर कई वर्षों तक रहता है और इसके प्रयोग से मिट्टी की बनावट में भी सुधार होता है। इसमें मूल्यवान् पोषक तत्त्व तो होते ही हैं, इसके अतिरिक्त यह भूमि की ऐसी कमियों को पूरा करता है, जो रासायनिक खादों से सम्भव नहीं। अतः इसे सुरक्षित रखने की ओर किसानों को विशेष ध्यान देना चाहिए।

कम्पोस्ट

जानवरों के मल-मूत्र की मात्रा इतनी कम होती है कि केवल उसीके सहारे रहकर खाद की आवश्यकता पूरी नहीं की जा सकती। इसलिए कम्पोस्ट खाद बनाने की आवश्यकता पड़ती है। कम्पोस्ट सभी जैविक पदार्थों को सड़ाकर बनाया जा सकता है। गाँव में मिलनेवाली वे वस्तुएँ, जिनका कम्पोस्ट बनाने में प्रयोग किया जा सकता है, ये हैं——खर-पतवार और निकाई की घासें, बाँसों तथा अन्य वृक्षों की सूखी पत्तियाँ, गन्ने की पत्तियाँ, पुराने छप्पर, कूड़ा-करकट, राख, पौधों की जड़ें और डंठल, ताल-पोखरों में पैदा होनेवाले खर-पतवार, जलकुम्भी इत्यादि, या बचा हुआ भूसा, धान की भूसी, लकड़ी का बुरादा इत्यादि। इन सबका कम्पोस्ट बनाने का सबसे सरल उपाय यह है कि इन्हें पशुशाला में बिछा दें और इन वस्तुओं को गोबर और मूत्र से तर होने दें। पूरी तौर पर तर होने के पहले, इनमें और अधिक कचरा मिलाते रहना

चाहिए, जिससे बिछाली सूखी बनी रहे। सप्ताह में एक बार मिट्टी और राख डालते रहना चाहिए।

जब एक गड्ढे को भरने लायक बिछाली की पूरी सामग्री गोबर और मूत्र से सनकर तैयार हो जाय, तब उसके ऊपर चूना या राख बखेरकर, सूखे स्थानों पर पानी छिड़ककर, पूरे-के-पूरे कचरे को उठाकर गड्ढे में भर देना चाहिए। हाँ, गड्ढा भरते समय यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि कचरा कसकर बैठ जाय, जिससे उसमें हवा का प्रवेश कम-से-कम हो। गड्ढों को भरकर उसके ऊपर एक मोटी तह मिट्टी की लगा दी जाती है। इस प्रकार भरी हुई खाद ५–६ महीने में बिना पलटे ही तैयार हो जाती है। इस ढंग का प्रयोग करने से कचरा और गोबर इत्यादि पहले ही मिल जाते हैं और इनकी तहें लगाने की आवश्यकता नहीं रह जाती। साथ ही बार-बार पलटने से छुट्टी हो जाती है। खाद तैयार होने में थोड़ा अधिक समय तो अवश्य लगता है, फिर भी आसानी को देखते हुए, यह ढंग बहुत ही व्यावहारिक है।

कम्पोस्ट खाद बनाने से किसान को दो लाभ होते हैं। प्रथम तो यह कि कम्पोस्ट में, यदि वह उत्तम ढंग से बनायी जाय, गोबर की खाद की तुलना में लगभग दूना नाइट्रोजन होता है। दूसरा यह कि जितने गोबर से एक गाड़ी खाद तैयार होती है, उतने ही गोबर से तीन गाड़ी कम्पोस्ट तैयार होता है। इस प्रकार हम देखेंगे कि कुल का कुल गोबर यदि कम्पोस्ट बनाने के प्रयोग में लाया जाय, तो जितना नाइट्रोजन खेत में केवल गोबर की खाद से पहुँचाया जा सकता है, उसका लगभग ६ गुना नाइट्रोजन कम्पोस्ट बनाकर खेत में पहुँचाया जा सकता है।

कम्पोस्ट बनाने के लिए यह आवश्यक नहीं कि जानवरों के केवल मल-मूत्र का ही प्रयोग किया जाय। किसी भी ऐसे पदार्थ को, जिसमें नाइट्रोजन का अंश अधिक हो, कचरे के साथ मिलाकर कम्पोस्ट बनाने के प्रयोग में लाया जाता है। पुरानी खाद, तेलहन की खली, खून की खाद तथा रासायनिक खादें ऐसी वस्तुएँ हैं, जिनके घोल को जानवरों के मल-मूत्र के स्थान पर प्रयोग किया जा सकता है।

अन्य वानस्पतिक खादें

हरी खाद, गोबर की खाद और कम्पोस्ट के अलावा कुछ और भी ऐसी वानस्पतिक खादे है, जिनके विषय में उल्लेख कर देना आवश्यक है।

(१) **खली की खाद**––तेलहन के बीजों से तेल निकाल लेने के बाद जो खली बच रहती है, उसमे नाइट्रोजन का अंश काफी रहता है। अतः उसका प्रयोग खाद के रूप में होता है। खलियों में कुछ ऐसी खलियाँ भी हैं जो जानवरों को खिलाने के काम में आ सकती हैं, और कुछ ऐसी है जो जानवरों को खिलाने के योग्य नहीं होतीं। जो खलियाँ जानवरों के खिलाने योग्य नहीं हैं, उन्हें तो सीधे खेत में ही देना चाहिए, परन्तु जो जानवरों को खिलाने योग्य है, उन्हें पहले जानवरों को खिलाकर उनके मल-मूत्र को खाद के रूप में देना चाहिए।

जैसा पहले कह चुके हैं, जानवर जो पौष्टिक वस्तुएँ खाते हैं, उनका लगभग ८०% उनके मल-मूत्र के रूप में बाहर आ जाता है। इस प्रकार खलियाँ जानवरों को खिलाने से उनका पोषण भी होता है, साथ ही उनसे प्राप्त ८०% पोषक तत्त्व भूमि को भी पहुँचाये जा सकते हैं। प्रायः खलियों की खाद बहुत महँगी होती है। अतः इनका सीधे खेत में प्रयोग सभी दशाओं में लाभकर नहीं होता। इनका सबसे अच्छा प्रयोग यही है कि पहले इन्हें जानवरों को खिलाया जाय, फिर जानवरों के मल-मूत्र को खाद के रूप में खेत में डाला जाय।

किसान का यह भी प्रयत्न होना चाहिए कि जितना तेलहन उसके अपने खेत में पैदा हो, उसको वह अपने ही यहाँ पेरकर उसकी खली जानवरों को खिलाने या खेत में डालने के काम में लाये और केवल तेल ही बेचे। ऐसा करने से जितनी आमदनी तेलहन बेचने से उसे होगी, उतनी आमदनी उसे तेल बेचकर हो जायगी, और खली लगभग मुफ्त में मिल जायगी। एक अच्छे किसान के घर तेल का कोल्हू होना आवश्यक है।

(२) **ताल-पोखरों की खाद** ––बहुत-से जलाशय ऐसे हैं जिनमें पानी के खर-पतवार बहुत उपजते हैं। ये खर-पतवार जब सूखते हैं, तब सड़कर ताल के नीचे बैठ जाते हैं। इस प्रकार से सड़े हुए खर-पतवार की काफ़ी मोटी तह नीचे

जमा हो जाती है। यह तह खाद का काम दे सकती है और इसे ताल सूखने पर निकाला जा सकता है। जिन किसानों के निकट ऐसे बड़े जलाशय हों, जिनमें पानी के खरपतवार उपजते हैं, उन्हें उनके सूखने पर ऐसी खादों को निकालकर अपने खेतों मे डालना चाहिए। ऐसी खाद में १% से अधिक नाइट्रोजन होता है।

गाँव के छोटे पोखरों मे प्रायः जलकुम्भी उगती है। इसको भी खाद की तरह इस्तेमाल किया जा सकता है। इसे प्रयोग में लाने का सबसे सरल और सस्ता उपाय यही है कि इसे पोखरों से निकालकर सूखने के लिए फैला दिया जाय। जब वह सूखकर बिलकुल कड़ी हो जाय, तब उसे इकट्ठा करके, उस पर डँवरी चलाकर बारीक चूरा बना लिया जाय। इस बारीक चूरे में प्रति ४० मन पर १$\frac{१}{२}$ मन अमोनियम सल्फेट हिसाब से मिलाकर सीधे खेत मे डाला जा सकता है। यदि तुरन्त खेत में न डालना हो तो इसको जानवरों के मूत्र में सुखाकर कम्पोस्ट बना लेना चाहिए।

पोखरो के सूखने पर उनके अन्दर से जो मिट्टी निकलती है, वह भी खाद का काम दे सकती है। इसका कारण यह है कि अधिकांश पोखरों में गाँव का पानी बहकर आता है और उनके टीलों पर जानवर भी बैठते है। उनके अदर जो गंदगी और बहेंत की मिट्टी बहकर आती है, उसके कारण उनकी मिट्टी उपजाऊ हो जाती है। ऐसी मिट्टी विशेष कर बलुए खेतों के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुई है। इसी प्रकार पानी की नालियों की मिट्टी भी उपयोगी होती है। चीन देश में पोखरों तथा नालियों की मिट्टी का खाद के रूप में बहुत अधिक प्रयोग होता है। इससे उन्हें दोहरा लाभ होता है। एक तो खेत उपजाऊ बने रहते है, दूसरे पोखरे और पानी की नालियाँ भी भरने नहीं पातीं। भारतीय किसानों को भी इसका अनुकरण करना चाहिए।

(३) **प्रेसमड**—शक्कर के कारखानों से जो गन्ने के रस का मैल छनकर निकलता है, उसे प्रेसमड कहते हैं। इसमें १% नाइट्रोजन होता है, अतः इसका खाद के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। जिन चीनी-मिलों में रस का मैल निकालने के लिए सल्फिटेशन विधि का प्रयोग किया जाता है, उन्हीं के प्रेसमड को खाद के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। प्रेसमड खेत बोने

से तीन महीने पहले मिलाना चाहिए और ६ गाड़ी प्रति एकड़ से अधिक प्रयोग नही करना चाहिए, क्योंकि इसमे कुछ तत्त्व ऐसे होते है, जो अधिक मात्रा में होने पर नुकसान पहुँचा सकते है ।

(४) **धान की भूसी**——धान की भूसी और कन में १.९३% नाइट्रोजन होता है, अर्थात् धान के कन और भूसी की एक गाड़ी, गोबर की ४ गाड़ी खाद के बराबर होती है। मांडले (बरमा) के एक प्रयोग में ११ मन प्रति एकड़ धान की भूसी और कन खेत में डालने से धान की पैदावार ३०% बढ़ गयी। अतः जहाँ कहीं धान की भूसी बड़ी मात्रा में मिल सके, इसका खाद के रूप में प्रयोग करना चाहिए। इसको चूल्हे मे फूकना गोबर के फूँकने से भी अधिक हानिकर है।

(५) **मनुष्य के मल-मूत्र की खाद**——अन्य जानवरों के मल-मूत्र की भाँति मनुष्य के मल-मूत्र मे भी पौधों के पोषक तत्त्व पाये जाते है। औसत व्यक्ति के साल भर के मल-मूत्र मे लगभग उतने ही पोषक तत्त्व होते है, जितने दो गाड़ी गोबर की खाद में होते हैं। यह अनुमान लगाया गया है कि एक गाड़ी गोबर की खाद डालने से एक मन अन्न अधिक पैदा होता है, अतः यदि एक मनुष्य के साल भर के मल-मूत्र को सुरक्षित रखकर खाद के रूप में प्रयोग में लाया जाय तो उससे दो मन अधिक अन्न पैदा हो सकता है। परन्तु इस समय कुछ नगर-पालिकाओं को छोड़कर, अन्यत्र सभी जगह मनुष्य के मल-मूत्र को व्यर्थ ही नष्ट हो जाने दिया जाता है। यह एक राष्ट्रीय हानि है। इसको रोककर भारत की अन्न-समस्या बहुत हद तक हल की जा सकती है। चीन और जापान की कृषि-उन्नति का एक बड़ा कारण यह भी है कि वे इस बहुमूल्य खाद का पूरा प्रयोग करते हैं।

इसके प्रयोग से देश को कितना लाभ हो सकता है, इसका अनुमान इसी से हो सकता है कि १००० आबादी के गाँव के यदि पूरे मल-मूत्र का सदुपयोग हो, तो २००० मन अधिक अन्न पैदा हो सकता है, जिसका मूल्य लगभग ३०,००० रुपया हुआ। इस समय खेतों में मल-मूत्र त्यागने की जो प्रथा गाँवों में प्रचलित है, उसमें मल-मूत्र ऊपर ही पड़ा रहने के कारण धूप और वर्षा से उसका बहुत अंश नष्ट हो जाता है। इसके अतिरिक्त इसी प्रथा के

कारण गाँवों में पेचिश, हैज़ा इत्यादि की बीमारियाँ फैलती हैं। बीमारियों से बचने तथा कृषि की उन्नति, दोनों ही दृष्टि से मल-मूत्र को मिट्टी के नीचे दबा देना लाभप्रद है। इसका सबसे सरल उपाय यही है कि लोग जब टट्टी जायँ तो खुरपी या अन्य कोई ऐसा ही यंत्र साथ लेते जायँ और थोड़ी मिट्टी खोदकर तब उसमें मल-मूत्र करें, फिर मिट्टी से उसे ढक दें। ऐसा करने में न कोई पूंजी लगती है, न कोई विशेष परिश्रम करना पड़ता है, केवल आदत डालने की बात है।

नगर-पालिकाओं द्वारा मल-मूत्र से तैयार किये हुए कम्पोस्ट में मल-मूत्र के अलावा अन्य कूड़ा-करकट मिलाया जाता है। मल-मूत्र तथा कूड़ा-करकट का अनुपात कितना रखा जाता है, इसी पर कम्पोस्ट के पोषक तत्त्वों की मात्रा निर्भर रहती है। परन्तु यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि ऐसा कम्पोस्ट गोबर की खाद से कुछ अच्छा ही होता है, घटियाँ नहीं। शहरों के नजदीक रहनेवाले किसानों को नगर-कम्पोस्ट का, जहाँ तक वह मिल सके, प्रयोग करके लाभ उठाना चाहिए।

रासायनिक खादों का प्रयोग

किसान चाहे जितनी भी सावधानी से पशुओं के मल-मूत्र को सुरक्षित रखकर खाद तैयार करें, फिर भी इस प्रकार से तैयार की हुई खाद उनकी पूरी आवश्यकता पूरी नहीं कर सकती। कम्पोस्ट खाद बनाने के लिए खर-पतवार तथा अन्य वानस्पतिक पदार्थों का पर्याप्त मात्रा में मिलना कठिन है। हरी खाद का प्रयोग भी सभी अवस्थाओं में सम्भव नहीं है। गहन खेती करनेवाले किसान को एक ही खेत में साल में कई फसलें लेना रहता है, इसलिए खाद की उसे विशेष आवश्यकता रहती है। पूरी आवश्यकता को केवल वानस्पतिक खादों द्वारा पूरा नहीं किया जा सकता। इसे पूरा करने के लिए रासायनिक खादों का प्रयोग आवश्यक हो जाता है। रासायनिक खादों में यह गुण होता है कि वे भूमि में दिये जाने के बाद बहुत शीघ्र ही पौधों को प्राप्त हो जाती हैं। वानस्पतिक खादें पौधों के भोजन के रूप में धीरे-धीरे तैयार होती है। परन्तु पौधों के पूरे जीवन काल में पोषक तत्त्वों की आवश्यकता बराबर

एक-जैसी नहीं रहती, किसी समय आवश्यकता अधिक रहती है, और किसी समय कम। (देखिए चित्र ५)

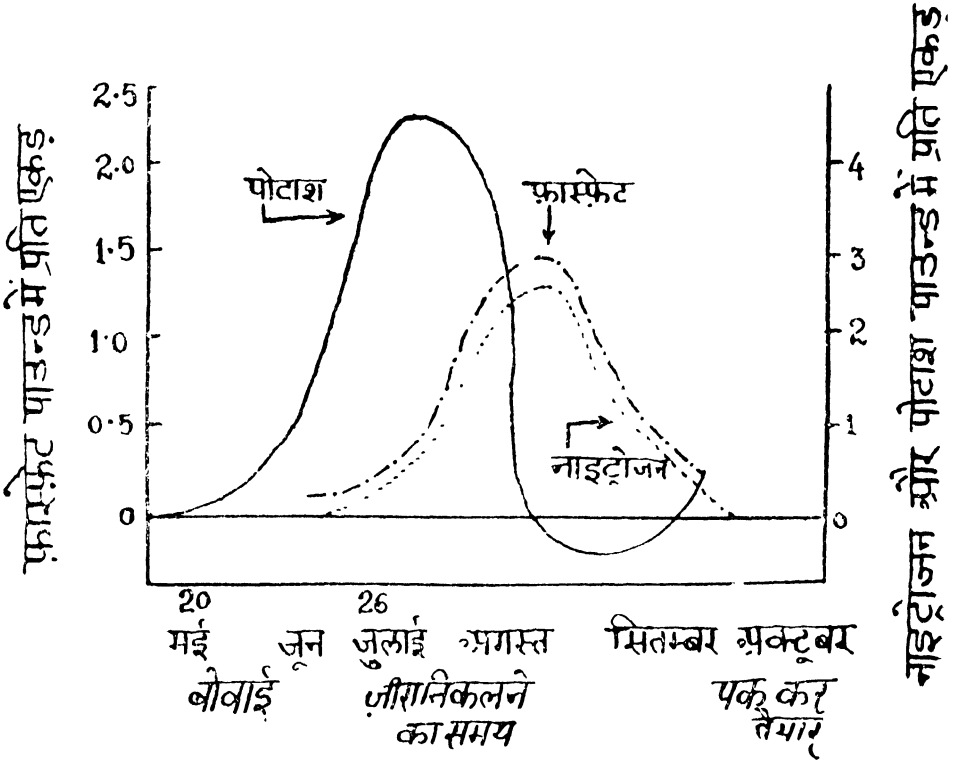

चित्र ५—**मक्का के पूरे जीवनकाल में पोषक तत्त्वों की आवश्यकता एक-सी नहीं रहती।**

जिस समय पोषक तत्त्वों की सबसे अधिक आवश्यकता होती है, तब उनके पूरी तरह से प्राप्त न होने पर पौधों के बढ़ाव और फ़सल की पैदावार पर बुरा असर पड़ता है। चूँकि वानस्पतिक खादें अपने पोषक तत्त्वों को बहुत धीरे-धीरे छोड़ती हैं, इसलिए यह संभव है कि जिस समय पौधों को पोषक तत्त्वों की सबसे अधिक आवश्यकता हो, उस समय उन्हें वह न मिल सके और इसके कारण उनकी पैदावार में कमी हो जाय। इस सम्भावना से बचने के लिए रासायनिक खादों का प्रयोग किया जाना चाहिए। रासायनिक खादों मे यह गुण है कि उनके पोषक तत्त्व जब कभी पौधों को आवश्यकता हो, तभी उनको पहुँचाये जा सकते हैं।

पोषक तत्त्वों का पौधों पर प्रभाव

रासायनिक खादों का उचित ढंग से प्रयोग करने के लिए यह आवश्यक है कि किसान इस बात को समझें कि पौधों के तीन मुख्य पोषक तत्त्व——नाइट्रोजन, फ़ास्फोरस और पोटाश पौधों को किस प्रकार प्रभावित करते हैं और इनकी कमी के कौन-से लक्षण है।

नाइट्रोजन प्रचुर मात्रा में प्राप्त होने पर पौधों की पत्तियों का रंग गाढ़े हरे रंग का होता है। पत्तियाँ, कल्ले और डालें तेजी से बढ़ती हैं। परन्तु जड़े उतनी नहीं बढ़ती, और सम्भवतः इसी कारण ऐसी फसलें, जिनमें अधिक नाइट्रोजन दिया गया हो, सूखा, अधिक ठंड तथा अन्य प्रतिकूल वातावरण सहन नही कर सकती। फसल पककर तैयार होने मे भी कुछ अधिक समय लगता है। उनमें कीड़े-मकोड़े तथा फँफूदी की बीमारियाँ लगने की सम्भावना रहती है, विशेष कर तब, जब नाइट्रोजन को छोड़कर अन्य पोषक तत्त्वों की कमी रहती है। अधिक नाइट्रोजन से फसलों की उपज बढ़ जाती है, परन्तु उनका स्वाद और गुण कुछ हद तक कम हो जाता है। परन्तु नाइट्रोजन के आधिक्य के सभी दोष अन्य पोषक तत्त्व पूरी मात्रा में देकर दूर किये जा सकते हैं। नाइट्रोजन के अभाव में पत्तियाँ पीली पड़ जाती है और उनका बढ़ाव कम हो जाता है।

फास्फोरस पौधों को, उनके उगने पर, तेज़ी से बढ़ने में सहायता देता है। फास्फोरस प्रचुर मात्रा में प्राप्त होने पर पौधों की जड़े तेज़ी से बढ़ती हैं और फसले पककर जल्द तैयार होती है। फास्फोरस पौधों की जड़ों के ऊपरी भाग को बढ़ाने में बहुत सहायक नहीं होता, परन्तु पौधों के उगने के समय फास्फोरस की उपस्थिति से होनेवाले तीव्र बढ़ाव का प्रभाव अत तक रहता है। फास्फोरस दानों और बीज को मजबूत बनाता है। इसकी उपस्थिति से दलहन (लिग्यूमिनस) की फसलें अधिक बढ़ती है। जड़ों के अधिक फैलाव के कारण पौधों में सूखा, अधिक ठंड तथा अन्य प्रतिकूल परिस्थितियों को सहन करने की क्षमता आ जाती है। फास्फोरस की कमी से पौधों की पत्तियों का हरा रंग लाल या बैंगनी झाँई लिये हुए हो जाता है। (रंगीन चित्र देखिए)

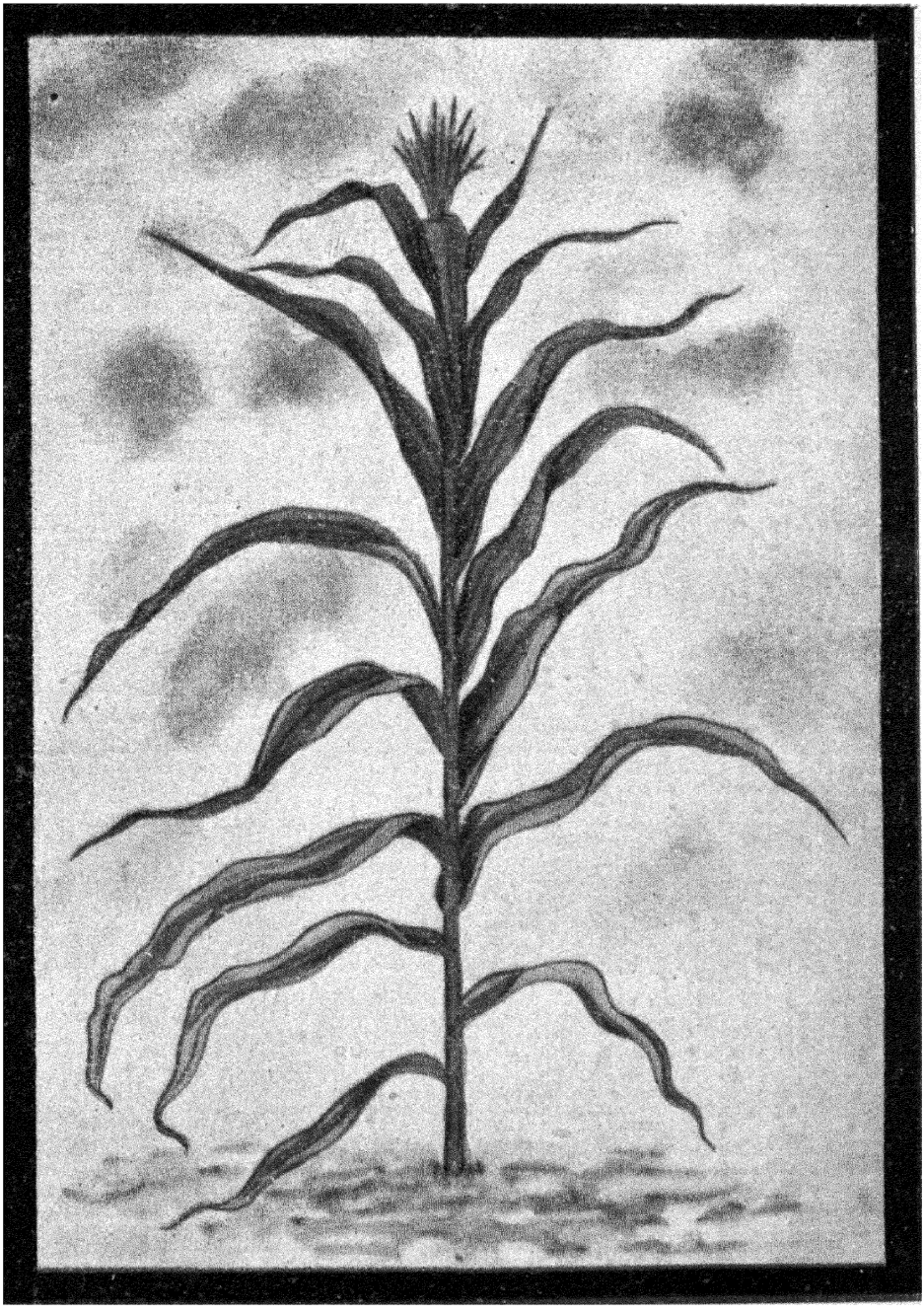

चित्र ५ क—नत्रजन की अधिक कमी से पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं।
(पृ० ३०)

पोटाश पौधों में कार्बोहाइड्रेट के एकत्रित करने में सहायक होता है। वह पत्तियों और टहनियों के विकास में भी सहायक होता है। पोटाश की कमी से टहनियाँ कमजोर और सहज में टूटने लायक हो जाती हैं। पत्तियों का स्वाभाविक रंग बदलकर भद्दे ताँबे जैसा हो जाता है (चित्र ५ ग) और उनके किनारे झुलसे हुए दिखाई देते हैं। पत्तियों में कभी-कभी बादामी रंग के धब्बे पड़ जाते हैं और वे समय से पूर्व गिर जाती हैं। पौधों का जीवन-काल घट जाता है। पोटाश की कमी से फँफूदी की बीमारियाँ, जैसे गेहूँ में गेरुई तथा आलू में झुलसा इत्यादि लगने की सम्भावना बहुत बढ़ जाती है।

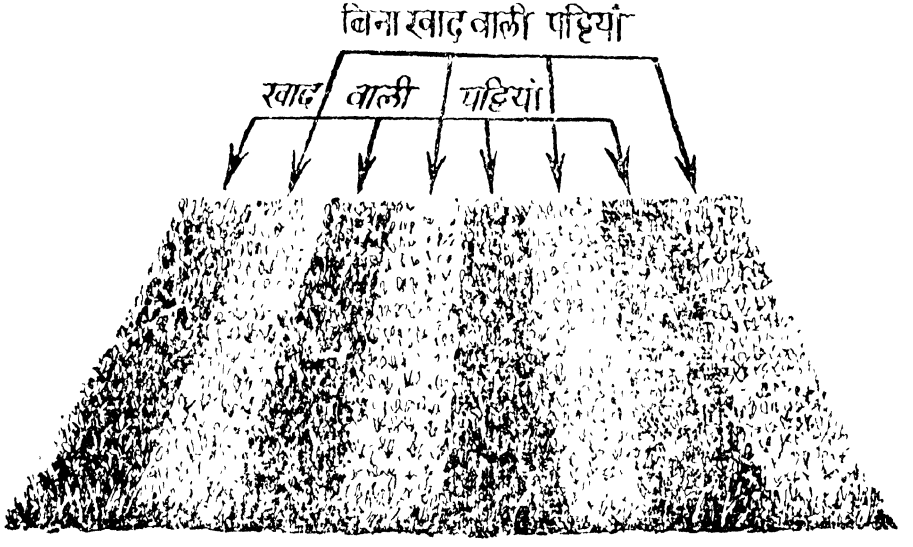

चित्र ६—खाद की उपयोगिता जाँचने का सरल ढंग।

पोषक तत्त्वों की कमी का परीक्षण

कुछ हद तक भूमि में पौधों के पोषक तत्त्वों की कमी का अनुमान, पौधों की शक्ल तथा उनकी पत्तियों के रूप-रंग को देखकर लगाया जा सकता है। किसान को धीरे-धीरे अपनी आँखों को परचा लेना चाहिए कि वह पौधों को देखकर यह अनुमान लगा सके कि उनमें किन पोषक तत्त्वों की कमी है। परन्तु पोषक तत्त्वों का ठीक से पता केवल मिट्टी की रासायनिक जाँच द्वारा ही सम्भव है। राज्य का कृषि-विभाग भिन्न-भिन्न केन्द्रों की जाँच कराकर एक

नकशा तैयार करा रहा है, जिसके द्वारा यह पता लग सके कि किस क्षेत्र में कौन-से पोषक तत्त्व की कमी है। परन्तु यह काम अभी पूरा नहीं हुआ है। इसलिए यह जानने के लिए कि कहाँ कौन-से पोषक तत्त्व की कमी है, किसान को अपने खेत में स्वयं प्रयोग करना चाहिए। यह बहुत कठिन नहीं है। यह आसानी से पता लगाया जा सकता है कि भूमि मे किसी खाद-विशेष के देने से लाभ होगा या नही, और यदि होगा, तो कितना। इसके लिए उसको अपने खेत को पट्टियों मे बाँट लेना चाहिए, और एक के बाद एक का अन्तर देकर वह खाद खेत में देनी चाहिए जिसका परीक्षण करना है। खाद दी हुई और बिना खाद दी हुई पट्टियों की लम्बाई-चौड़ाई और संख्या बराबर होनी चाहिए, जैसा चित्रसंख्या ६ में दिखलाया गया है।

फसल कटने पर उन पट्टियों की उपज एक स्थान पर रखनी चाहिए जिनमें खाद दी गयी है, और जिनमें खाद नहीं दी गयी है उनकी उपज दूसरे स्थान पर रखनी चाहिए। दोनों की अलग-अलग दँवाई करके दोनों पैदावारों का अंतर मालूम करना चाहिए। यदि खाद दी हुई पट्टियों की पैदावार अधिक हुई है, तो इससे यही नतीजा निकालना चाहिए कि भूमि में उस खाद की कमी है। आर्थिक दृष्टि से खाद डालने में लाभ होगा या नहीं, खाद दिये हुए टुकड़े की अतिरिक्त पैदावार का मूल्य बाजार-भाव पर जोड़ना चाहिए और उसकी तुलना खाद के मूल्य से करनी चाहिए। यदि स्पष्ट लाभ दिखाई दे, तभी खाद का प्रयोग करना चाहिए।

रासायनिक खादें

नाइट्रोजन पहुँचानेवाली मुख्य-मुख्य रासायनिक खादें अमोनियम सल्फेट, अमोनियम नाइट्रेट, अमोनियम सल्फेट नाइट्रेट, अमोनियम क्लोराइड, पोटैशियम नाइट्रेट, सोडियम नाइट्रेट, कैलसियम नाइट्रेट, कैलसियम सिनामाइड और यूरिया है।

नाइट्रोजन-पूरक रासायनिक खादों के इस्तेमाल में इस बात की सावधानी बरतनी चाहिए कि फसलों के बीज खादों के सम्पर्क में न आने

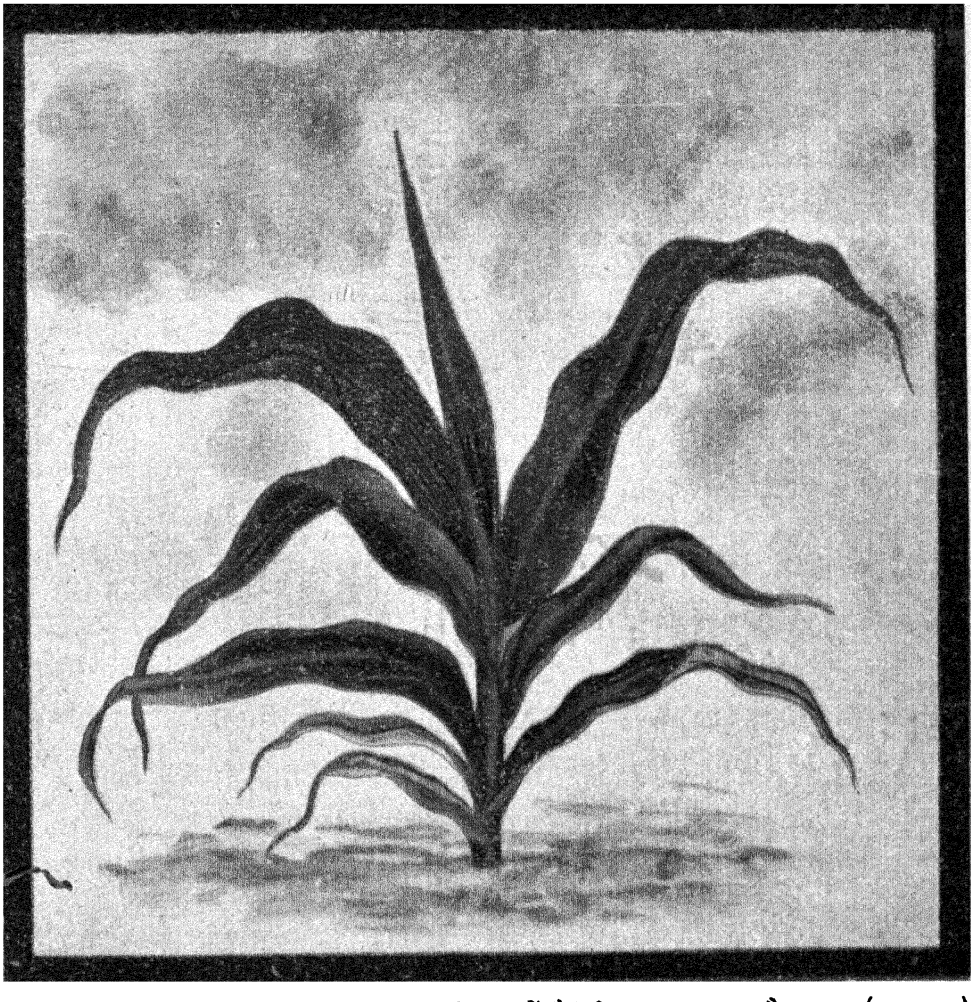

चित्र ५ ख—फ़ास्फोरस की कमी से पत्तियों में बैंगनीपन आ जाता है। (पृ० ३०)

पायें, क्योंकि अधिकांश खादें ऐसी हैं, जिनके सम्पर्क में बीजों के आने से उनको नुकसान पहुँचने का डर रहता है। अतः ऐसी खादों को और बीज को एक साथ नहीं बोना चाहिए। इन खादों को या तो बोवाई के पहले अंतिम जुताई के साथ देना चाहिए, या फिर फसलों की सिंचाई के समय।

फास्फोरस मुख्यतः सुपरफास्फेट और हड्डी के चूरे की शक्ल में दिया जाता है। यह दो प्रकार का होता है। एक साधारण, जिसमें १५ से २५% 'पी० २ वो० ५' होती है, और दूसरा डबल सुपरफास्फेट, जिसमें ४० से ४५% पी० २ वो० ५ होती है। हड्डी के चूरे में २३% पी० २ वो० ५ होती है, परन्तु यह पौधों को बहुत धीरे-धीरे प्राप्त होती है। अतः हड्डी का चूरा ज्यादातर फलों के पौधों को दिया जाता है, जिनकी आवश्यकता इनके द्वारा धीरे-धीरे पूरी होती रहती है। उन फसलों में जिनका जीवनकाल कम होता है और जिन्हें फास्फोरस की शीघ्र आवश्यकता होती है, सुपरफास्फेट या डबल सुपरफास्फेट देना चाहिए।

फास्फोरस पूरक खादों के प्रयोग में यह कठिनाई है कि फास्फरीय अम्ल भूमि में प्राप्त कुछ तत्त्वों से मिलकर एक ऐसा रूप धारण कर लेता है, जो पानी में घुल नहीं सकता, और इस प्रकार पौधों के लिए बेकार हो जाता है। परन्तु इन खादों को यदि भूमि के नीचे पौधों की जड़ों के पास ही दिया जाय, तो काफी अंश अघुलनशील होने के पहले पौधों की जड़ों द्वारा प्रयोग में आ जाता है। इसलिए फास्फोरस पूरक खादें हमेशा भूमि के नीचे दी जानी चाहिए। ऊपर से सुपरफास्फेट छिड़कना लगभग बेकार-सा है। प्रयत्न यह होना चाहिए कि सुपरफास्फेट खाद बीज की सतह के दो इंच नीचे पहुँचायी जाय। इसके लिए सरल उपाय यही है कि खेत की अंतिम जुताई के समय एक ही कूँड़ (हराई) में दो बार हल चलाया जाय, और फिर उसमें खाद डाली जाय, जिससे वह काफी नीचे पहुँच जाय। इस तरह से खाद डालने के बाद खेत में पटेला चलाकर खेत बराबर कर लेना चाहिए और उसके बाद बीज बोना चाहिए। सुपरफास्फेट खाद और बीज को एक ही साथ कूँड़ में बोया जा सकता है, क्योंकि सुपरफास्फेट खाद से बीज को नुकसान पहुँचने का डर नहीं रहता।

यह भी देखा गया है कि सुपरफास्फेट खादों की उपयोगिता वानस्पतिक खादों की उपस्थिति में बढ़ जाती है। इसका कारण यह है कि वानस्पतिक खादें जब खेत में सड़ती हैं तो उनमें तेज़ाब उत्पन्न होते हैं। यह तेज़ाब भी भूमि के उन्हीं अंशों से मिलना चाहते हैं, जिनसे मिलकर फास्फरीय अम्ल अघुलनशील हो जाता है। इन वानस्पतिक और फास्फरीय तेजाबों में भूमि के उस अंश को पकड़ने की होड़ लगती है, जिससे मिलकर अघुलनशील पदार्थ बनता है। इस मुकाबले में वानस्पतिक तेज़ाब फास्फरीय तेज़ाब से अधिक सफल रहता है और इस प्रकार से फास्फेट घुलनशील अवस्था में ही बना रहता है। यही कारण है कि हरी खाद तथा अन्य वानस्पतिक खादों को मिलाकर फास्फेटिक खाद देने से उसकी उपयोगिता बढ़ जाती है।

अधिकांश जमीनों में पोटाश की कमी नहीं है, परन्तु यदि इसकी कमी के लक्षण दिखाई दें, तो पोटैशियम सल्फेट या पोटैशियम नाइट्रेट का प्रयोग करना चाहिए। यदि काफी मात्रा में राख मिल सके तो उसके प्रयोग से भी पोटाश की कमी को दूर किया जा सकता है। राख में लगभग ५% पोटाश होता है। राख का प्रयोग विशेष कर उन फसलों में करना चाहिए, जिनमें नीचे गाँठें पड़ती हैं, जैसे आलू, शकरकंद इत्यादि।

भिन्न-भिन्न खादों में पोषक तत्त्व किस मात्रा में होते हैं, यह निम्नलिखित तालिका में दिया जाता है।

कार्बनिक	प्रतिशत पौंड पोषक तत्त्वों की मात्रा		
	नाइट्रोजन	फास्फेट	पोटाश
(नाइट्रोजन पूरक)			
पशुओं के मल-मूत्र और गोबर की सड़ी हुई खाद	०.५	०.३	०.६
कम्पोस्ट—जिस प्रकार की वस्तुओं से यह बनता है, उनके तत्त्वों के आधार पर इसके तत्त्व निर्भर हैं। साधारण हिसाब के लिए इसे गोबर की खाद के समान मान सकते हैं।			

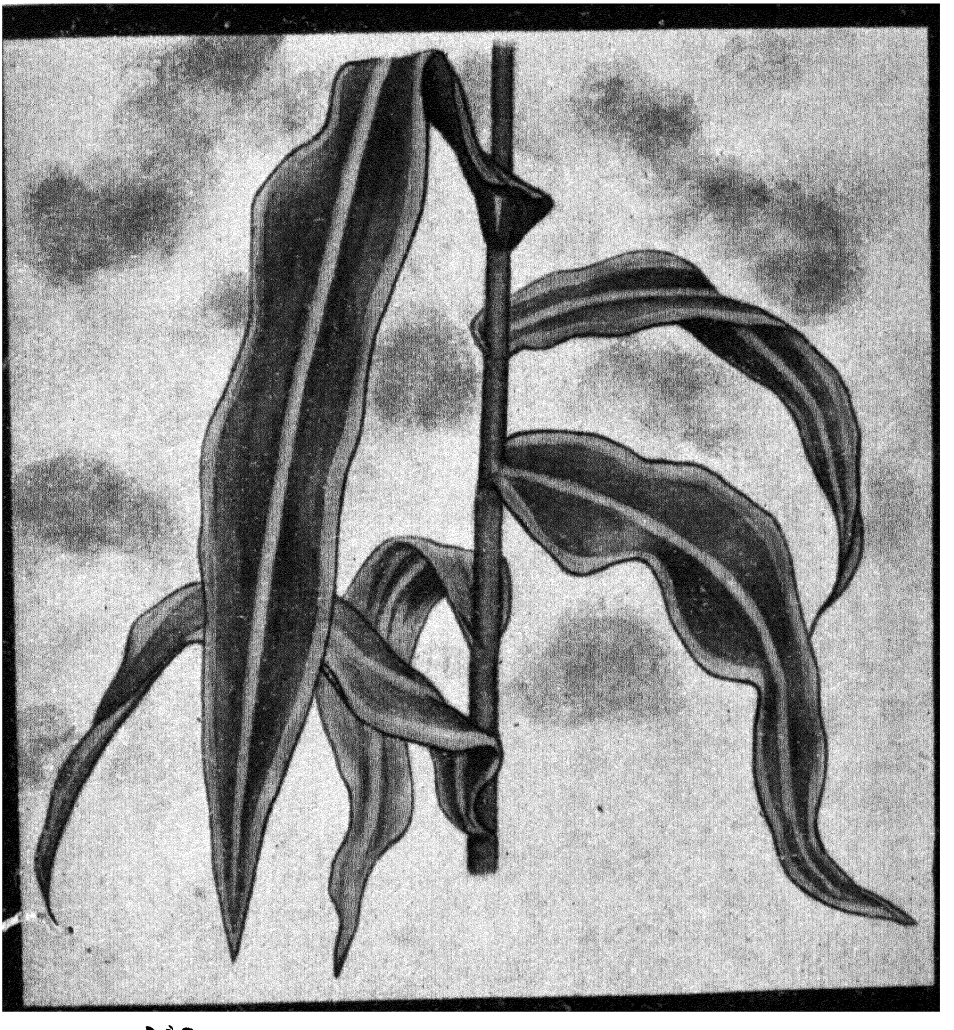

चित्र ५ ग—पोटैशियम की अधिक कमी होने से पत्तियों के किनारे झुलसे हुए-से दिखाई देते हैं। (पृ० ३१)

कार्बनिक	प्रतिशत पौंड पोषक तत्त्वों की मात्रा		
	नाइट्रोजन	फास्फेट	पोटाश
(नाइट्रोजन पूरक)			
हरे तथा सूखे पत्तों की खाद (सूखे पत्तों में)	१.५	०.२	०.४
हरी खाद––मात्राएँ हरी खादों के वर्णन में दी गयी हैं ।			
मनुष्यों का मल	१.०	१.१	०.२५
मनुष्यों का मूत्र	०.६	०.२	०.२
स्लज, सूखी हुई	३से५	२से३०	.५से१.०
पक्षियों की विष्ठा	४.०	२.३	१.२
चमगादड़ की विष्ठा	३.८	१.३	१.२
(खलियाँ पशुओं को खिलाई जानेवाली)			
मूँगफली	७.६	२.३	२.२
सरसों	५.६	१.९	१.४
कुसुम	५.८	१.३	१.२
अलसी	५.०	१.६	१.६
तिल	५.०	१.१	१.०
रमतिली	४.५	२.०	१.९
नारियल	३.७	१.९	१.८
बिनौला (कपास के बीज छिलका सहित की खली)	२.६	१.२	१.१
रेंड़ी	५.०	१.८	१.६
नीम	४.४	१.०	१.४
करंज	३.५	०.७	१.३
महुआ	२.६	०.८	२.८
मछलियों की खाद	८.०	६.०	×
(फास्फोरस पूरक)			
हड्डी का चूरा	३.८	२३.२	०.१
ग्वानो, बिना धुला हुआ	४.५	४.८	×
बरसात से धुला हुआ		७–९	

कार्बनिक	प्रतिशत पौंड पोषक तत्त्वों की मात्रा		
	नाइट्रोजन	फास्फेट	पोटाश
(नाइट्रोजन पूरक)			
हरे तथा सूखे पत्तों की खाद (सूखे पत्तों मे)	१.५	०.२	०.४
हरी खाद--मात्राएँ हरी खादों के वर्णन में दी गयी हैं ।			
मनुष्यों का मल	१.०	१.१	०.२५
मनुष्यों का मूत्र	०.६	०.२	०.२
स्लज, सूखी हुई	३से५	२से३०	.५से१.०
पक्षियों की विष्ठा	४.०	२.३	१.२
चमगादड़ की विष्ठा	३.८	१.३	१.२
(खलियाँ पशुओं को खिलाई जानेवाली)			
मूँगफली	७.६	२ ३	२.२
सरसों	५.६	१.९	१.४
कुसुम	५.८	१ ३	१.२
अलसी	५.०	१.६	१.६
तिल	५.०	१.१	१.०
रमतिली	४.५	२.०	१.९
नारियल	३.७	१.९	१.८
बिनौला (कपास के बीज छिलका सहित की खली)	२.६	१.२	१.१
रेंड़ी	५.०	१.८	१.६
नीम	४.४	१.०	१.४
करंज	३.५	०.७	१.३
महुआ	२.६	०.८	२.८
मछलियों की खाद	८.०	६.०	×
(फास्फोरस पूरक)			
हड्डी का चूरा	३.८	२३.२	०.१
ग्वानो, बिना धुला हुआ	४.५	४.८	×
बरसात से धुला हुआ		७–९	

कार्बनिक	प्रतिशत पौंड पोषक तत्त्वों की मात्रा		
	नाइट्रोजन	फास्फेट	पोटाश
(पोटैशियम पूरक)			
तम्बाकू के डंठल	×	×	४.९
सेवार (सूखे पदार्थ में)	१	०.४	२.०
(नाइट्रोजन पूरक, अकार्बनिक)			
सोडियम नाइट्रेट	१५.०		
अमोनियम सल्फेट	२०.०		
अमोनियम क्लोराइड	२५.०		
अमोनियम नाइट्रेट	३५.०		
कैलसियम सायनामाइड	२०.०		
यूरिया	४४.०		
अमोनियम सल्फेट नाइट्रेट	२६.०		
(फास्फोरस पूरक)			
सुपर फास्फेट सिंगल		२०.०	
सुपर फास्फेट डबल		४०–४५	
बेसिक स्लैग		१६–१८	
(पोटैशियम पूरक)			
पोटैशियम सल्फेट			४८ ०
पोटैशियम क्लोराइड			५०.०
(नाइट्रोजन और फास्फोरस पूरक)			
ऐमोफास	१३.०	४८.०	
डायमन फास	२१.०	५४.०	
(नाइट्रोजन और पोटैशियम पूरक)			
पोटैशियम नाइट्रेट	१४.०		४८.०
(फास्फोरस और पोटैशियम पूरक)			
नाइट्रोफोस्का		१५.०	२०.०
खदानी फास्फेट		२०–२५	

इस तालिका से यह जाना जा सकता है कि कौन-सी खाद किस मात्रा में देनी चाहिए। उदाहरण के लिए, एक एकड़ गन्ने में यदि १२० पौंड नाइट्रोजन

देना है, और यदि इसे हरी खाद, रेंड़ी की खली की खाद और अमोनियम सल्फेट के रूप में देना है, तो निम्नलिखित ढंग से हिसाब लगाया जा सकता है।

कुल नाइट्रोजन की आवश्यकता	१२० पौंड
हरी खाद से पूर्त्ति	५० पौंड
नाइट्रोजन की कमी जिसे रेंड़ी की खली और अमोनियम सल्फेट से पूरा करना है	७० पौंड

यदि ७० पौंड नाइट्रोजन का आधा, ३५ पौंड रेंडी की खली से और आधा अमोनियम सल्फेट से पूरा करना है, तो

चूँकि ५ पौंड नाइट्रोजन १०० पौंड रेंड़ी की खली में होता है,

इसलिए ३५ पौंड नाइट्रोजन $\frac{१००}{५} \times ३५$ पौंड

= ७०० पौंड रेंड़ी की खली में होता है, अर्थात्

= लगभग ८ मन ३० सेर रेंड़ी की खली से पूरा किया जा सकता है।

इसी प्रकार अमोनियम सल्फेट के रूप में ३५ पौंड नाइट्रोजन $१०० \times \frac{३५}{२०}$

= १७५ पौंड, अर्थात् लगभग २ मन ५ सेर अमोनियम सल्फेट से पूरा किया जा सकता है।

उपर्युक्त ढंग से अन्य फसलों तथा अन्य पोषक तत्त्वों के लिए भी हिसाब लगाया जा सकता है।

भूमि-सुरक्षा

भूमि में हरी खाद, कम्पोस्ट तथा अन्य खाद देने का महत्त्व प्रायः सभी समझते है। परन्तु यह बात बहुत कम लोग समझते हैं कि भूमि की उर्वरा शक्ति फसलें पैदा करने से उतनी कम नहीं होती, जितनी भूमि-कटाव से। यहाँ भूमि-कटाव से तात्पर्य केवल भूमि के कटकर नदी-नाले और पोखरों में बह जाने से नहीं है, बल्कि वर्षा तथा तेज हवा द्वारा जितनी भी क्षति भूमि की उर्वरा शक्ति को पहुँचती है, उन सबसे है। प्रायः यह समझा जाता है

कि भूमि-कटाव से नुकसान केवल ऊँची-नीची भूमि में ही होता है और उन किसानों को, जिनके खेत समतल हैं, भूमि-कटाव के विषय में चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। परन्तु बात ऐसी नहीं है, जैसा कि आगे चलकर स्पष्ट हो जायगा।

भूमि-कटाव प्रायः दो प्रकार से होता है—

(१) तेज वर्षा द्वारा,

(२) तेज हवा द्वारा।

तेज वर्षा से भूमि-कटाव

वर्षा कृषि के लिए जितनी ही आवश्यक है, यदि उसके दुष्परिणामों से बचने का उपाय न किया जाय, तो वह उतनी ही विनाशकारी भी है। यद्यपि

चित्र ७—पानी की एक बूँद, भूमि से टकराते समय।

वर्षा की बूँदें छोटी होती हैं, परन्तु ऊँचाई से गिरने के कारण वे बड़े वेग से गिरती हैं। वर्षा की बूँदों की तुलना छोटे-छोटे विस्फोटक बमों से की जा सकती है (देखिए, चित्र संख्या ७)।

पानी की एक बूँद का यह चित्र उसके भूमि से टकराते समय लिया गया है। यह पानी की बूँद थोड़ी ही ऊँचाई से गिरायी गयी थी। वर्षा की बूँदें और अधिक ऊपर से गिरती हैं, अतः इस बात का अनुमान लगाया जा सकता है कि वे भूमि से और भी अधिक ज़ोर से टकराती होंगी।

वर्षा तीन प्रकार से भूमि की उर्वरा शक्ति को क्षति पहुँचाती है।

(१) भूमि के मृत्तिका-कणों को तोड़कर;
(२) भूमि के उपजाऊ भाग को बहाकर;
(३) तल काट अथवा शीट इरोज़न द्वारा।

(१) **भूमि के कणों को तोड़कर**—यह पहले ही बताया जा चुका है कि पैदावार पर भूमि की बनावट का बहुत बड़ा असर पड़ता है। भूमि के कण जितने ही बड़े होंगे, हवा और पानी का प्रवेश उसमें उतनी ही सुगमता से हो सकेगा। पोषक तत्त्वों के होते हुए भी, यदि भूमि की बनावट बिगड़ जाय और हवा एवं पानी का प्रवेश न हो सके, तो फसलें अच्छी नही पैदा हो सकतीं। तेज वर्षा के समय पानी की बूँदें जब भूमि के टुकड़ों से टकराती हैं, तो वे उन्हें तोड़कर बहुत छोटे-छोटे कण बना देती हैं जो सिमटकर बैठ जाते हैं। कण से कण के बीच में अंतर कम हो जाने के कारण उसमें पानी का प्रवेश रुक जाता है। वर्षा की तेज बूँदों का दूसरा प्रभाव यह भी होता है कि वे कीचड़ को उछाल-उछालकर मिट्टी और पानी का एक घोल तैयार कर देती हैं। यह घोल स्वच्छ पानी की तुलना में गाढ़ा होने के कारण भूमि में आसानी से नहीं घुस सकता। इस प्रकार तेज वर्षा का परिणाम यह होता है कि भूमि में पानी घुसने की रफ्तार धीमी पड़ जाती है।

एक प्रयोग में भूमि के दो टुकड़े किये गये। एक टुकड़ा खाली छोड़ दिया गया और दूसरे पर पयाल बिछा दिया गया। उसके बाद कृत्रिम रूप से सवा दो इंच प्रति घंटा के हिसाब से २० मिनट तक दोनों पर

वर्षा करायी गयी। जो पानी भूमि द्वारा नहीं सोखा गया, उसे निकालकर नापा गया। नाप से यह मालूम हुआ कि जिस टुकड़े पर पयाल बिछाया गया था, उसमे ३५% पानी सोखा गया और जिस पर कुछ भी नहीं बिछाया गया था, उसमें केवल ७.३% पानी सोखा गया। एक अन्य प्रयोग में देखा गया कि पूरे वर्षा-काल में उस भूमि मे, जिस पर घने चारे की फसल लगी थी, ८७.४% पानी सोखा गया, जब कि उसकी बगल के दूसरे खेत में, जिसमें मक्का बोया गया था, केवल ६९.६% पानी सोखा गया। इस प्रकार से हम देखेंगे कि भूमि के ऊपर घनी हरी फसल से या सूखा पयाल इत्यादि बिछाने से भूमि में पानी अधिक सूखता है। वर्षा बंद होने, या सूखा पड़ने पर, यह सोखा हुआ पानी फसलों के काम आता है। सोखा हुआ पानी या भूमि की नमी फसलों के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि कम वर्षा के दिनों में फसलों का पैदा होना या सूख जाना इसी बात पर निर्भर होता है कि भूमि में कितनी नमी सुरक्षित है।

(२) **भूमि के उपजाऊ भाग को बहा ले जाना**––जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, पानी की बूंदें भूमि के कणों को तोड़ देती है और जब पानी अधिक हो जाता है तब भूमि का वह अंश, जो अपेक्षाकृत हलका होता है, पानी के ऊपर उतराकर पानी के साथ बह जाता है। भूमि का सबसे हलका भाग जैविक पदार्थ ही होता है, जो भूमि को उपजाऊ बनाने में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। सिल्ट (वहेंड़ की मिट्टी) और चिकनी मिट्टी भी भूमि को उपजाऊ बनाने में सहायक होती हैं। यद्यपि इनके कण पानी से हलके नही होते, फिर भी बहुत छोटे होने के कारण, इनका वजन अधिक नहीं होता और ये पानी के साथ बह जाते है।

इस प्रकार से हम देखेंगे कि जैविक पदार्थ, सिल्ट और चिकनी मिट्टी, अर्थात् वह सब भाग जिसके द्वारा मिट्टी उपजाऊ बनती है, तेज वर्षा के फलस्वरूप पानी के साथ बह जाते है। उपर्युक्त प्रयोग में, जिसमें एक टुकड़े पर पयाल बिछाया गया और दूसरा खाली रखा गया था, यह देखा गया था कि जिस भूमि की रक्षा पयाल द्वारा हो रही थी, उसमें से केवल .४२ टन प्रति एकड़ मिट्टी बह गयी, जब कि असुरक्षित टुकड़े से प्रति एकड़ ५.६२ टन मिट्टी बह गयी।

एक अन्य प्रयोग में एक दिन तेज वर्षा से पहले और उसके बाद एक खेत की मिट्टी की जाँच की गयी। वर्षा के पहले इस भूमि में ३.०५% जैविक पदार्थ था, जो वर्षा के बाद घटकर केवल २.४४% रह गया। जो मिट्टी खेत से पानी के साथ बह गयी, उसमें ५.३५% जैविक पदार्थ पाया गया।

इस एक ही वर्षा के फलस्वरूप भूमि में सिल्ट (बहेंड़ की मिट्टी) ६%, चिकनी मिट्टी ७%, कार्बनिक पदार्थ २०% और नाइट्रोजन २०% बहकर नष्ट हो गया। अब तक यह समझा जाता था कि भूमि में जैविक पदार्थ की क्षति मुख्यतः उसके आक्सीकरण द्वारा होती है और उसे भारत-जैसे गरम देश में रोका नहीं जा सकता। परन्तु अब यह मालूम हुआ है कि कार्बनिक पदार्थ की क्षति का मुख्य कारण आक्सीकरण नहीं है, वरन् भूमि-कटाव है। प्रयोगों से यह सिद्ध हुआ है कि आक्सीकरण की तुलना में भूमि-कटाव द्वारा जैविक पदार्थ की क्षति २५ गुने से भी अधिक होती है।

इस दृष्टि से भूमि को बरसात में खाली छोड़ना अत्यन्त हानिकारक है। नीचे हम उन पोषक तत्त्वों की क्षति की मात्रा देते हैं, जो एक वर्ष में एक एकड़ खाली पड़ी हुई भूमि पर वर्षा के कारण हुई। ये आँकड़े संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के मिसौरी प्रदेश में किये गये एक प्रयोग के फलस्वरूप प्राप्त हुए हैं।

नाइट्रोजन	११८.१३	पौंड
फास्फोरस	३७.७५	,,
पोटाश	१२४५.५५	,,
मैगनीशियम	१७१.९४	,,
कैल्शियम	४५८.५१	,,
सल्फर	४६.७२	,,

यद्यपि ये आँकड़े संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के हैं, फिर भी इनसे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वर्षा से यदि भूमि-कटाव का बचाव न किया जाय तो भूमि को कितनी क्षति पहुँच सकती है। भूमि-कटाव में जो मिट्टी बह जाती है, उसमें पोषक तत्त्वों का अंश अधिक होता है। इसलिए जो भूमि बच रहती है, उसकी उपजाऊ शक्ति कम हो जाती है।

(३) **तल-काट**––तेज वर्षा के समय जब भूमि पानी को नहीं सोख सकती, तो वह खेत के ऊपर से बह निकलता है। इस बहते हुए पानी में मिट्टी का अंश

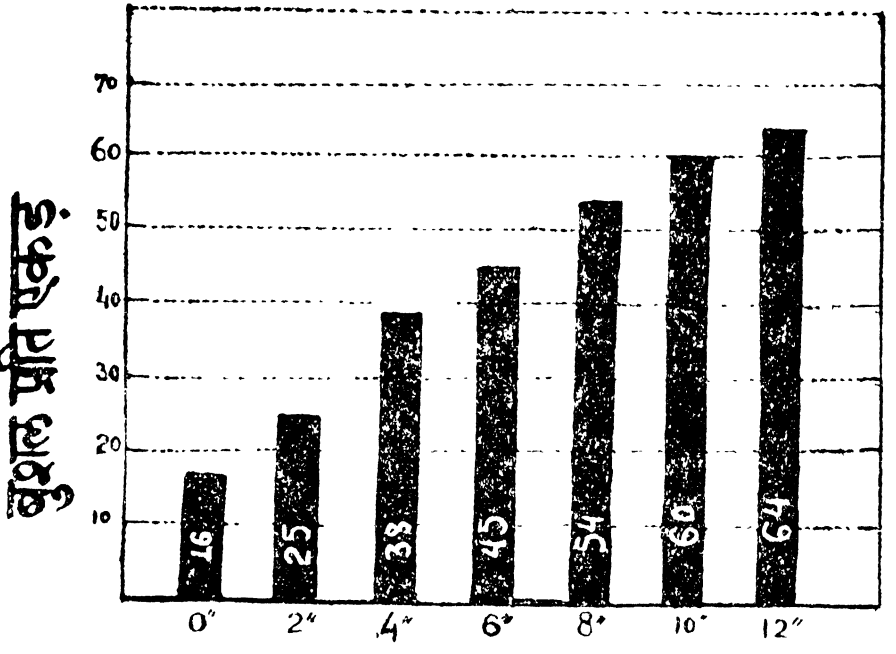

चित्र ८.––**मिट्टी की गहराई का प्रति एकड़ पैदावार पर प्रभाव।**

अधिक होता है, जो भूमि के ऊपर सैंड पेपर (बलुआ कागज) का काम करता है। इस प्रकार से बहता हुआ पानी भूमि की ऊपरी सतह को खुरच कर अपने साथ बहा ले जाता है। भूमि की ऊपरी सतह ही सबसे उपजाऊ होती है। यदि इसकी सुरक्षा का प्रबंध न किया जाय, तो ऊपर की सभी बनी हुई मिट्टी कुछ ही वर्षों में बह जाती है। बनी हुई मिट्टी की तह, जितनी ही मोटी होती है, पैदावार उतनी ही अच्छी होती है। यदि तल-काट द्वारा बनी हुई मिट्टी की तह पतली हो जाती है, तो पैदावार कम हो जाती है। बनी हुई मिट्टी की तह की मोटाई का पैदावार पर प्रभाव चित्र संख्या ८ में दिखलाया गया है।

तेज हवा से भूमि-कटाव

जिस प्रकार पानी के बहाव से मिट्टी कटकर बह जाती है, उसी प्रकार भूमि के सूखने पर, यदि वह ऐसी दशा में हो कि उसके कण हवा के साथ उड़

सकें तो, भूमि का बहुत बड़ा अंश हवा के साथ उड़ जाता है। जिस प्रकार पानी भूमि के सबसे उपयोगी भाग को बहा ले जाता है, उसी प्रकार हवा भी भूमि के उसी भाग को उड़ा ले जाती है, जिससे भूमि उपजाऊ बनती है। वास्तव में पानी और हवा दोनों ही भूमि के हलके भाग को बहा ले जाने में सफल होते हैं और भूमि का हलका भाग ही उसे उपजाऊ बनाता है। इस तरह भूमि-कटाव से, चाहे वह पानी द्वारा हो या हवा द्वारा, दोनों ही दशाओं में भूमि के सबसे मूल्यवान् भाग का ही नाश होता है।

पृष्ठ संख्या ४१ पर तालिका में दिखलाया गया है कि खेत को साल भर

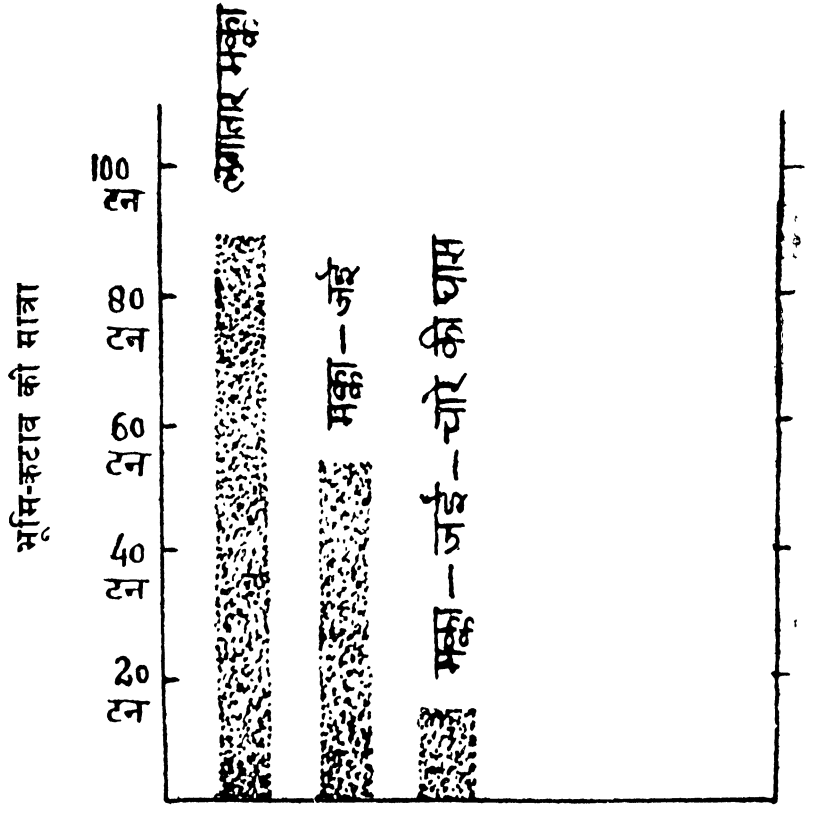

चित्र ९.—**विभिन्न सस्यचक्रों का भूमि के कटाव पर प्रभाव।**

खाली छोड़ने से भूमि-कटाव के कारण ११८.१३ पौंड नाइट्रोजन भूमि से निकल गया। हम यह जानते हैं कि बहुत कम किसान ऐसे होंगे, जो इतनी मात्रा में

प्रति एकड़ नाइट्रोजन प्रति वर्ष अपने खेत में डालते हों । हम यह भी जानते हैं कि एक खेत में एक ही साल में धान और गेहूँ दोनों पैदा करने के लिए भी ११८ पौंड नाइट्रोजन से अधिक की आवश्यकता नहीं पड़ती । इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि भूमि की उपजाऊ शक्ति गहन खेती करने से उतनी कम नहीं होती, जितनी भूमि-कटाव से। यदि किसान भूमि-कटाव से बचने का उपाय कर ले तो गहन खेती करने पर भी उनके खेतों की उपजाऊ शक्ति कम नहीं होगी।

भूमि-कटाव से बचने का एक मात्र उपाय यही है कि वर्षा ऋतु में घनी फसलें बोकर या लाइनवाली फसलों के बीच मे पयाल इत्यादि बिछाकर भूमि को अधिक से अधिक ढककर रखा जाय । वर्षा ऋतु में भूमि को खाली छोड़ना बहुत ही हानिकर है । जिस सस्यचक्र में भूमि को जितने ही अधिक समय तक ढके रखा जा सकता है, वह भूमि सुरक्षा की दृष्टि से उतनी ही लाभप्रद होती है। सस्यचक्र का भूमि के कटाव पर क्या प्रभाव पड़ता है यह चित्र संख्या ९ में दिखलाया गया है । यह संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में किये गये एक प्रयोग पर आधारित है ।

जिस खेत के टुकड़े में बराबर मक्का की फसल बोयी गयी, उसमें भूमि-कटाव सबसे अधिक हुआ, क्योंकि मक्का की पंक्तियाँ दूर-दूर होने के कारण भूमि को पूरी तरह से ढक नही सकीं और वर्षा ऋतु के शेष भाग में खेत खाली पड़ा रहा। जिस खेत के टुकड़े में मक्का-जई उपजायी गयी, उसमें मध्यम दर्जे का कटाव हुआ, और जिस खेत में मक्का, जई और चारे की घासें उपजायी गयी, उसमे सबसे कम कटाव हुआ, क्योंकि इस सस्यचक्र में भूमि सबसे अधिक समय तक ढकी रही ।

अध्याय ३

सिंचाई

पौधे अपनी खूराक जड़ों द्वारा लेते है। परन्तु जड़ें भूमि के केवल उसी भाग को प्रयोग में ला सकती है, जो पानी में घुल सके, क्योंकि उनमें केवल घोल को ही सोखने की शक्ति होती है। भूमि में पौधों के सभी पोषक तत्त्व होते हुए भी, यदि वर्षा न हो, या अन्य किसी प्रकार से पानी न दिया जा सके, तो पोषक तत्त्वों का घोल तैयार नहीं होगा और पौधों को खूराक न मिल सकेगी। अतएव यह सम्भव नहीं कि बिना पानी के खेती की जा सके।

सौभाग्य से हमारे देश में कोई ऐसा क्षेत्र नहीं, जहाँ कुछ न कुछ वर्षा न होती हो। इसलिए बिना सिंचाई के साधन के भी, मामूली खेती सब जगह होती चली आयी है। वास्तव में हमारे देश में बिलकुल सूखी धरती कहीं भी नहीं है। परन्तु वर्षा साल के केवल तीन महीनों तक ही सीमित होने के कारण, शेष नौ महीनों में भूमि में पानी की कमी पड़ जाती है और उसे सिंचाई द्वारा पूरा करने की आवश्यकता पड़ती है। यदि वर्षा के अतिरिक्त अन्य महीनों में भी समय-समय पर पानी पहुँचाया जा सके, तो भूमि की फसल पैदा करने की क्षमता बहुत बढ़ जाती है। खेती की पैदावार बढ़ाने के लिए सिंचाई का साधन सबसे बड़ा अस्त्र समझा गया है। इसी लिए हमारी पंचवर्षीय योजनाओं में सिंचाई के साधन बढ़ाने पर बहुत जोर दिया गया है। उत्तर प्रदेश में सिंचित भूमि का क्षेत्रफल बहुत तेजी से बढ़ रहा है, परन्तु हमारे किसान भाई अभी सिंचाई के साधनों का पूरा प्रयोग न करके इनसे पूरा लाभ नहीं उठा रहे हैं। इस अध्याय में केवल यही बतलाने का प्रयत्न किया जायगा कि सिंचाई के साधनों का अधिकाधिक प्रयोग करके किसान अपनी पैदावार और आमदनी किस प्रकार बढ़ा सकते है।

गन्ने की फसल किसानों के लिए नकद आमदनी की उपज है। परन्तु सिंचाई के साधनों के अभाव में किसान इसकी खेती से पूरा-पूरा लाभ नहीं उठा

पाते। सिंचाई का साधन प्राप्त होते ही किसानों को गन्ने की खेती का क्षेत्रफल बढ़ा देना चाहिए, और वे ऐसा करते भी हैं। यहाँ केवल यह बतलाने की आवश्यकता है कि गन्ने को गर्मियों में केवल दो-तीन पानी न देकर, जैसा कि किसान अब तक करते आये हैं, यदि सिंचाई की संख्या बढ़ा दी जाय तो पैदावार बहुत बढ़ जायगी और सिंचाई के खर्चे का कई गुना लाभ होगा। वर्षा ऋतु के बाद भी अक्तूबर, नवम्बर में एक-दो सिंचाई और कर देने से पैदावार कम से कम १०% बढ़ जाती है।

सिंचाई के साधन प्राप्त होने पर धान की खेती में बड़ी उन्नति की जा सकती है। बहुधा यह समझा जाता है कि धान वर्षा ऋतु की फसल है, इसलिए इसको सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती। परन्तु ऐसा सोचना ठीक नहीं है। धान एक ऐसी फसल है, जिसकी खेती में यदि सभी क्रियाएँ ठीक समय से न की जायँ, तो पैदावार बहुत कम हो जाती है। धान के बोने और रोपने के समय का पैदावार पर बड़ा असर पड़ता है। पिछड़कर बोने से पैदावार आधे से भी कम हो जाती है।

हमारे यहाँ वर्षा का कुछ भी निश्चय नहीं रहता, वह कभी एक मास बाद या कभी एक मास पहले शुरू हो जाती या बन्द हो जाती है। बीच में भी कभी-कभी जब वर्षा की सबसे अधिक आवश्यकता होती है, तब सूखा पड़ जाता है। यदि सिंचाई का साधन प्राप्त हो, तो सभी क्रियाएँ समय से की जा सकती हैं और बीच में सूखा पड़ जाने पर सिंचाई द्वारा फसल को बचाया जा सकता है। पूर्वी उत्तर प्रदेश में, जहाँ सबसे अधिक धान की खेती होती है, वहाँ यदि सभी खेतों के लिए सिंचाई के साधन मिल सकें, तो निश्चय ही वहाँ की अन्न-समस्या दूर हो सकती है। जापान तथा अन्य देशों में, जहाँ धान की पैदावार अधिक होती है, धान की खेती के लिए सिंचाई के अच्छे साधन पूर्ण रूप से प्राप्त हैं।

कुवारी धान अधिकतर छिंटकवाँ बोकर पैदा किया जाता है। परन्तु छिंटकवाँ न बोकर इसकी भी रोपाई की जाय, तो पैदावार ५० से ७५ तक बढ़ जाती है। रोपाई करने से धान की निकाई इत्यादि में बड़ी आसानी पड़ती है तथा बीज भी कम लगता है। पैदावार ड्योढ़े से भी अधिक होती है।

इन सभी बातों को देखते हुए, जिन क्षेत्रों में सिंचाई की सुविधा हो, वहाँ के किसानों को छिंटकवाँ बोने का ढंग छोड़कर रोपाई का ढंग अवश्य अपनाना चाहिए।

धान के जीवन काल में बालें निकलने का समय बहुत ही नाजुक होता है, यदि उस समय थोड़ी-सी नमी की कमी पड़ जाय, तो पैदावार बहुत घट जाती है। कुवारी धान मघा नक्षत्र में और अगहनी धान चित्रा नक्षत्र में फूटता है। उस समय यदि खेत में नमी की थोड़ी भी कमी हो, तो किसान को तुरन्त खेत में पानी चला देना चाहिए। बहुधा किसान ऐसे अवसरों पर वर्षा की प्रतीक्षा करते रहते हैं, और खेत जब बिलकुल ही सूख जाते हैं, तब सिंचाई करते हैं। परन्तु तब तक काफी नुकसान हो चुका होता है और सिंचाई करने पर भी कोई विशेष लाभ नहीं होता।

समय से बियाड़ बोकर, छिंटकवाँ के बजाय बैठौनी का ढंग अपनाकर, फूटने के समय आवश्यकतानुसार सिंचाई करके तथा इन सबके साथ पर्याप्त मात्रा में खादों का प्रयोग करके किसान धान की पैदावार दूनी और तिगुनी बढ़ा सकते हैं।

बहुधा रबी की फसलें कट जाने के बाद हमारे खेतों में गन्ने के अलावा कोई भी हरी चीज दिखलाई नहीं देती। परन्तु यदि सस्ते दामों पर सिंचाई का पानी मिल सके, तो चेना साँवा, मूँग नं० १ तथा तिपखिया मक्का इत्यादि की फसलें ली जा सकती हैं। ऐसी फसलों की खेती बहुत ही कम होती है। परन्तु ज्यों-ज्यों सिंचाई के साधन बढ़ते जा रहे हैं, त्यों-त्यों इनकी खेती बढ़नी चाहिए।

हमारे अधिकांश खेतों में सालभर में केवल एक ही फसल होती है। सिंचाई के साधन न होने के कारण दूसरी फसल नहीं ली जा सकती। परन्तु यदि सिंचाई का साधन हो और खेती अच्छी तरह से की जाय, तो हमारा जलवायु ऐसा है कि दो क्या, तीन फसलें सालभर में एक ही खेत से ली जा सकती हैं। अगहनी धान का बहुत बड़ा क्षेत्रफल हमारे प्रदेश में है। यह लगभग कुल-का-कुल साल में आठ महीने बेकार पड़ा रहता है। सिंचाई की सहायता से इसे 'दो-फसला' बनाया जा सकता है। ऐसे खेतों में जल्द तैयार

होनेवाली जौ की किस्में, जई, मसूर, धनियाँ, ढुरवाँ मटर, टाइप ८७ चना, बरसीम, पहाड़ी आलू तथा अन्य तरकारियाँ, जैसे कुम्हड़ा, करेला और तरबूज इत्यादि सिंचाई की सहायता से पैदा किये जा सकते हैं। हमारे देश के किसान अगहनी धान के खेतों को खाली छोड़ने के इतने आदी हैं कि बहुतों को यह सुनकर विश्वास नहीं होता कि ऐसे खेतों से दूसरी फसलें भी ली जा सकती हैं। परन्तु चीन, जापान तथा अन्य देशों के किसान सिचाई के बल पर धान के बाद दूसरी फसल बराबर उगाते हैं और इस तरह अपनी भूमि से अधिक पैदावार लेने में सफल रहते हैं।

अगहनी धान के खेतों में यदि अन्य कोई फसल न भी बोयी जा सके, तो बरसीम की फसल बोने में कोई कठिनाई नहीं है। बरसीम किसान के लिए बड़े ही महत्त्व की फसल है। इसके लिए कहा गया है कि यह भूमि को, जानवरों को और किसान को, सभी को मोटा बनाती है। यह सच भी है। बरसीम में खेतों की उर्वरा शक्ति बढ़ाने की जितनी क्षमता है, उतनी शायद किसी दूसरी फसल में नहीं। जिस खेत में बरसीम सफलतापूर्वक उगायी गयी हो, उसमें धान के लिए कोई खाद देने की आवश्यकता नहीं रह जाती। चारा इसका इतना पौष्टिक होता है कि जानवरों के दाने की कमी इस चारे से पूरी की जा सकती है। छः सेर बरसीम का हरा चारा एक सेर चने के दाने के बराबर समझा जाता है। पूर्वी उत्तर प्रदेश में धान की खेती सबसे अधिक होती है। उसी क्षेत्र में अच्छे जानवरों की भी सबसे अधिक कमी है। यदि अगहनी धान के खेतों में बरसीम उगायी जा सके, तो न केवल चारे की कमी दूर की जा सकती है, बल्कि दूध का उत्पादन भी बढ़ाया जा सकता है, जिसकी उस क्षेत्र में बहुत बड़ी आवश्यकता है।

यदि किसान के पास दूध देनेवाले जानवर न हों, तो वह बरसीम का चारा काटकर उसकी बहुत ही उत्तम कम्पोस्ट खाद तैयार कर सकता है। एक एकड़ अच्छी बरसीम की पैदावार ५–६ कटाई में ६०० मन तक होती है। यदि किसान इसकी खाद बना डालें, तो वह दो एकड़ के लिए बहुत काफी होगी। जिस खेत में बरसीम बोयी जाती है, वह केवल जड़ों और गिरी हुई पत्तियों द्वारा ही काफी उर्वर हो जाता है। इस प्रकार केवल खाद के लिए एक एकड़

बरसीम बोकर किसान तीन एकड़ के लिए खाद का पूरा प्रबंध कर सकते हैं और खाद के विषय में स्वावलम्बी हो सकते हैं। सिंचाई द्वारा बरसीम उगाकर किसान अपने अगहनी धान के खेतों को छोटे पैमाने पर "सिन्द्री का कारखाना" बना सकते हैं। उनसे वे प्रति एकड़ इतना नाइट्रोजन प्राप्त कर सकते हैं जो लगभग ४–५ बोरी अमोनियम सल्फेट के बराबर होगा।

आलू तथा अन्य तरकारियों और फल की खेती भी सिंचाई की ही सहायता से सम्भव है। जितनी आमदनी फल और तरकारी की खेती से हो सकती है, उतनी अन्न की फसलों से नहीं। इनकी खेती करके किसान अपनी आमदनी बढ़ा सकता है। इतना ही नहीं कि फलों और तरकारी की खेती से उसकी माली हालत सुधरेगी, बल्कि वह जब इन्हें पैदा करेगा तो खायेगा भी, जिससे उसके स्वास्थ्य पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ेगा। एक एकड़ में उगे फल और तरकारी से एक एकड़ में उगे अन्न की तुलना में कई गुना पोषक तत्त्व प्राप्त किया जा सकता है। फल और तरकारी की खेती बढ़ाकर किसान अपनी माली हालत सुधार सकता है और अन्न पर जो भार है उसे भी कम कर सकता है। अतः जिन क्षेत्रों में सिंचाई की सुविधा प्राप्त हो, वहाँ अधिक से अधिक फल और तरकारी की खेती होनी चाहिए।

जहाँ एक ओर सिंचाई से बहुत कुछ लाभ उठाया जा सकता है, वहाँ दूसरी ओर यह भी स्मरण रखना चाहिए कि आवश्यकता से अधिक सिंचाई करने पर नुकसान हो सकता है। नहरों और सरकारी ट्यूबवेलों के निकट बहुधा यह देखा गया है कि किसान अपने खेतों को चारों तरफ मेड़ें बाँधकर लबालब भर देते हैं। ऐसा करना न केवल पानी का दुरुपयोग है, बल्कि इससे फसलों को भी नुकसान पहुँचता है। पौधों की जड़ों को आक्सिजन की आवश्यकता होती है, अतः यदि वहाँ तक हवा का प्रवेश न हो सके तो खाद, पानी, सब कुछ होते हुए भी पौधे पीले पड़कर मरने लगेंगे। खेत में अधिक पानी भर देने पर भूमि के अंदर हवा का प्रवेश कई दिनों तक के लिए रुक जाता है, जिसका फसल पर बुरा प्रभाव पड़ता है। अतः खेत में पानी देने का ऐसा ढंग अपनाना चाहिए जिससे आवश्यकता से अधिक पानी न एकत्रित होने पाये। इसके तीन ढंग है —

(१) खेत में क्यारियाँ बनायी जायँ, (२) खेत में नालियाँ बनायी जायँ अथवा (३) हाथे से पानी का छिड़काव किया जाय।

नालियाँ बनाकर पानी देने का ढंग सबसे उत्तम है। परन्तु यह उन फसलों के लिए प्रयोग में नहीं लाया जा सकता, जिनके पौधे नज़दीक-नज़दीक उगते

चित्र १०—हाथे द्वारा सिंचाई का ढंग।

हैं, जैसे गेहूँ, धान, बरसीम इत्यादि। ऐसी फसलों के खेत में क्यारियाँ बनाकर सिचाई करनी चाहिए। परन्तु जिन फसलों के पौधे इतने दूर-दूर होते हैं कि उनके बीच में से नालियाँ बनायी जा सकती हैं, जैसे—गन्ना, आलू इत्यादि, उनमें नालियाँ बनाकर ही पानी देना सबसे लाभदायक सिद्ध हुआ है। इस ढंग के

प्रयोग से पौधों की जड़ों के पास अधिक पानी इकट्ठा नहीं हो पाता और जड़ों के निकट की भूमि पोली ही बनी रहती है, जिससे वहाँ तक हवा के पहुँचने में कोई रुकावट नहीं होती।

पानी का छिड़काव केवल उस समय करना चाहिए, जब बहुत ही हलकी सिंचाई करने की आवश्यकता हो। मटियार खेतों में, जहाँ स्वभावतः नमी बनी रहती है, वहाँ यदि क्यारी बनाकर सिंचाई कर दी जाय, तो फसल पीली पड़ जाने और उसका बढ़ाव रुक जाने का डर रहता है। चना और मटर में भी अधिक पानी लग जाने पर सूख जाने का डर रहता है। अतः इन फसलों में हाथे की सिचाई का ढंग अपनाना चाहिए। इस ढंग का प्रयोग प्रायः पूर्वी उत्तर प्रदेश में होता है (देखिए, चित्र १०)।

सिंचाई के सीमित साधनों से अधिक क्षेत्रफलवाली भूमि पर फसलें पैदा करने के लिए कुछ उपाय किये जा सकते हैं। सर्वप्रथम तो यह आवश्यक है कि वर्षा ऋतु में जितना भी पानी बरसे, उसका अधिक से अधिक भाग खेत में सुखाने का प्रयत्न किया जाय। इसके लिए वर्षा ऋतु में खेत को हरी खाद या अन्य किसी घनी फसल से ढके रहना लाभप्रद सिद्ध हुआ है। दूसरे हर

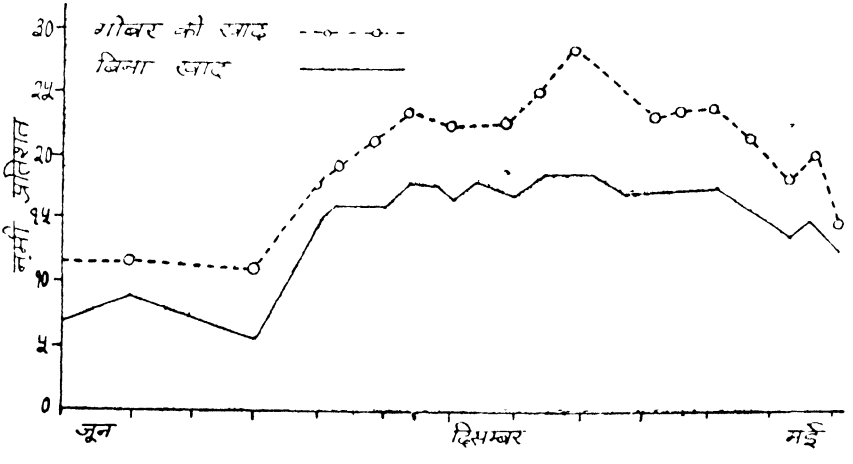

चित्र ११—भूमि की नमी पर गोबर की खाद का प्रभाव।

सिंचाई के बाद खेत की गुड़ाई, भौराई कर देनी चाहिए। ऐसा करने से नीचे की भूमि का ऊपर से सिलसिला टूट जाता है, और नीचे की नमी ऊपर नहीं

आने पाती । भूमि में नमी नीचे से ऊपर उसी तरह चढ़ती हे, जिस तरह लैम्प की बत्ती में तेल चढ़ता है । भूमि की गुड़ाई, भौराई कर देने से नमी का ऊपर चढ़ना रुक जाता है । तीसरा ढंग भूमि मे वानस्पतिक खाद का प्रचुर मात्रा में बनाये रखना है । इससे नमी को रोकने मे बड़ी सहायता मिलती है । सर जान रसेल ने एक प्रयोग में एक ऐसे खेत की, जिसमे गोबर की खाद दी गयी थी, नमी की तुलना बिना खाद दिये खेत की नमी से की थी । इसका जो नतीजा निकला वह चित्र ११ में दिखाया गया है । इससे यह स्पष्ट होगा कि जिस खेत में गोबर की खाद दी गयी थी, उसमें नमी हमेशा ज्यादा बनी रही ।

नमी रोकने का चौथा और सबसे उपयोगी ढंग, खेत में पौधों को बचा-बचाकर उनके बीच-बीच पयाल, गन्ने की पत्ती, सूखी घासें, लकड़ी का बुरादा या धान की भूसी इत्यादि बिछा देने का है । इसे अंग्रेजी में 'मल्चिग' कहते हैं । मल्चिग करने से सिंचाई के पानी की आवश्यकता आधे से भी कम हो जाती है । भूमि ढकी रहने के कारण सूर्य की गर्मी नीचे तक नही पहुँच सकती, इसलिए नमी भाप बनकर कम उड़ती है । मल्चिग से अन्य कई लाभ हैं । खेत में खर-पतवार तथा घासें कम उगती हैं, इसलिए निकाई, गुड़ाई नहीं करनी पड़ती । पौधों की जड़ें गर्मियों में अधिक गर्मी से और जाड़ों में अधिक ठंड से बची रहती हैं । इसका भी पैदावार पर अच्छा प्रभाव पड़ता है ।

जिन किसानों के पास सिंचाई के साधन कम हों, परन्तु मल्चिग के लिए सामग्री (पयाल, गन्ने की पत्ती, घास-फूस इत्यादि) काफी मात्रा में हो, वे इस ढंग को प्रयोग में लाकर लाभ उठा सकते है । जिन क्षेत्रों में दीमक तथा इसी प्रकार के अन्य कीड़े-मकोड़ों के लगने का डर रहता है, उन क्षेत्रों मे मल्चिग नही करनी चाहिए ।

अध्याय ४

उन्नत बीज

यदि यह कहा जाय कि एक अच्छे प्रकार का बीज संसार की सबसे मूल्यवान् वस्तु है, तो अतिशयोक्ति न होगी। इसका कारण यह है कि जब अन्य सभी वस्तुएँ घटने के बजाय बढ़ती नहीं, बीज निरन्तर बढ़ता रहता है और असंख्य मनुष्यों का कई पीढ़ियों तक उससे पोषण होता है। अच्छे किसान अच्छी किस्म के बीजों का महत्त्व समझते है और उनको सुरक्षित रखने तथा नये-नये उन्नत बीज प्राप्त करने का प्रयत्न भी करते रहते है। परन्तु अधिकांश किसान उन्नत बीजों का महत्त्व नही समझते। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि वे अपनी खेती का हिसाब नहीं रखते। बहुत-से किसान तो ऐसे है जो अपनी पैदावार को तौलते तक नही। वे केवल आँख से देखकर स्मरण-शक्ति से यह अनुमान लगाते है कि उनकी फसल अच्छी हुई या नही। जिन फसलों में साधारण किस्मों और उन्नतिशील किस्मों के बीच दर्शनीय अंतर होता है, उनमें से उन्नतिशील किस्मों को छाँटकर प्रयोग में लाने में किसानों को देर नहीं लगती।

उदाहरण के लिए, जब नयी किस्म के गन्ने निकले, तब वे देशी गन्नों की किस्मों की तुलना में इतने अधिक लम्बे बढ़ते थे और पैदावार भी इतनी अधिक देते थे कि किसानों को नयी किस्मों से प्रभावित होते देर न लगी। उन्होंने पुरानी किस्मों की खेती को समाप्त कर नयी उन्नतिशील किस्मों को अपना लिया। परन्तु धान, गेहूँ तथा अन्य फसलों के बीज के विषय में ऐसा परिवर्तन नहीं हुआ। बहुत थोड़े-से किसान ऐसे है जो शुद्ध उन्नतिशील बीज बोते है।

अधिकांश या तो देशी बीज बोते हैं या देशी और उन्नतिशील का मिश्रण। इसका कारण यह है कि साधारण स्थिति में उन्नतिशील बीज बोने से देशी बीज की तुलना में दोनों की पैदावार में १५ से लेकर २५% से

अधिक का अंतर नहीं होता, और केवल आँख से देखकर १५-२५%के अंतर का अनुमान लगाना कठिन है । किसान प्रायः यह नहीं समझते कि पैदावार में केवल २५% की वृद्धि होने से उनका मुनाफा ड्योढ़ा या कभी-कभी दूना तक हो जाता है, क्योंकि खेती का खर्चा दोनों दशाओं में लगभग बराबर रहता है, चाहे उन्नतिशील बीज बोया जाय और चाहे देशी बीज ।

उदाहरणार्थ, गेहूँ की खेती को लीजिए। देशी गेहूँ यदि १६ मन प्रति एकड़ पैदा होता है और उन्नतिशील २० मन प्रति एकड़, इनका मूल्य २०) प्रति मन लगाया जाय तो देशी गेहूँ से आय ३२०) होगी और उन्नतिशील गेहूँ से ४००)। यदि उत्पादन का व्यय १५०) माना जाय, जो दोनों दशाओं में बराबर होगा, तो किसान को मिलनेवाला शुद्ध लाभ देशी गेहूँ की खेती से १७०) प्रति एकड़ होगा, जब कि उन्नतिशील गेहूँ से २५०) होगा, जो १७०) का लगभग ड्योढ़ा है। इस प्रकार केवल बीज बदल देने से किसान की आमदनी ड्योढ़ी हो सकती है। वास्तव में यह आमदनी ड्योढ़े से भी अधिक होती है, क्योंकि प्रायः देशी गेहूँ की तुलना में उन्नतिशील गेहूँ १–२ रुपया प्रति मन अधिक बिकता है।

गहन खेती के लिए उपयुक्त

साधारण स्थिति में तो उन्नतिशील और देशी किस्मों की पैदावारों में १५ से लेकर २५% तक से अधिक अन्तर नहीं पड़ता। परन्तु यदि खेत में खूब अच्छी तरह खाद-पाँस डालकर अच्छे ढंग से खेती की जाय, तो देशी और उन्नतिशील बीजों की पैदावार में प्रायः अधिक अंतर पड़ जाता है। इसका कारण यह है कि देशी बीज के पौधों में यह क्षमता ही नहीं होती कि वे खाद-पाँस का पूरा लाभ उठाकर अधिक उपज दें। उदाहरण के लिए, यदि देशी गेहूँ में ज्यादा खाद-पाँस दे दी जाय, तो नतीजा यही होगा कि वह बढ़कर पकने के पहले ही गिर जायगा और नष्ट हो जायगा । परन्तु उन्नतिशील गेहूँ के पौधे मजबूत होते हैं और अधिक खाद-पाँस पाने पर भी आसानी से नहीं गिरते, बल्कि अधिक खाद का लाभ अधिक उपज के रूप में प्राप्त होता है ।

रोगनिरोधी

उन्नतिशील बीजों की विशेषता इतनी ही नहीं है कि उनकी पैदावार अधिक होती है, बल्कि उनमें बीमारियों का मुकाबला करने की भी अधिक क्षमता होती है । यह सम्भव है कि जिन वर्षो में बीमारी न लगे, उन वर्षो में देशी और उन्नतिशील बीजों की पैदावार में अधिक अंतर न हो। परन्तु जिन वर्षो में बीमारी लग जाती है, उनमें वे किस्में, जो रोगनिरोधी होती हैं, बच जाती हैं, जब कि साधारण किस्में प्रायः नष्ट हो जाती है। उदाहरण के लिए ७१० नम्बर गेहूँ को लीजिए। इसमें यह गुण है कि यह कुछ हद तक गेरुई की बीमारी का मुकाबला कर सकता है । जिन वर्षो में गेरुई की बीमारी नहीं लगेगी, उनमें ७१० की पैदावार अन्य किस्मों की तुलना में बहुत अधिक न होगी, परन्तु जिन वर्षो में बीमारी लग जायगी, उनमें इसकी पैदावार अधिक होगी, क्योंकि अन्य किस्में रोगग्रस्त हो जायँगी । चूँकि किसान के पास ऐसा कोई उपाय नहीं है कि वह पहले से जान सके कि आनेवाले मौसम में बीमारी लगेगी या नहीं, इसलिए उसकी बचत इसीमें है कि वह रोग-निरोधी उन्नतिशील किस्मों का प्रयोग करे ।

उत्तर प्रदेश की मुख्य-मुख्य फसलों की उन्नतिशील किस्मों की सूची परिशिष्ट के रूप में पुस्तक के अन्त में दी गयी है। उसको देखकर किसान अपने क्षेत्र के लिए उपयोगी किस्में छाँट सकते है। यदि किसी क्षेत्र के लिए कई उन्नतिशील किस्में उपयुक्त बतलायी गयी हों, तो किसान को चाहिए कि वह उन सबको अपनी भूमि में थोड़ा-थोड़ा बोकर देखे कि उसकी भूमि के लिए सबसे उपयुक्त किस्म कौन-सी है ।

उन्नतिशील बीज

यदि किसान अच्छी तरह समझ जाय कि उन्नतिशील बीज किसे कहते हैं और वह कैसे तैयार किया जाता है, तो शायद वह उसकी ज्यादा कद्र करे । पुराने जमाने में (और कुछ हद तक अब भी) उन्नतिशील बीज प्राप्त करने के लिए किसी एक फसल की जितनी भी जातियाँ मिल सकती थीं, उनके बीज एकत्रित करके एक ही स्थान पर मुकाबले के लिए बोये जाते थे । कुछ

वर्षों तक सभी जातियों के मुकाबले के बाद, जो जाति पैदावार तथा अन्य गुणों में सबसे अच्छी पायी जाती थी, उसी को उन्नतिशील जाति का नाम देकर, उसका प्रचार किया जाता था । परन्तु इस ढंग से यह सम्भव नहीं था कि किसी बिलकुल नयी जाति का आविष्कार किया जा सके । जो जातियाँ पहले से ही मौजूद थीं, उन्हीं में से सबसे अच्छी जाति छाँटी जा सकती थी ।

इस प्रकार उन्नति की परिधि सीमित थी । किन्तु विज्ञान की उन्नति के द्वारा यह सम्भव हो गया है कि दो जातियों के जोड़ से तीसरी और बिलकुल नयी जाति पैदा की जा सके । जिस प्रकार जानवरों में नर और मादा के संयोग से बच्चे पैदा होते है, उसी प्रकार पौधों में भी नर और मादा के संयोग से बीज तैयार होता है । अंतर केवल इतना ही है कि अधिकांश जानवरों में नर और मादा अलग-अलग होते है, जब कि पौधों में कुछ थोड़ी किस्मों को छोड़कर, शेष मे नर और मादा एक ही पौधे मे पाये जाते है। पौधों के फूलों में नर और मादा दोनों भाग होते हैं और उनके मिलने से बीज पैदा होता है ।

यदि किसी किस्म के फूल के पराग-केसर को लेकर दूसरी किस्म के गर्भ-केसर से मिलाया जाय, तो तीसरी नयी किस्म का जन्म होता है । उनमें थोड़े-थोड़े गुण दोनों किस्मों के होते हैं, परन्तु वह तीसरी किस्म पहली किस्मों में से किसी एक के समान नही होती । जिस प्रकार घोड़े और गदहे के जोड़ से खच्चर पैदा किया गया, जिसमें गदहे की बोझ ढोने की शक्ति और घोड़े की तेज चलने की शक्ति दोनों मौजूद है, उसी प्रकार पौधों मे भी यह सम्भव है कि दो किस्मों के जोड़ से ऐसी किस्म पैदा की जा सके, जिसमें दोनों के गुण मौजूद हों। उदाहरण के लिए टाइप १३६ धान को लीजिए । यह टाइप १ और टाइप १०० के जोड़ से पैदा किया गया है ।

टाइप १ बहुत ही उम्दा और बारीक किस्म का धान है, पर इसकी पैदावार कम होती है। टाइप १०० बहुत मोटा और खाने में खराब है, परन्तु पैदावार इसकी अधिक होती है । कृषि-वैज्ञानिकों ने यह सोचा कि यदि टाइप १ की बारीकी और टाइप १०० का अधिक पैदा होने का गुण दोनों मिलाये जा सके, तो एक अत्यंत उपयोगी किस्म तैयार होगी । इसी उद्देश्य से उन्होंने

टाइप १ का और टाइप १०० का जोड़ मिलाया, जिसके फलस्वरूप टाइप १३६ का जन्म हुआ, जो बारीक होते हुए भी पैदावार मे बहुत अच्छा है ।

फसलों की बीजोन्नति का उपर्युक्त ढंग काफी लाभप्रद रहा है । ऐसी-ऐसी किस्मों का आविष्कार हुआ, जिनमें अधिक पैदावार देने की क्षमता, अधिक स्वादुता, पौष्टिकता तथा बीमारियों से बचने का गुण पाया जाता है। परन्तु दो किस्मों के जोड़ से एक नयी किस्म पैदा करने का ढंग सरल नहीं है। इसमें समय बहुत लगता है, क्योंकि नयी किस्म के बीज जो पैदा होते हैं, उनमें सब अच्छे नही होते । अधिकांश किसी काम के नहीं होते । कई वर्षो की छँटाई के बाद किसी अच्छी नयी किस्म का बीज मिलना है ।

सौभाग्य से फसलों की बीजोन्नति का एक नया ढंग निकल आया है। यह देखा गया है कि बीजों पर एक्स किरण पड़ने पर उनके गुणों में परिवर्तन हो जाता है और नयी जातियाँ पैदा हो जाती हैं । प्रकृति में इस प्रकार के परिवर्तन कास्मिक किरणों के प्रभाव से होते रहते है। परन्तु विज्ञानशाला में एक्स किरणों की सहायता से अब यह कार्य शीघ्रतापूर्वक किया जा सकता है। इस नवीन ढंग से उन्नतिशील किस्मों का आविष्कार तेजी से किया जा सकता है, क्योंकि एक ही वर्ष में हजारों किस्म की जातियाँ पैदा की जा सकती है और उनमें से एक अच्छी जाति को ढूँढ निकालना अपेक्षाकृत सरल हो गया है ।

बीज शुद्ध रखने का ढंग

प्रायः यह देखा गया है कि किसान एक साल अच्छा बीज कहीं से ले आते हैं, परन्तु उसको शुद्ध बनाये रखने की ओर पूरा ध्यान नहीं देते । परिणाम यह होता है कि दो-तीन वर्षों में बीज मिश्रित हो जाता है । मिश्रित बीज बोने से कभी भी उतना लाभ नहीं हो सकता, जितना शुद्ध बीज बोने से । एक तो पैदावार कम हो जाती है और दूसरे मिश्रित होने के कारण बाजार में मूल्य भी क मिलता है । अतः किसान को बीज शुद्ध बनाये रखने की ओर पूरा ध्यान देना चाहिए । बीज शुद्ध रखना उतना कठिन नहीं है,

जितना मालूम होता है । यह तो ठीक है कि पूरे खेत से दूसरे किस्म के पौधों को छाँटकर निकालना कठिन है । परन्तु यदि किसान अपने पूरे क्षेत्र-फल का केवल $\frac{१}{२५}$ भाग पौधों की छँटाई द्वारा बिलकुल शुद्ध कर लिया करें और उसकी पैदावार अलग बीज के लिए सुरक्षित रखें, तो उनका बीज बराबर शुद्ध बना रहेगा ।

उदाहरण के लिए, यदि किसी किसान को ५ एकड़ धान बोना है, तो उसे $\frac{१}{२५}$ एकड़ खेत शुद्ध बीज पैदा करने के लिए अलग कर लेना चाहिए। इस $\frac{१}{२५}$ एकड़ में पौधों की छँटाई करके बीज को शुद्ध कर लेना कोई कठिन कार्य नहीं है । इस $\frac{१}{२५}$ एकड़ में इतना बीज पैदा हो जायगा कि अगले वर्ष पूरे ५ एकड़ के लिए शुद्ध बीज की कमी नहीं पड़ेगी ।

किसान को अपने लिए बीज स्वयं पैदा करके अपने पास सुरक्षित रखना चाहिए । बीज के लिए बीजगोदामों पर निर्भर रहना बुद्धिमानी नहीं । इतना ही नहीं कि बीजगोदामों को सवाई सूद देना पड़ता है, बल्कि मौके से कभी बीज मिलता है और कभी नहीं भी मिलता । इसके अलावा यह भी सम्भावना रहती है कि बीजों के साथ ऐसी बीमारियाँ तथा खर-पतवार बीज के साथ आ जायँ, जो किसान के खेत में पहले से मौजूद नहीं थे । फसलों की बहुत-सी बीमारियाँ बीजों से फैलती हैं । यह सम्भव है कि किसी दूसरे जिले से खरीदकर लाये गये बीजों में कोई बीमारी मौजूद हो । रोगग्रस्त और स्वस्थ बीज केवल आँख से देखकर पहचानना सम्भव नहीं, इसलिए बाहर से लाये हुए बीज के साथ बीमारियों के आने की सम्भावना सदैव बनी रहती है ।

अतएव किसानों को केवल एक बार, जब कोई नया बीज आये, तब गोदाम से थोड़ी मात्रा में लेना चाहिए और प्रयत्न यह करना चाहिए कि वे उस थोड़ी मात्रा से अगले साल स्वयं अधिक बीज पैदा कर लें । डिबलिंग का ढंग एक ऐसा तरीका है, जिससे ६–७ सेर धान या गेहूँ के बीज से २५–३० मन शुद्ध बीज एक ही वर्ष में तैयार किया जा सकता है । डिबलिंग करने के लिए एक लकड़ी का यन्त्र, जिसे **डिबलर** कहते हैं, ईजाद किया गया है । इसके प्रयोग करने का ढंग आगे बतलाया गया है ।

बीज-संरक्षण

बीज सुरक्षित रखने के लिए इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बीज को सँजोकर रखते समय उसमें नमी न हो, और न बाद में ही नमी घुसने पाये । नमी के कारण बीज गरम हो जाता है और यदि उसका तापक्रम एक निश्चित स्तर से ऊपर चला आता है तो वह मर जाता है। बीज वायु से भी नमी सोख लेता है। अतः यह सम्भव है कि सुखाकर रखे हुए बीज भी, यदि उनका सम्पर्क बाहरी हवा से है तो, हवा से नमी सोख लें और गरम होकर खराब हो जायँ ।

रबी के बीजों को नमी से बचाने का एक अच्छा उपाय यह है कि उनके चारों तरफ भूसा लगाकर रखा जाता है । भूसा बाहरी हवा की नमी को सोख लेता है और उसे बीज तक पहुँचने नहीं देता । फिर भी थोड़ी-सी असावधानी होने पर बीज के नम हवा के सम्पर्क में आने पर कभी-कभी गेहूँ इत्यादि का बीज खराब हो जाता है। कभी-कभी धान का बीज भी खराब हो जाता है । धान का बीज खराब होने के दो कारण हो सकते हैं—

धान कटने के बाद दँवाई के पहले कई दिनों तक उसे पही लगाकर रख दिया जाता है। चूँकि उस समय धान और उसके डाँठ मे नमी रहती है, वह गरम हो जाता है और खलिहान में ही बीज खराब हो जाता है। इससे बचने के लिए धान काटने के बाद उसके डाँठ को या तो खेत मे ही दो-तीन दिन तक सूखने दिया जाय, या कटने के बाद शीघ्र ही दँवाई करके दाना निकाल लिया जाय और बाद में अलग से सुखा लिया जाय । धान का बीज खराब होने का कारण यह भी हो सकता है कि धान का बीज सुखाकर रखने के बाद कई दिनों तक वर्षा होती रहे और हवा में नमी बहुत बढ़ जाय । इस हवा की नमी को सोखकर धान नम हो जाता है और इसके कारण गरम होकर खराब हो जाता है। धान का बीज सुखाकर रखने के बाद यदि कई दिनों तक वर्षा होती रहे, तो वर्षा समाप्त होने पर धान को पुनः सुखा लेना चाहिए ।

परन्तु बीज रखने का सबसे उत्तम ढंग यह है कि उसे इस प्रकार से रखा जाय कि उसमें नम हवा का प्रवेश न हो सके । बोरों के अन्दर यदि अल्काथीन प्लास्टिक का अस्तर लगा दिया जाय, जैसा रासायनिक खादों के बोरों में लगा रहता है, तो उनके अन्दर नमी नहीं पहुँच सकती । परन्तु इससे भी अच्छा उपाय यह है कि बीज को लोहे के ड्रमों में रखा जाय । तेलवाले लोहे के ड्रम १५–२० रु० में मिल जाते हैं । इनमें लगभग ४–५ मन बीज रखा जा सकता है, जो न केवल नमी से सुरक्षित रहेगा, बल्कि चूहों तथा कीड़े-मकोड़ों से भी बचा रहेगा । औसत किसान के लिए ४–५ मन बीज काफी होता है, अतः यदि किसान दो-तीन ड्रम खरीद लें, तो उनका बीज रखने का प्रश्न सदा के लिए बड़ी अच्छी तरह हल हो जाय ।

कुछ किसानों में यह मिथ्या धारणा पायी जाती है कि हर तीसरे-चौथे वर्ष बीज बदलते रहना चाहिए । वे सोचते हैं कि बाहर से आया हुआ उन्नतिशील बीज ३–४ वर्षों में खराब हो जाता है । परन्तु उनका ऐसा सोचना ठीक नहीं है । बीज अपने गुणों के अनुकूल ही बना रहता है, उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता । यदि किसी वर्ष प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण दाना पतला भी पड़ जाता है, तो भी उसको बोकर अनुकूल परिस्थिति में अच्छी फसल ली जा सकती है ।

परन्तु यह बात आलू और गन्ने के बीज के विषय में नहीं कही जा सकती । इनका बीज कुछ वर्षों के बाद कमजोर पड़ जाता है और उसे बदल देने में ही लाभ है । वास्तव में आलू और गन्ने का बीज सच्चे मानों में बीज है ही नहीं । बीज फूलों से पैदा होता है, परन्तु आलू और गन्ने के फूलों से पैदा हुए बीज व्यावसायिक कृषि के प्रयोग में नहीं आते, उनकी डालें ही काटकर लगायी जाती हैं । आलू का कंद जो बोया जाता है, वह भी वास्तव में डाल का परिवर्तित रूप ही है ।

अध्याय ५

फसल-सुरक्षा

खेती में मौसम की प्रतिकूलता के अतिरिक्त, दूसरा सबसे बड़ा भय फसलों में कीड़े-मकोड़ों तथा बीमारियों के लगने का रहता है । यह अनुमान लगाना तो कठिन है कि इन व्याधियों द्वारा प्रति वर्ष फसलों को कितनी हानि पहुँचती है, परन्तु इसमें संदेह नहीं कि खेती से लाभ उठाने के लिए यह आवश्यक है कि फसलों को इनसे सुरक्षित रखा जाय। फसलों को कई प्रकार से हानि पहुँचती है।

कुछ फसलों को कीड़े-मकोड़े उनके पौधों के पत्तों, तनों, फूलों तथा फलों में लगकर हानि पहुँचाते हैं । कुछ को फंगस या फफूँदी की बीमारियां या जीवाणुओं तथा विषैले तत्त्वों की बीमारियाँ लग जाती हैं । कुछ पौधे ऐसे भी होते हैं, जो फसलों के पौधों का शोषण करके उन्हें हानि पहुँचाते हैं । कुछ ऐसी बीमारियाँ है जो भूमि में किसी पोषक तत्त्व की कमी के कारण पैदा होती है । इन सभी का वर्णन करना इस पुस्तक में सम्भव नहीं, क्योंकि फसलों की बीमारियों का विषय बहुत ही विस्तृत है । यहा तो केवल उन उपायों का संक्षेप में वर्णन किया जायगा, जिनका प्रयोग करके किसान बहुत हद तक अपनी फसलों को बीमारियों से बचा सकते है ।

(१) सन्तुलित पोषण

जिस प्रकार मनुष्यों के स्वस्थ रहने के लिए यह आवश्यक है कि उन्हे संतुलित भोजन मिले, उसी प्रकार पौधों को भी स्वस्थ रखने के लिए यह आवश्यक है कि उन्हें सभी पोषक तत्त्व पर्याप्त मात्रा में मिलते रहें । बहुधा किसान नाइट्रोजन की ही कमी पूरी करते रहते हैं, अन्य पोषक तत्त्वों का ध्यान नही रखते । यदि नाइट्रोजन जैविक खादों के रूप मे दिया जाता है, तब तो अन्य पोषक तत्त्व भी भूमि में उसीके साथ-साथ पहुंचते रहते हैं । परन्तु यदि नाइट्रोजन को रासायनिक खादों के रूप में दिया जाता है और अन्य

पोषक तत्त्व भूमि में नहीं पहुँचाये जाते, तो फसलों को बीमारियों से बचाना कठिन होता है। अतः बीमारियों से बचने के लिए या तो जैविक ख़ादें प्रचुर मात्रा में दी जायँ, या समय-समय पर खेतों की मिट्टी की रासायनिक जाँच करवाने के पश्चात् आवश्यकतानुसार रासायनिक उर्वरक खेतों में दिये जायँ।

(२) गर्मियों की जुताई

फसलों को नुकसान पहुँचानेवाले बहुत-से कीड़े-मकोड़ों के अंडे-बच्चे भूमि में सुरक्षित रहते हैं, अतः गर्मियों में जब कड़ी धूप होती है और तेज लू चलती रहती है, यदि खेत की जुताई कर दी जाय, तो अधिकांश अंडे-बच्चे मर जाते हैं। अतः जिन खेतों मे कोई फसल न हो, उन्हें गर्मियों मे अवश्य दो-एक बार जोत देना चाहिए।

(३) फसलों का हेर-फेर

बीमारियों से बचने के लिए फसलों में हेर-फेर करके उन्हें बोना चाहिए। एक खेत मे एक ही फसल बार-बार बोने से, जहाँ उसके लिए आवश्यक पोषक तत्त्वों की बराबर कमी होती रहती है, वहाँ उस फसल पर पलनेवाले कीड़े-मकोड़े भी निरन्तर बढ़ते रहते है। बीच-बीच में अन्य फसलों के आ जाने से पहली फसल की व्याधियाँ पनप नहीं पातीं, उनका सिलसिला टूट जाता है।

गन्ने के रेड राट या काना रोग की बीमारी ऐसी है कि जिस खेत में यह रोग लगा हो, उस खेत में यदि स्वस्थ गन्ने का बीज भी बोया जाय, तो उसमें भी अवश्य लग जायगा। परन्तु यदि बीमारी लगे हुए गन्नेवाले खेत में गेहूँ या अन्य फसलें बोयी जायँ, तो इन फसलों को हानि नही पहुँचेगी। गन्ने की बीमारी का सिलसिला टूट जायगा और उसका दो-तीन वर्षो में अंत हो जायगा। इसी प्रकार कपास के बाद उसी खेत में कपास की खेती करने से कपास को हानि पहुँचानेवाले कीड़े भी उसके साथ पलते रहते है और कुछ वर्षो में इतने अधिक हो जाते हैं कि फसल को पूर्णतया नष्ट कर देते हैं। इस सम्बन्ध में एक अच्छी कहावत भी है--

बाड़ी में बाड़ी करे, करे ईख में ईख।
वे घर यों ही जायँगे, सुने पराई सीख॥

अर्थात् जो किसान कपास के बाद कपास और ईख के बाद ईख एक ही खेत में बोता है, वह उसी तरह नुकसान उठायेगा जिस तरह दूसरों की सलाह माननेवाला व्यक्ति उठाता है । यद्यपि यह कहावत ईख और कपास के बारे में है, परन्तु यह अन्य फसलों पर भी लागू है । अतः फसलों की सुरक्षा की दृष्टि से इन्हें हेर-फेरकर बोना ही किसानों के लिए हितकर है ।

(४) समय से बोआई

बहुत-सी बीमारियों तथा कीड़े-मकोड़ों से बचने के लिए फसलों को ठीक समय से बोना चाहिए । कुआरी धान में लगनेवाला गंधी कीड़ा ७ सितम्बर से १५ अक्टूबर तक सक्रिय रूप में रहता है । इससे बचने का सबसे सरल उपाय यही है कि धान ऐसे समय से बोया जाय कि उसके दानों में दूध आने का समय १० सितम्बर से १५ अक्टूबर के बीच में न पड़े। अतः धान को पहली वर्षा के बाद शीघ्र बो देना चाहिए, नहीं तो गंधी कीड़ा लगने का डर रहता है।

इसी प्रकार गेहूँ में सबसे अधिक नुकसान पहुँचानेवाली बीमारी गेरुई से भी गेहूँ को जल्द बोकर बचाया जा सकता है । गेरुई का आक्रमण प्रायः फरवरी के अंत में होता है । अतः गेहूँ की ऐसी जातियाँ ऐसे समय पर बोनी चाहिए कि फरवरी के अंत तक उनके दाने कुछ कड़े हो जायँ और इस प्रकार वे गेरुई के असर से बच सकें । गेरुई से बचने के लिए गेहूँ की बोआई २० अक्टूबर से शुरू करके शीघ्र से शीघ्र अक्टूबर में ही समाप्त कर देनी चाहिए ।

(५) स्वस्थ बीजों का प्रयोग

बहुत-सी बीमारियाँ बीजों द्वारा फैलती हैं । रोगग्रस्त फसल के बीज बोने से दूसरे वर्ष भी रोग लग जाता है । गन्ने की रेड राट, गेहूँ, जौ और ज्वार की स्मट या अगिया की बीमारी, धान की ब्लास्ट बीमारी, आलू का मोजैक या कुष्ठ रोग, रिंग राट या वृत्ताकार सड़न और पत्तियों की ऐंठन की बीमारी आदि ऐसी व्याधियाँ हैं, जो रोगग्रस्त बीजों द्वारा फैलती हैं । इन रोगों से बचने का उपाय यही है कि स्वस्थ बीजों का प्रयोग किया जाय, और यदि यह सम्भव न हो तो बीजों को दवाओं द्वारा शोधकर या अन्य उपायों द्वारा निरोग करके बोया जाय ।

गेहूँ, जौ, धान और ज्वार के बीज को एग्रोसीन जी० एन० दवा से शोध कर निरोग किया जा सकता है। डेढ़ से दो छटाँक दवा प्रति मन बीज के साथ इस प्रकार मिलानी चाहिए कि प्रत्येक बीज के दाने से कुछ न कुछ दवा चिपक जाय। इस दवा को मिलाने के लिए एक बनी-बनायी मशीन मिलती है। परन्तु एक सरल उपाय यह भी है कि मिट्टी के घड़े में बीज रखकर, उसकी मात्रा के अनुसार दवा मिलाकर और घड़े के मुँह को किसी कागज के टुकड़े से बाँधकर तीन-चार मिनट तक खूब झकझोरा जाय। ऐसा करने से थोड़ी-सी दवा प्रत्येक बीज के साथ चिपक जाती है। यह दवा बीमारियों के बीजाणुओं को नष्ट कर देती है।

आलू को कुष्ठ रोग से बचाने का उपाय यह है कि बीज के लिए बड़े आलू बोये जायँ। चूँकि रोगग्रस्त पौधे से पैदा आलू छोटे ही रह जाते हैं, अतः यदि इन्हें न बोकर केवल बड़े आलू ही बोये जायँ, तो बीमारी पैदा होने की सम्भावना कम रहती है। साथ ही यह आवश्यक है कि रोगी पौधे जो दिखलाई दें, उन्हें बराबर निकालते रहना चाहिए। रोगी पौधों को कुदाली से खोदकर मिट्टी सहित खेत से निकालकर नष्ट कर देना चाहिए। ऐसा करते रहने से बीमारी से छुटकारा पाया जा सकता है, जैसा कि चित्र सख्या १२ में दिखलाया गया है।

आलू में लगनेवाली अन्य विषाणु की बीमारियों की रोक-थाम बड़ी कठिन है। एक बार पौधों मे विषाणु पहुँच जाने पर उसे किसी प्रकार निकाला नहीं जा सकता। वाइरस (विषाणु) की बीमारियाँ उसी प्रकार फैलती हैं, जैसे मनुष्यों में मलेरिया। किसी रोगग्रस्त व्यक्ति को काटने के बाद यदि वही मच्छर किसी स्वस्थ व्यक्ति को काटता है, तो वह भी रोगग्रस्त हो जाता है। इसी प्रकार जब कीड़े रोगग्रस्त पौधों का रस चूसने के बाद स्वस्थ पौधों का रस चूसते है, तो वे स्वस्थ पौधों को भी रोगग्रस्त बना देते है। जिन क्षेत्रों में आलू अधिक पैदा होता है, वहाँ आलू को स्वस्थ रखना असम्भव-सा हो जाता है। पहाड़ों पर कीड़ों का प्रकोप कम होता है, इसलिए पहाड़ों पर पैदा हुए आलू के बीज के स्वस्थ रहने की अधिक सम्भावना होती है। जहाँ तक सम्भव हो, दूसरे-तीसरे वर्ष पहाड़ों से आलू मँगाकर बीज को बदलते रहना चाहिए।

मैदानों में गर्मी के दिन आने पर जब कीड़े अधिक पैदा हो जाते हैं, आलू खोदे जाते हैं। परन्तु यदि बीजवाला आलू गर्मी शुरू होने के पहले ही कुछ कच्चा खोद लिया जाय, तो उसे बीमारियों से बचाया जा सकता है।

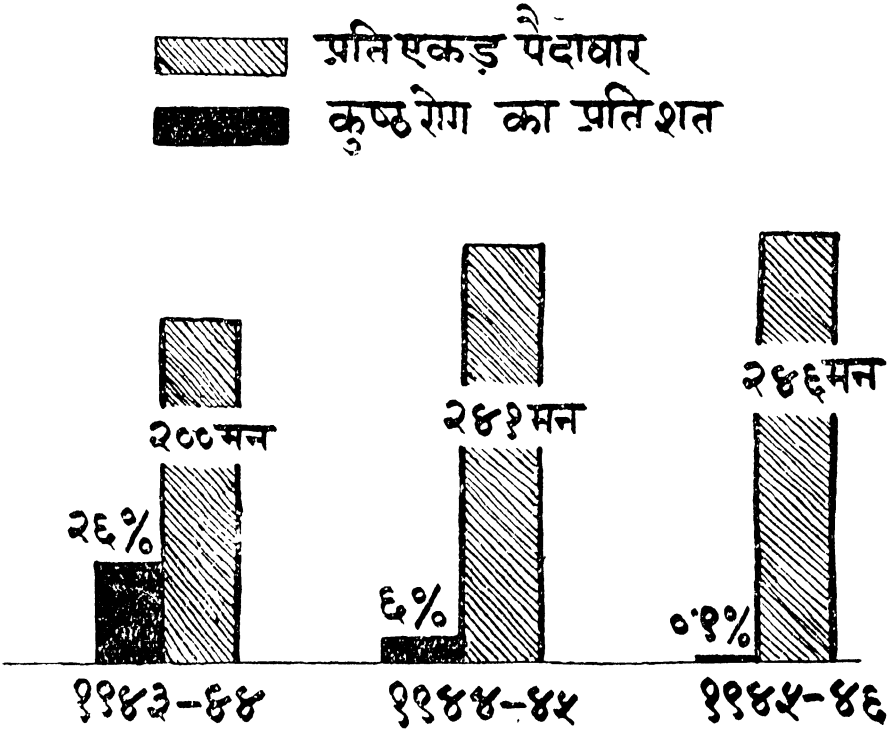

चित्र १२—रोगी पौधों के विनाश द्वारा आलू के कुष्ठ रोग की रोक-थाम।

(६) रोगनिरोधी किस्मों का प्रयोग

बहुत-सी फफूँदी की बीमारियाँ ऐसी हैं, जिनके स्पोर (कण) हवा में उड़ा करते हैं। वे जब किसी स्वस्थ फसल पर आ गिरते हैं, तो उसे भी रोगग्रस्त बना देते हैं। ऐसी बीमारियों से बचने का एक मात्र उपाय यही है कि फसलों की ऐसी किस्में बोयी जायँ, जिनमें बीमारी कम लगती हो या बिलकुल न लगती हो। गेहूँ की गेरुई बीमारी इसी प्रकार की है। गेहूँ की कुछ ऐसी किस्में निकल आयी हैं, जिनमें अन्य किस्मों की अपेक्षा बीमारी से बचने की

क्षमता अधिक रहती है । किसानों को कृषि विभाग के कर्मचारियों से पूछते रहना चाहिए कि कौन-कौन-सी ऐसी नयी किस्में निकली हैं, जो बीमारियों से कम प्रभावित होती हैं, और ऐसी ही किस्में उन्हें बोनी चाहिए ।

(७) दवाओं का प्रयोग

सभी प्रकार की सावधानी बरतने पर भी कोई-न-कोई बीमारी फसलों को लग ही जाती है । बीमारी लगने पर दवाओं का छिड़काव करके उनकी रोक-थाम करनी चाहिए। परन्तु बीमारियों के बढ़ जाने पर उनकी रोक-थाम करना कठिन और खर्चीला होता है । यदि बीमारियाँ लगने से पहले ही उनकी मारक दवाओं का छिड़काव कर दिया जाय, तो बीमारियों के लगने की सम्भावना बहुत कम हो जाती है । आलू में झुलसा बीमारी के लगने की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए, वरन् लगने के पहले ही बोर्डो मिक्श्चर या पेरीनाक्स इत्यादि के कम-से-कम दो छिड़काव तो कर ही देने चाहिए। इसी प्रकार से गन्ना-छेदक कीड़ों से बचने के लिए ऐन्ड्रीन का छिड़काव पहले से ही कर देना चाहिए । जिस क्षेत्र मे दीमक लगती हो, वहाँ उसके लगने की प्रतीक्षा न करके, गन्ना बोते समय ही कूँड़ में गैमेक्सीन या क्लोरोडेन दवा मिला देनी चाहिए। पाश्चात्य देशों में खाद के साथ ही कीट-नाशक दवाएँ मिलाने का रिवाज बढ़ता जा रहा है। ऐसा करने से बीमारी लगने की सम्भावना कम हो जाती है ।

खर-पतवार की रोक-थाम

फसलों को केवल कीड़े-मकोड़ों तथा बीमारियों से ही नुकसान नहीं पहुँचता, वरन् खेतों में उपजनेवाले खर-पतवार तथा घासों से भी उन्हें बहुत बड़ा नुकसान पहुँचता है । खर-पतवार फसल के पौधों के साथ, भूमि में प्राप्त नमी, पोषक तत्त्वों, हवा तथा सूर्य के प्रकाश के लिए होड़ लगाता है। प्रायः खर-पतवार के पौधे पैदावारी फसलों के पौधों के मुकाबले मे ज्यादा तेजी से बढ़नेवाले और मजबूत होते हैं । इसलिए यदि उनकी रोक-थाम न की जाय, तो वे बोयी हुई फसल को दबा लेते हैं और इस प्रकार जो खाद-पानी फसल के लिए दिया जाता है, वह उसे न मिलकर खर-पतवार के

बढ़ने के काम आता है। खेत उपजाऊ होते हुए भी यदि उसमें खर-पतवार अधिक हो जाय तो फसल की पैदावार अच्छी नहीं होती। प्रायः यह भी देखा गया है कि जिन खेतों में खर-पतवार अधिक लगता है, उनमें कीड़े-मकोड़े भी ज्यादा लगते हैं। कुआरी धान में जब निकाई नहीं हो पाती और खेत में खर-पतवार अधिक रहता है, तो उसमें गंधी कीड़ा लगने का डर रहता है।

फसल में खर-पतवार उपजने से वस्तु का मूल्य भी कम हो जाता है। जैसे गेहूँ के साथ अंकरी और चेंच के बीज मिल जाने से बाजार में उसकी कम कीमत लगती है। इसी प्रकार धान में उपजनेवाले खर-पतवार के बीज, जो कूटते समय भी उससे अलग नहीं होते, मिल जाने से चावल की कीमत कम मिलती है। खेत में खर-पतवार लगने पर कई प्रकार से बहुत हानि होती है। अतः किसान को चाहिए कि हर सम्भव उपाय से खर-पतवार को नष्ट करता रहे। अच्छी खेती की पहली पहचान यही है कि फसलों के साथ खर-पतवार न उगे। नीचे हम उन कुछ थोड़े-से उपायों का वर्णन करते हैं, जिनका प्रयोग करके किसान खर-पतवार की रोक-थाम कर सकता है।

(१) बीज नष्ट करना

खर-पतवार के पौधों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है। एक तो वे जो प्रति वर्ष उगते हैं और जिनमें वर्ष के अंदर ही फल-फूल आकर बीज तैयार हो जाता है। बीज पक जाने के बाद वे स्वतः मर जाते हैं, और यही बीज दूसरे वर्ष उचित वातावरण पाकर फिर से उगते हैं। दूसरे प्रकार के वे खर हैं, जो एक बार उगने पर बढ़ते रहते हैं। प्रायः ऐसे खर बीज से न फैलकर, पौधों की शाखाओं तथा जड़ों के टुकड़ों से फैलते हैं, जैसे——मोथा और दूब। इन दोनों प्रकार के खर-पतवारों को मारने के लिए अलग-अलग उपाय करने पड़ते हैं।

जो खर-पतवार बीज से पैदा होते हैं, उनको नष्ट करने के लिए यह आवश्यक है कि उन्हें दाना पड़ने से पहले ही मार डाला या निकाल दिया जाय, क्योंकि एक बार बीज खेत में बिखर जाने के बाद उसे अगले साल उगने से नहीं रोका जा सकता। इसलिए ऐसे खर जैसे ही खेत में दिखाई दें, वैसे ही उनको खुरपी से निकाई करके या गुड़ाई और जुताई द्वारा नष्ट कर देना

चाहिए। दूसरे प्रकार के, जड़ों और शाखाओं द्वारा फैलनेवाले, खरों को नष्ट करने का सबसे सरल उपाय यही है कि जब गर्मी के दिनों में धूप तेज़ होती है और खेत में नमी बिलकुल नहीं रहती, उस समय जोतकर खेत को खुला छोड़ दिया जाय। ऐसा करने से नमी की कमी से खर-पतवार के पौधे सूख जाते हैं। परन्तु प्रायः अप्रैल और मई के महीनों में खेतों में इतनी नमी नही होती कि उनकी जुताई की जा सके, इसलिए ऐसे खेतों को यदि वे खाली हों, तो एक बार जाड़े के दिनों में वर्षा होने पर या सींचकर जोत देना चाहिए। ऐसा करने पर बाद में गर्मी आने पर खेत जोतने में आसानी रहती है। ऐसी घासों को, जो शाखाओं और जड़ों से फैलती हैं, यदि वर्षा आने के पहले ही सुखाकर नष्ट नही कर दिया जाता, तो बरसात में बार-बार जुताई करने पर भी उनकी रोक-थाम नहीं की जा सकती।

(२) स्वच्छ बीज बोना

प्रायः यह देखा गया है कि उस साधारण बीज में, जो किसान बोता है, पहले से ही बहुत खर-पतवार के बीज मिले रहते हैं। खेत में पड़ने पर फसल के साथ ही वे उग आते हैं। इस प्रकार किसान स्वयं खर-पतवार के बीज बोता है जो उसे बाद में चलकर नुकसान पहुँचाते हैं। बीज की सफाई में जो थोड़ी मेहनत होती है उससे कहीं अधिक मेहनत उन घासों को निकालने में होती है, जिनका बीज किसान फसल के बीज के साथ बो देता है। अतः किसान को चाहिए कि बीज को बहुत साफ करके तब बोये। कभी-कभी घासों के बीज बहुत बारीक होते है और फसल के बीज के साथ मिले रहने के कारण कम दिखलाई पड़ते हैं, परन्तु संख्या में वे बहुत अधिक होते है। बोने के पहले बीज को ऐसे झरने से झार लेना चाहिए, जिसमें से फसल के बीज तो न गिरें, परन्तु छोटे बीज गिर जायँ।

(३) फसलों का हेर-फेर

जिस प्रकार कीड़े-मकोड़ों तथा बीमारियों की रोक-थाम के लिए फसलों का हेर-फेर आवश्यक है, उसी प्रकार खर-पतवार की रोक-थाम के लिए भी यह आवश्यक है। देखा गया है कि किसी एक मुख्य फसल के साथ एक ही

प्रकार का खर-पतवार उपजता है, और यदि उसी फसल को बार-बार एक ही खेत में बोया जाय, तो उसके साथ पैदा होनेवाले खर-पतवार की संख्या भी बहुत बढ़ जाती है। उदाहरण के लिए यदि एक ही खेत में कई वर्ष तक लगातार गेहूँ बोया जाय, तो गेहूँ के साथ उपजनेवाले खर-पतवार, जैसे अँकरी, मुनमुन, बथुआ इत्यादि की संख्या इतनी अधिक हो जाती है कि खेत में उर्वरा शक्ति रहने पर भी गेहूँ की फसल अच्छी नहीं होती। फसलों को हेर-फेरकर बोने से वह खर-पतवार, जो एक फसल के साथ पैदा होकर बढ़ने का अवसर पाता है, दूसरे वर्ष दूसरी फसल के साथ वह अवसर न पाकर नष्ट हो जाता है। उदाहरण के लिए यदि किसी गेहूँ की फसल में बथुआ अधिक पैदा हो गया है, तो दूसरे वर्ष भी यदि उसमें गेहूँ ही बोया जायगा, तब बथुआ गेहूँ को दबा लेगा। परन्तु यदि दूसरे वर्ष गेहूँ के स्थान पर उसी खेत में गन्ना बो दिया जाय, तो गन्ने के नीचे बथुआ उगने का अवसर न पाकर नष्ट हो जायगा।

(४) घनी फसलों का प्रयोग

घनी फसल बोकर भी खर-पतवार नष्ट किया जा सकता है। सभी पौधों को जीवित रहने के लिए सूर्य के प्रकाश की आवश्यकता होती है। यदि खेत में हरी खाद की फसलें इतनी घनी बो दी जायँ कि उनके बढ़ने पर सूर्य का प्रकाश भूमि तक न पहुँच सके, तो नीचे उगनेवाली घासें बहुत ही कमजोर पड़कर मर जायँगी। ऐसी हरी खाद की फसले सनई, ढेचा और रशन जायन्ट लोबिया है। खर-पतवार को दबाने के लिए रशन जायन्ट लोबिया अत्यन्त ही उपयोगी सिद्ध हुआ है, क्योंकि इसकी लताएँ बढ़कर खेत के ऊपर एक ऐसी मोटी तह बना लेती हैं, जिसके नीचे किसी अन्य पौधे का पनपना असम्भव-सा हो जाता है। नये फल के बागों में, जिनमें पौधों के छोटे होने के कारण सनई या ढेंचा का प्रयोग नहीं किया जा सकता, रशन जायन्ट लोबिया बोया जा सकता है। यह भूमि पर ही फैलता है और पूरे खेत को शीघ्र ही ढँक लेता है। ऊँचे कद का न होने के कारण, बाग के पौधों को इसकी छाया से कोई नुकसान नहीं होता।

मोथा एक ऐसी घास है जिसे नष्ट करना किसानों के लिए सबसे कठिन काम होता है। इस पर काबू पाने के लिए सबसे सरल उपाय यही है कि खेत

में ऐसी घनी फसलें उगायी जायँ, जिनके कारण सूर्य-प्रकाश भूमि तक न पहुँच सके। वर्षा ऋतु में घनी सनई की फसल हरी खाद के लिए बो दें, उसके बाद खूब खाद देकर गन्ने की फसल लगायें। गर्मियों में गुड़ाई से मोथा दवा रहेगा, बरसात आते-आते गन्ना इतना घना हो जायगा कि मोथा को प्रकाश न मिलने के कारण वह कमजोर होकर मर जायगा। गन्ना काट लेने के बाद यदि फिर पेड़ी छोड़ दी जाय तो मोथा को बढ़ने का अवसर नहीं मिलेगा। इस प्रकार मोथा बहुत हद तक नष्ट किया जा सकता है।

जिस खेत में ज्यादा खर-पतवार लगने की सम्भावना हो, उसमें फसल भी घनी बोनी चाहिए। ऐसा करने से फसल कुछ हद तक खर-पतवार को दबा लेती है।

(५) लाही और आलू का प्रयोग

रबी की फसलों में यदि खर-पतवार ज्यादा उगता हो तो उसको कम करने का एक उपाय यह भी है कि उस खेत में लाही बो दी जाय। लाही जनवरी के पहले या दूसरे सप्ताह में कट जाती है। उस समय तक रबी के अधिकांश खर-पतवार में दाना नहीं पड़ा होता। लाही काटने के तुरन्त बाद ही जुताई कर देने से खर-पतवार के पौधे नष्ट हो जाते है और अगले साल के लिए बीज नहीं छोड़ते।

आलू भी एक ऐसी फसल है जिसके बोने से अगले वर्ष खर-पतवार कम हो जाता है। इसका कारण यह है कि आलू के ऊपर मिट्टी चढ़ानी पड़ती है, उस समय तक उगा खर-पतवार मिट्टी चढ़ाते समय नष्ट हो जाता है और उसका बीज अगले साल के लिए नही छूटता। मिट्टी चढ़ जाने के बाद आलू के पत्ते भूमि को इस प्रकार से ढँक लेते है कि उनके नीचे दूसरे खर-पतवार का उगना कठिन हो जाता है। इसी लिए आलू को खेत साफ करनेवाली फसल भी कहा गया है।

(६) खेत में पानी भरना

खर-पतवार को मारने का एक उपाय यह भी है कि खेत में पानी भरा रखा जाय। कुआरी धान पैदा करनेवाले किसान यह जानते हैं कि जिस वर्ष

वर्षा कम होती है उस वर्ष खर अधिक उगते है, और जिस वर्ष वर्षा अधिक होती है उस वर्ष खर कम उगते हैं। इसका कारण यह है कि पानी लगे रहने से धान को तो कोई नुकसान होता नहीं, परन्तु उसमें खर-पतवार नहीं पनप सकता। यदि खेत समतल हो और छोटे-छोटे टुकड़ों की मेड़ें बँधी हुई हों, तो कम पानी बरसने पर भी खेत में पानी लगा रहता है और उसमे घासें नहीं उग सकती। इसलिए धान के खेत की मेड़बंदी करना बहुत ही आवश्यक है। मेड़बंदी एक प्रकार से और भी लाभदायक है। जंगल से या और दूसरे खेतों से खर-पतवार के बीज पानी के साथ बहकर नहीं आ सकते। मेड़बंदी खेत की नमी और उपजाऊ शक्ति को कायम रखने के अतिरिक्त खर-पतवार पर काबू रखने में भी सहायक होती है।

धान के खेत की घास को मारने के लिए उसमें थोड़ा पानी भरकर दूर-दूर देशी हल या कल्टीवेटर से जोतकर पटेला दे देना लाभप्रद सिद्ध हुआ है। पानी लगा रहने के कारण ये सब क्रियाएँ करने से धान को तो कोई नुकसान नहीं पहुँचता, परन्तु इससे अधिकांश खर मर जाते है। इस क्रिया को पूर्वी जिलों में 'बिदहनी' कहते हैं।

(७) बोआई के स्थान पर बैठौनी

धान की खेती में खर-पतवार पर काबू पाने का सबसे सरल उपाय यह है कि बोआई के स्थान पर 'बैठौनी' या 'रोपाई' का ढंग अपनाया जाय। बोआई करने से धान और खर साथ-साथ उगते हैं और उन्हें फिर निकालना बड़ा कठिन हो जाता है। वर्षा होने के बाद प्रायः एक सप्ताह में सभी बरसाती खर उग आते है। उनके उग आने के बाद यदि खेत की जुताई की जाय और लेव लगाया जाय तो सभी उगे हुए खर नष्ट हो जाते है। परन्तु खर उगने की प्रतीक्षा करने से कुआरी धान की बोआई पिछड़ जाती है, जिससे बाद में गंधी कोड़ा लगने का डर रहता है। परन्तु यदि बियाड़ अलग से बोया जाय और खर उग आने पर लेव लगाकर धान बैठाया जाय, तो धान पिछड़ेगा भी नहीं, और खर-पतवार भी बहुत कम हो जायगा।

(८) मल्चिंग या भूमि को ढँक देना

खर-पतवार पर काबू पाने का एक बड़ा सफल, परन्तु कुछ महँगा उपाय यह भी है कि फसल के पौधों को बचाकर शेष भूमि को पयाल, भूसा, लकड़ी के बुरादे या अन्य किसी ऐसे पदार्थ से ढँक दिया जाय, जिससे सूर्य का प्रकाश भूमि तक न पहुँचे। ऐसा करने से खर-पतवार नही उगते और अगर उगते भी हैं, तो वे सूर्य का प्रकाश न पाकर मर जाते है। भूमि को इस प्रकार ढँकने की क्रिया मल्चिंग कहलाती है। मल्चिंग से न केवल खर-पतवार से छुटकारा मिल जाता है, बरन अन्य कई लाभ भी होते हैं। भूमि ढँकी रहने के कारण नमी बनी रहती है, भूमि का कटाव रुक जाता है, मिट्टी की बनावट में सुधार होता है और पौधों की जड़ों पर अधिक ठंड और गर्मी का असर नहीं होता, क्योंकि मल्चिंग की वस्तु भूमि पर एक कम्बल का-सा काम करती है।

यह देखा गया है कि मल्चिंग के फलस्वरूप पैदावार बढ़ जाती है, जिसका कारण केवल खर-पतवार की कमी ही नही हो सकता। मल्चिंग द्वारा फसल तो अच्छी लगती ही है, इसके अतिरिक्त सिंचाई और गुड़ाई इत्यादि की मेहनत में भी बचत हो जाती है। शाहजहाँपुर गन्ना अनुसंधान-केन्द्र पर गन्ने की मल्चिंग का प्रयोग किया गया, जिससे सिंचाई में ६०% की बचत हुई और गुड़ाई की भी पूरी बचत हो गयी, फिर भी पैदावार में कमी नहीं हुई।

मल्चिंग का प्रयोग बागों में पौधों के फलों पर भी किया जाना चाहिए। प्रायः यह देखा गया है कि पौधे लगाने के बाद किसानों को इतनी फुरसत नहीं मिलती कि वे प्रत्येक पौधे के नीचे गुड़ाई और निकाई का काम समय-समय पर करते रहें। परिणाम यह होता है कि नये पौधों की जड़ों के पास बहुत-सी घासें उग आती हैं जो पौधों को नुकसान पहुँचाती है। परन्तु यदि पौधे लगाने के बाद तुरन्त ही उनके चारों तरफ ४ फुट के व्यास मे पयाल या अन्य किसी ऐसी ही वस्तु की ३–४" (इंच) मोटी तह बिछा दी जाय, तो फिर पौधों की जड़ों के पास घासें नहीं उग सकतीं। मल्चिंग के कारण सिंचाई भी कम करनी पड़ती है। इस विधि का प्रयोग करने से बाग लगाने में पौधों की बहुत ही कम देखभाल करनी पड़ती है।

जापान के बागवानी-विशेषज्ञों द्वारा एक प्रयोग किया गया था, जिसमें

चित्र १४—बायीं ओर प्लास्टिक मल्चिंग, दाहिनी ओर बिना मल्चिंग। (पृ० ७३)

बाग की भूमि के प्रबन्ध की तीन विधियों की सलाह दी गयी थी,—(१) गुड़ाई-जुताई से बाग को साफ रखकर, (२) हरी खाद के लिए फसल बोकर, (३) बाग में पयाल बिछाकर मल्चिंग द्वारा। यह प्रयोग कई वर्षों तक चलता रहा और पौधों के बढ़ाव तथा फल-उत्पादन पर तीनों विधियों का प्रभाव देखा गया। पौधों के बढ़ाव तथा फल-उत्पादन की दृष्टि से मल्चिंग की विधि सबसे उत्तम पायी गयी।

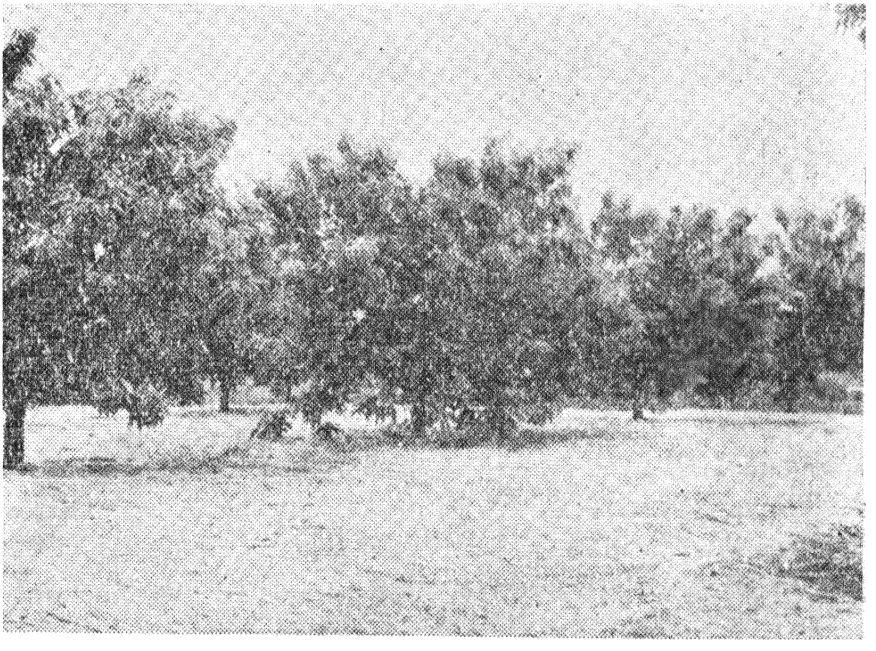

चित्र १३ क—गुड़ाई-जुताई से बाग को साफ किया गया है।

मल्चिंग के लिए विशेष कागज और प्लास्टिक बनने लगे हैं, जिनके बंडल-के-बंडल आते हैं। उन्हें खेत में बिछाने में बड़ी आसानी होती है। पूरे खेत पर बिछाकर उसमें उन स्थानों पर, जहाँ पौधे बैठाना हो, छेद करके पौधे बैठा दिये जाते हैं। इनमें फिर निकाई-गुड़ाई कुछ नहीं करनी पड़ती। चित्र संख्या १४ में प्लास्टिक द्वारा मल्चिंग की गयी फसल की, बिना मल्चिंग की गयी फसल से तुलना दिखायी गयी है। मल्चिंग किये हुए टुकड़े में घासें इत्यादि बिलकुल नहीं हैं और पौधे भी स्वस्थ हैं। दूसरी ओर घास ने फसल को दबा लिया

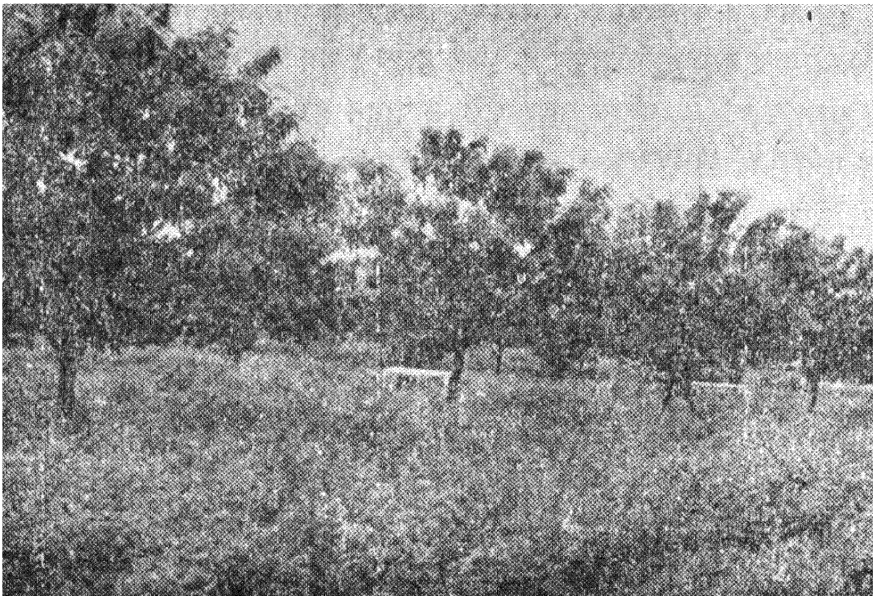

चित्र १३ ख—बाग में हरी खाद की फसल बोयी गयी है।

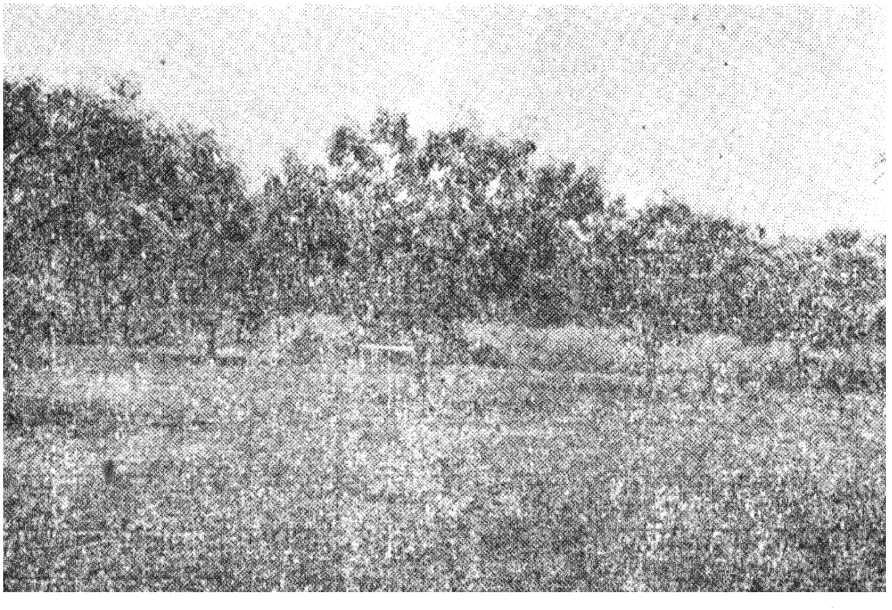

चित्र १३ ग—बाग में पयाल द्वारा मल्चिंग की गयी है।

है। यद्यपि कागज और प्लास्टिक महँगे पड़ते हैं, फिर भी बाग में छोटे पैमाने पर जहाँ कीमती फसलें पैदा करना हो इनका प्रयोग किया जा सकता है।

(९) लाइन से बोआई

सभी प्रकार के खर-पतवार पर काबू पाने के लिए फसलों को लाइन में बोना, उनके बीच में हैण्डहो, कुदाली, हल या कल्टीवेटर से गुड़ाई करना और मिट्टी चढ़ाना बहुत ही सफल उपाय हैं। वास्तव में अच्छी खेती की पहचान ही यह है कि फसलें लाइन में बोयी हुई हों और लाइनों के बीच-बीच कर्षण क्रियाएँ की जाती हों। कृषि-उत्पादन बढ़ाने के लिए इस ढंग को अपनाना अति आवश्यक है। यह गहन खेती का एक प्रमुख साधन है, अतः इसका वर्णन विस्तारपूर्वक पूरे एक अध्याय में आगे किया गया है।

(१०) खर-नाशक दवाएँ

खर-पतवार को नष्ट करने के लिए कुछ रासायनिक पदार्थों का आविष्कार हुआ है। इनके प्रयोग से मुख्य फसल पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता, परन्तु खर-पतवार के पौधे झुलसकर मर जाते हैं। इन दवाओं में सबसे प्रचलित २–४ डी० है। यह चौड़े पत्तेवाले तथा ऐसे सभी पौधों को मारने के लिए सफलतापूर्वक प्रयोग में लायी जा सकती है, जिनके उगते समय दो पत्ते एक साथ निकलते हों। गेहूँ की फसल के साथ उगनेवाले बथुआ, अँकरी, मुनमुन इत्यादि को नष्ट करने में इस दवा से बड़ी सुविधा होती है।

है। यद्यपि कागज और प्लास्टिक महँगे पड़ते हैं, फिर भी बाग में छोटे पैमाने पर जहाँ कीमती फसलें पैदा करना हो इनका प्रयोग किया जा सकता है।

(९) लाइन से बोआई

सभी प्रकार के खर-पतवार पर काबू पाने के लिए फसलों को लाइन में बोना, उनके बीच में हैण्डहो, कुदाली, हल या कल्टीवेटर से गुड़ाई करना और मिट्टी चढ़ाना बहुत ही सफल उपाय हैं। वास्तव में अच्छी खेती की पहचान ही यह है कि फसलें लाइन में बोयी हुई हों और लाइनों के बीच-बीच कर्षण क्रियाएँ की जाती हों। कृषि-उत्पादन बढ़ाने के लिए इस ढंग को अपनाना अति आवश्यक है। यह गहन खेती का एक प्रमुख साधन है, अतः इसका वर्णन विस्तारपूर्वक पूरे एक अध्याय में आगे किया गया है।

(१०) खर-नाशक दवाएँ

खर-पतवार को नष्ट करने के लिए कुछ रासायनिक पदार्थों का आविष्कार हुआ है। इनके प्रयोग से मुख्य फसल पर कोई बुरा प्रभाव नही पड़ता, परन्तु खर-पतवार के पौधे झुलसकर मर जाते है। इन दवाओं में सबसे प्रचलित २–४ डी० है। यह चौड़े पत्तेवाले तथा ऐसे सभी पौधो को मारने के लिए सफलतापूर्वक प्रयोग में लायी जा सकती है, जिनके उगते समय दो पत्ते एक साथ निकलते हों। गेहूँ की फसल के साथ उगनेवाले बथुआ, अँकरी, मुनमुन इत्यादि को नष्ट करने में इस दवा से बड़ी सुविधा होती है।

अध्याय ६

फसलों को पाँतों में बोना

उन्नत खेती करने की पहली सीढ़ी फसलों को पाँतों में बोना है। पाँत-बोआई के उन लाभों के अतिरिक्त, जिनका वर्णन नीचे किया जायगा, सबसे बड़ा लाभ है उसकी मनोवैज्ञानिकता। लाइन से बोयी हुई फसल देखने मे बहुत सुन्दर लगती है। उसको देखकर किसान का उत्साह बढ़ता है और खेती पर अधिक परिश्रम और व्यय करने की उसकी इच्छा होती है। जो किसान अपनी फसलों को पाँतवार बोना शुरू कर देते हैं, वे कुछ ही दिनों बाद अच्छे किसान बन जाते हैं। रुचि पर ही सफलता निर्भर करती है और पाँतवार फसल बोने से खेती मे रुचि बढ़ती है।

गुड़ाई-भौराई से लाभ

यह सभी किसान जानते हैं कि निकाई-गुड़ाई करने से फसलों को लाभ पहुँचता है। यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि पौधों की जड़ों को हवा की आवश्यकता होती है। गुड़ाई-भौराई करने से भूमि में हवा का प्रवेश आसानी से होता रहता है। हवा के प्रवेश का यह भी लाभ होता है कि भूमि के अन्दर प्राप्त वानस्पतिक पदार्थ शीघ्रता से पौधों के भोजन नाइट्रेट के रूप में बदल जाते हैं। गुड़ाई-भौराई करने से भूमि के नीचे की सतह का ऊपर से सिलसिला टूट जाता है और नीचे की नमी ऊपर आकर उड़ने नहीं पाती। इस तरह से नमी को ज्यादा दिनों तक सुरक्षित रखा जा सकता है। गुड़ाई-भौराई से भूमि को पोली बनाये रखने में भी सहायता मिलती है। भूमि पोली रहने से पौधों की जड़ें आसानी से भूमि में बढ़ती हैं और जड़ें जितनी ही बढ़ती हैं पैदावार भी उसी हिसाब से बढ़ती है। इन सब लाभों के अलावा गुड़ाई-भौराई का सबसे बड़ा लाभ खर-पतवार की रोक-थाम है। गुड़ाई द्वारा भूमि के अंदर हवा के प्रवेश, जड़ों के अधिक फैलाव, नमी के अधिक

दिनों तक बने रहने और खर-पतवार की रोक-थाम के कारण बिना गुड़ाई की तुलना में गोड़ी हुई फसलों की पैदावार २० से ५०% तक बढ़ जाती है। यह बात केवल गन्ना या मक्का जैसी फसलों के लिए ही सत्य नहीं है, बल्कि अन्य सभी फसलों, जैसे धान, गेहूँ, चना, मूँग, मटर इत्यादि के लिए भी सत्य है।

परन्तु गुड़ाई तब तक सम्भव नहीं जब तक फसलें पाँतों में न बोयी जायँ। पाँतों में बोयी हुई फसलों में गुड़ाई का काम बहुत सरल हो जाता है। घनी बोयी जानेवाली फसलें, जैसे गेहूँ, धान, जौ और चना इत्यादि की गुड़ाई तो पाँतवार बोये बिना सम्भव ही नहीं है। गन्ना और मक्का जैसी फसलों को भी पाँतों में बोने से ही लाभ होता है, क्योंकि उनमें बैलों से चलनेवाला कल्टीवेटर चलाकर गुड़ाई का काम बड़ी तेजी से किया जा सकता है। बिना लाइन से बोयी हुई फसलों को मामूली कुदाली से गोड़ने के लिए एक एकड़ की गुड़ाई में ८ मजदूर लगते है, जब कि पाँतों में बोयी हुई फसल को हैंडहो से गोड़ने के लिए तीन मजदूर प्रति एकड़ लगते हैं। बैलों से चलनेवाले कल्टीवेटर का यदि प्रयोग किया जाय, तो एक आदमी और एक जोड़ी बैल दिन भर में दो एकड़ की गुड़ाई कर सकते हैं। गुड़ाई में आसानी हो जाने से किसान के लिए यह सम्भव हो जाता है कि वह अपनी सभी फसलों को गोड़ सके और कम मेहनत से अधिक पैदावार ले सके।

पाँतों में बोने के तीन तरीके

फसलें पाँतवार बोने के तीन तरीके हैं--(१) खुरपी या डिबलर से बोना, (२) हल के पीछे बोना और (३) सीड ड्रिल द्वारा बोना। परन्तु इन तीनों प्रकार की बोआई के लिए यह आवश्यक है कि खेत में पहले सीधी पाँतें डाल ली जायँ। खुरपी से बोने के लिए जितनी दूरी पर पाँतें रखना हो उतनी-उतनी दूरी पर हर एक पाँत लगाना आवश्यक होता है। डिबलर से गेहूँ बोने के लिए २७-२७" पर पंक्ति लगाना आवश्यक है। हल के पीछे चलकर बोने के लिए यदि बीच-बीच मे एक लाइन छोड़ दी जाय और उसी अनुमान से चला जाय, तो भी काम चल सकता है। सीड ड्रिल से बोने के लिए केवल एक लाइन शुरू में लगाकर उसी के सहारे चलना शुरू

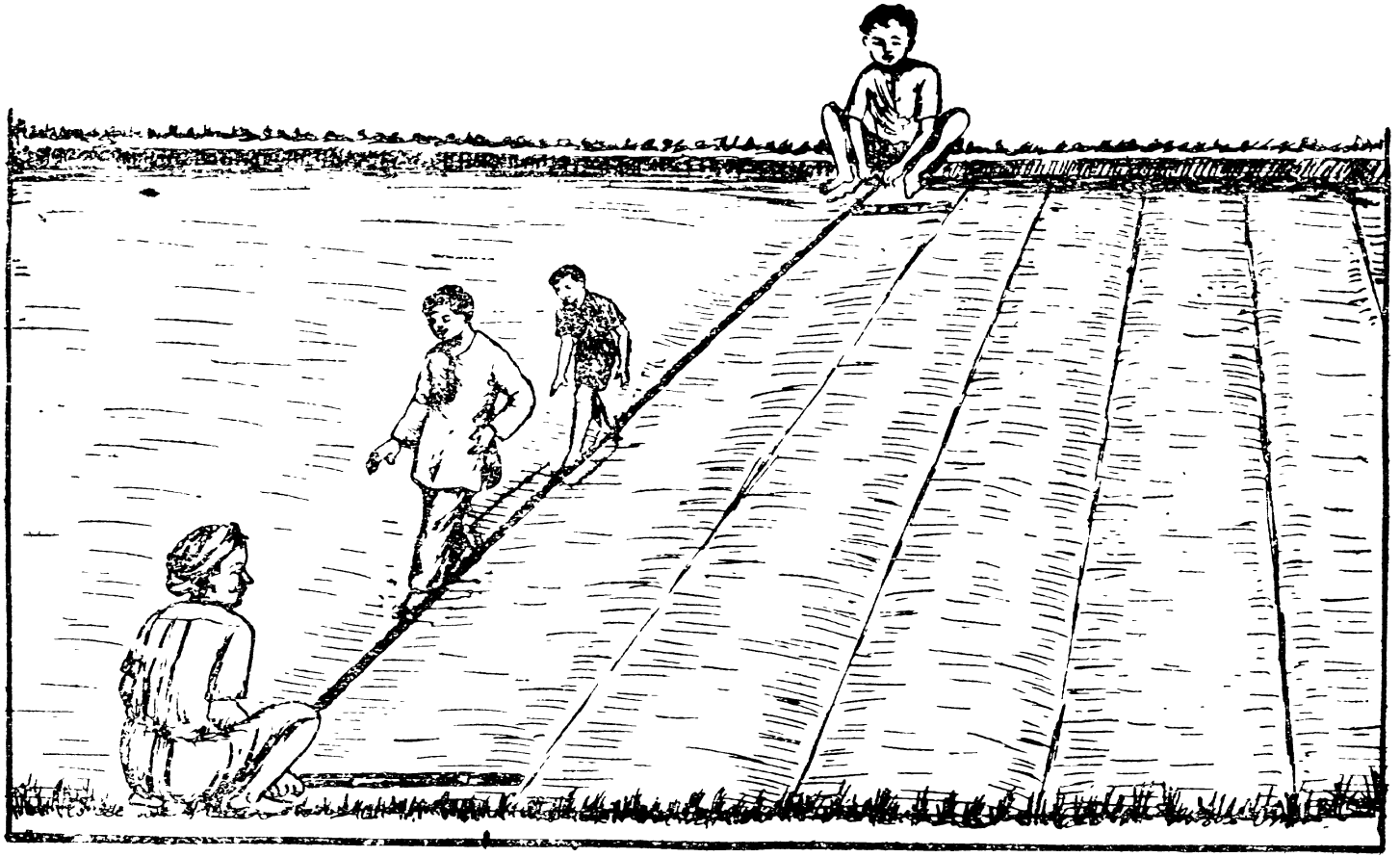

चित्र १५—खेत में सीधी पाँत बनाने का ढंग।

किया जाता है। बाद में सीड ड्रिल में लगे मार्कर से लाइनें बनती रहती है। पंक्तियाँ लगाने के लिए खेत को बिलकुल तैयार करके उसमें पाटा चलाकर मिट्टी को बारीक और समतल बना लिया जाता है। उसके बाद जितनी दूरी पर पाँतें लगानी हों उतनी लम्बाई के दो लकड़ी के टुकड़े लेकर दो मनुष्य खेत के किनारों पर बैठ जाते हैं और रस्सी को खींचकर तान लेते हैं। रस्सी जब सीधी हो जाती है, तब एक तीसरा आदमी उस रस्सी पर चलता है, जिससे खेत में सीधी लाइनों का निशान बन जाता है (चित्र १५) ।

फसलों को पाँतवार बोने में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि इसमें कुछ समय अधिक लगता है। खुरपी से बोआई करने में समय अवश्य अधिक लगता है, डिबलर से बोआई करने में कुछ कम समय लगता है, फिर भी काफी लगता है। परन्तु हल के पीछे चलकर बोने या सीड ड्रिल से बोने में अधिक समय नहीं लगता। थोड़ा-बहुत जो लाइन लगाने में समय लगता है, उससे कहीं अधिक बीज की बचत हो जाती है। छिटकवाँ बीज बोकर धान लगाने के लिए एक एकड़ में एक मन बीज लगता है। पाँतवार बोने में १२–१३ सेर बीज लगता है। इसी प्रकार एक एकड़ गेहूँ छिटककर बोने में लगभग सवा मन बीज की आवश्यकता पड़ती है। डिबलर से केवल ६ सेर और हल के पीछे चलकर या सीड ड्रिल से बोने में केवल २५ सेर बीज लगता है। लाइन से बोने में अन्य फसलों के बीजों में भी काफी बचत होती है। जितनी बचत होती है उसके मूल्य से बहुत कम व्यय फसलों को लाइन से बोने में लगता है।

पाँतों में बोयी हुई फसलों में पौधों की दूरी नपी-तुली होती है, इसलिए सभी पौधों का समुचित विकास होता है। छिटकवाँ बोने में दाने कहीं दूर-दूर पड़ते हैं और कहीं पास-पास, दोनों ही दशाओं में नुकसान होता है। अतः यदि कोई अन्य कारण न भी हो, तो भी पाँतवार बोआई में पौधों की एक-दूसरे से दूरी ठीक होने के कारण, पैदावार ज्यादा होने की सम्भावना रहती है।

फसलों को पाँतवार बोने का एक बड़ा लाभ यह भी है कि रासायनिक खादें पाँतों में आसानी से दी जा सकती है। फास्फेट-पूरक खादें पौधों की जड़ों के ठीक नीचे दी जाने पर अधिक से अधिक लाभदायक होती हैं। अन्य रासायनिक खादें भी पूरे खेत में फैलाने के बजाय, यदि केवल लाइनों में ही

दी जायँ तो उनकी उपयोगिता बढ़ जाती है। इस प्रकार पाँतों में खाद देकर थोड़ी रासायनिक खाद से भी अधिक लाभ उठाया जा सकता है। फसलों की पाँतवार बोआई का एक लाभ यह भी है कि पहली फसल कटने के पहले ही पाँतों के बीच-बीच में दूसरी फसल बोयी जा सकती है। चीन और जापान

चित्र १६—पाँतवार बोआई।

के चतुर किसान इस ढंग को प्रयोग में लाकर एक ही साल में अपनी भूमि से कई फसलें लेते हैं। इसके कुछ उदाहरण "फसलों के कुछ लाभदायक हेर-फेर" शीर्षक अध्याय में मिलेंगे। लाइन से बोयी हुई खड़ी अरहर में गन्ना बोया जा सकता है। इसी प्रकार यदि आलू डबल लाइन से बोया जाय, तो आलू खोदने के पहले ही उसमें गन्ना बोया जा सकता है। कुछ किसानों ने कुआरी धान की लाइनों के बीच-बीच अगहनी धान बैठाकर साल में एक ही खेत से दो धान की फसलें ली हैं। किसान अपनी सूझ-बूझ से अपनी परिस्थिति के अनुसार इस तरह भूमि से अधिक पैदावार लेने के अन्य अनेक उपाय ढूँढ़ सकते हैं। परन्तु यह सब तभी सम्भव है जब फसलें लाइन से बोयी जायँ।

अन्त में पाँतवार बोआई के विषय में एक चेतावनी भी दे देना आवश्यक है। पाँतवार बोने से खेत में बीज कम पड़ता है, अतः पैदावार तभी अच्छी

हो सकती है जब पौधों में कल्ले अधिक निकलें। यह उसी दशा में सम्भव है जब खेत में काफी खाद दी गयी हो और लाइनों के बीच-बीच निकाई-गुड़ाई की जाती हो। यदि खेत में पर्याप्त मात्रा में खाद न डाली जाय और किसान का इरादा फसल की गुड़ाई करने का न हो, तो पाँतवार बोआई न करनी चाहिए। लाइन से बोआई गहन खेती का ढंग है, अतः इसका पूरा लाभ तभी मिल सकता है जब सभी प्रकारों से अच्छी तरह खेती की जाय।

अध्याय ७

मिश्रित खेती

जिस व्यक्ति ने कुछ दिनों तक खेती की है, वह जानता ही है कि खेती की सबसे बड़ी समस्या खेतों की उर्वरा शक्ति बनाये रखना है। खेती के अन्य साधन—जैसे, सिचाई के लिए कुआँ, अच्छे यंत्र, अच्छे बीज इत्यादि—तो एक बार पूँजी लगा देने से बहुत दिनों तक काम देते रहते हैं और किसान को उनके लिए लगातार चिन्ता नहीं करनी पड़ती। परन्तु खेत की उर्वरा शक्ति बनाये रखने का उसे लगातार ध्यान रखना पड़ता है। यह समस्या इसलिए और भी कठिन हो जाती है कि केवल रासायनिक खादों के प्रयोग से अधिक दिनों तक भूमि की उर्वरा शक्ति बनाये रखना सम्भव नहीं। भूमि में वानस्पतिक खादों का मिलाना आवश्यक है, क्योंकि इन्हीं से ह्यूमस बनता है और ह्यूमस के अभाव में भूमि से अच्छी पैदावार नहीं मिल सकती। वानस्पतिक खादें बड़ी मात्रा में आसानी से खरीदी नहीं जा सकतीं और यदि खरीदी भी जा सकती हों, तो उनकी ढुलाई इत्यादि का व्यय इतना अधिक पड़ता है कि उनका प्रयोग अलाभकर हो जाता है। अतः यदि भूमि से अच्छी पैदावार लेनी है तो किसान के लिए आवश्यक है कि वह वानस्पतिक खादें स्वयं प्रचुर मात्रा में तैयार करे।

खाद तैयार करने का यह कार्य तब बहुत सरल हो जाता है, जब किसान मिश्रित खेती करे। मिश्रित खेती से यह तात्पर्य नहीं कि कई प्रकार की फसलें बोयी जायँ, बल्कि उसका अर्थ है कि अन्न तथा नकदी फसलों के साथ-साथ गाय-भैंसों का पालन और उनके घी, दूध और मक्खन को बेचकर आमदनी की वृद्धि। ऐसा करने से किसान के पास जानवरों का मल-मूत्र इतना एकत्रित होता रहेगा कि यदि वह उसे सुरक्षित रखता रहे, तो उसे खाद की कमी नहीं पड़ सकती।

भूमि की उर्वरा शक्ति बनाये रखने के लिए पशुपालन एक अन्य प्रकार से भी सहायक है। जानवरों को खिलाने के लिए हरा चारा उपजाने की आवश्यकता पड़ती है। ज्यादातर हरे चारे की फसलें दलहन किस्म की होती हैं,

उनके बोने से खेत की उर्वरा शक्ति बढ़ती है। वर्षा ऋतु में लोबिया, गुआर इत्यादि घने चारे की फसल बोकर भूमि को कटाव से भी बचाया जा सकता है। ऐसे खेत, जो एक फसल कटने के बाद खाली पड़े रहते है (उदाहरण के लिए अगहनी धान के खेत लिये जा सकते है), उनमें बरसीम बोकर न केवल जानवरों के लिए उम्दा हरा चारा तैयार किया जा सकता है, बल्कि खेत की उपज-शक्ति भी बढ़ायी जा सकती है। जानवरों के अभाव में बरसीम की कोई लाभप्रद खपत नही होती, इसलिए इसे बहुत थोड़े से किसान ही बोते है। परन्तु यदि दूध देनेवाले जानवर पालने का रिवाज हो जाय, तो उन खेतों की, जो अभी खाली पड़े रहते है, आमदनी तो बढ़ेगी ही, इसके अलावा उनकी उर्वरा शक्ति भी बढ़ जायगी और धान की पैदावार भी पहले की तुलना में अधिक होने लगेगी।

पश्चिमी यूरोप तथा अमेरिका में बहुत कम किसान ऐसे होंगे, जो केवल अनाज की ही खेती करते हैं। वे सब मिश्रित खेती करते हैं और यही उनके अधिक उत्पादन का गुर है। जानवरों के लिए चारा इत्यादि उपजाने में कुछ खेत अवश्य फँसे रहते हैं, परन्तु जो खेत बचे रहते हैं, उनकी उर्वरा शक्ति इतनी अधिक होती है कि छोटे क्षेत्रफल से भी अधिक पैदावार ली जा सकती है। अपने देश की गिरी हुई खेती का एक बहुत बड़ा कारण यह भी है कि हमारे किसान केवल अन्न और नकदी फसलें पैदा करने की कोशिश करते है। ऐसा करने से जानवरों को अच्छा चारा नहीं मिलता। परिणाम यह होता है कि भूमि में वानस्पतिक खादों की कमी पड़ जाती है और पैदावार कम होती है। पैदावार कम होने पर जानवरों को चारा भी कम मिलता है, उनकी दशा खराब हो जाती है। जानवर कमजोर होने पर जुताई ठीक से नहीं हो पाती और खेती बिगड़ जाती है। इस प्रकार गिरावट का यह चक्र चलता ही रहता है, जैसा कि चित्र संख्या १७ में दिखाया गया है।

इस चक्र को तोड़ने का एक मात्र उपाय यही है कि किसान अच्छी नस्ल की गाय-भैंसें पालकर मिश्रित खेती करें। देश के पंजाब, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, गुजरात, कोंकण तथा केरल--जैसे क्षेत्रों में, जहाँ अच्छी खेती होती है, वहाँ के किसान मिश्रित खेती करते हैं।

मिश्रित खेती करने से न केवल खेती की उर्वरा शक्ति बनाये रखने में ही सहायता मिलती है, बल्कि उससे निम्न-लिखित लाभ भी होते हैं।

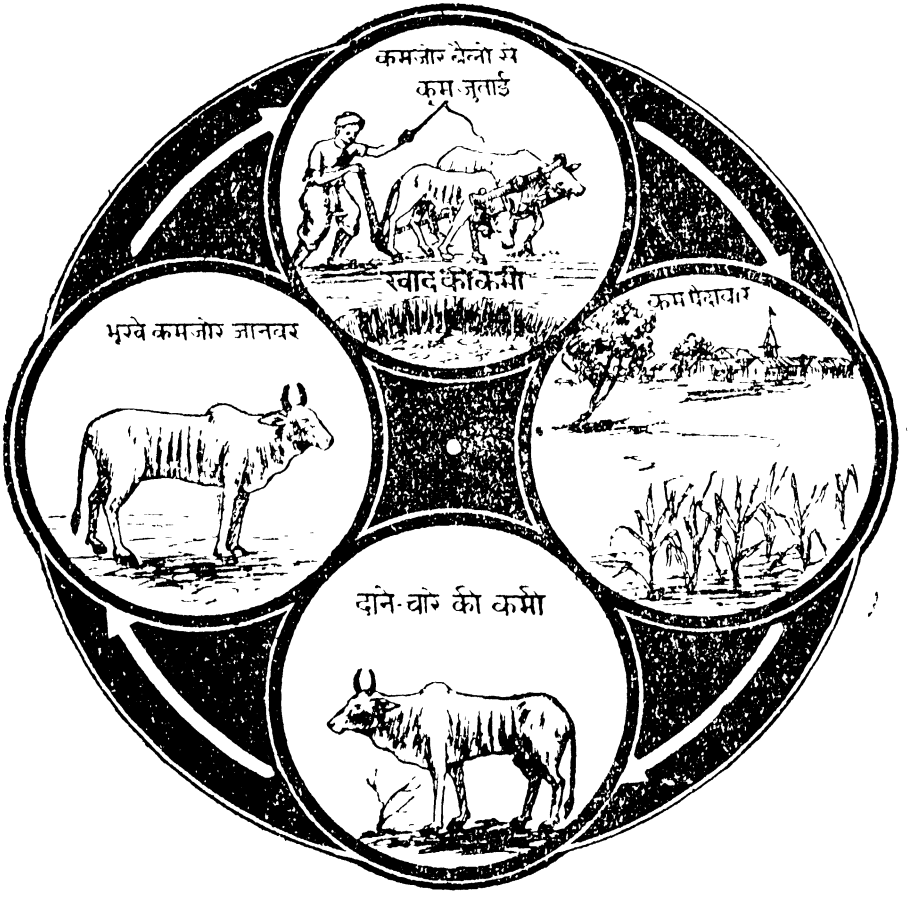

चित्र १७—भारतीय कृषि की गिरावट का चक्र।

(१) किसान और उसके परिवार के लिए एक लाभदायक कार्य मिल जाता है। अपने देश के अधिकांश किसानों की जोतें बहुत छोटी हैं। इन छोटी जोतों पर किसानों और उनके परिवार के लिए पूरा काम नहीं मिल पाता और साल के कई महीनों तक वे बेकार रहते हैं। यदि गाय-भैंसें पालकर वे दूध का व्यवसाय करें तो साल भर तक लाभकारी काम में लगे रह सकते हैं।

(२) किसानों और उनके परिवार को दूध-दही और मट्ठा—जैसी

पौष्टिक और स्वास्थ्यप्रद वस्तुएँ खाने को मिलेंगी, जिनकी उन्हें अत्यन्त आवश्यकता भी है।

(३) गोपालन से अति वृष्टि और अनावृष्टि दोनों के ही वर्षों में आमदनी एक-सी रहती है। उचित प्रबन्ध होने पर कई वर्षों तक औसत आमदनी में कोई अन्तर नहीं पड़ता। सयुक्त राज्य अमेरिका मे सभी प्रकार के फार्मों के हिसाब-किताब की जाँच से यह मालूम हुआ है कि मुर्गीपालन और पशुपालन करनेवाले किसानों की वार्षिक आय में सबसे कम अन्तर पड़ता है। इसका कारण यह है कि दैविक विपत्तियों का प्रकोप जानवरों पर सीधे न पड़कर, पहले फसलों पर पड़ता है और किसान को इस बात का अवसर मिल जाता है कि वह परिस्थिति के अनुसार अपने प्रबंध मे परिवर्तन करके अपने आपको नुकसान से बचा ले। यदि भारतीय किसान भी अन्न की खेती के साथ-साथ दूध का भी व्यवसाय करें, तो दैवी विपत्तियों के कारण, उनकी दशा आजकल की तरह शोचनीय न हो जाया करे। घाघ ने भी कहा है--

"सावन मास बहै पुरवाई, बरधा बेंचि लिहा धेनु गाई।"

अर्थात् सावन मास में यदि पुरवा हवा चले, तो समझ लेना चाहिए कि वर्षा की कमी से अकाल पड़नेवाला है और इस आनेवाली विपत्ति का मुकाबला करने के लिए किसान को बैल बेचकर दुधार गाय मोल ले लेनी चाहिए।

यदि किसान मिश्रित खेती करें तो अकाल पड़ने पर वे विपत्ति के दिन दूध-घी बेचकर काट सकते हैं। गाय-भैंसों को किसानों के लिए अकाल का बीमा समझना चाहिए।

(४) अच्छी गायें पालने से किसान को अपने ही घर के पैदा हुए अच्छे-अच्छे बैल मिलते रहते हैं। जिस किसान के पास अच्छे बैल होते है, उसकी खेती भी अच्छी होती है। परन्तु अधिकांश किसानों के पास इतना धन नहीं होता कि वे बैलों की अच्छी जोड़ी खरीद सकें। उनके लिए अच्छे बैल रखने का एक यही उपाय है कि वे अपने घर पैदा हुए बछड़ों को पाल-पोषकर बड़ा करें। पूर्वी उत्तर प्रदेश और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के किसानों की आर्थिक दशा के अन्तर का एक बड़ा कारण यह भी है कि जहाँ पूर्वी उत्तर प्रदेश के किसानों

को छठे सातवें वर्ष काफी पूंजी लगाकर बैल खरीदने पड़ते हैं, वहाँ पश्चिमी उत्तर प्रदेश के किसान अपनी ही गायों से अच्छे बैल पाते रहते हैं।

साधारण खेती से मिश्रित खेती की तुलना करने के लिए भारतीय कृषि-अनुसंधान परिषद की ओर से एक जाँच की गयी थी, जिसमें उत्तर प्रदेश राज्य के ६ जिलों—मेरठ, बरेली, लखनऊ, बाराबंकी, गोरखपुर और देवरिया के कुछ किसान छाँटे गये। इनमें से प्रत्येक के पास ८ से १० एकड़ भूमि थी। उनमें से कुछ मिश्रित खेती करते थे और कुछ नहीं। उनकी आमदनी और खर्च का हिसाब ठीक से रखा गया और प्रति एकड़ शुद्ध लाभ जोड़ा गया। जो नतीजा निकला वह निम्नलिखित तालिका में दिया गया है।

औसत लाभ प्रति एकड़

जिलों के नाम	खेती का ढंग	पहला वर्ष	दूसरा वर्ष	तीसरा वर्ष	चौथा वर्ष	पाँचवाँ वर्ष
		रु० आ०	रु०आ०	रु० आ०	रु०आ०	रु०आ०
मेरठ	मिश्रित खेती	६६-८	२२९-२	१७९-८	२११-४	३१६-०
	साधारण खेती	४२-१	१३६-२	८६-०	७४-४	११७-०
बरेली	मिश्रित खेती	४-१०	५४-१४	१२८-०	६७-३	१५०-०
	साधारण खेती	५-१४	३९-८	२-८	१३-३	६०-०
लखनऊ	मिश्रित खेती	३४-१०	५९-९	१५९-	४३-६	७९-३
	साधारण खेती	२५-९	५४-६	१३८-४	३४-२	३४-०
बाराबंकी	मिश्रित खेती	११-१२	१९-११	६३-०	१२२-२	७-०
	साधारण खेती	८-१४	२९-३	४३-०	७२-०	७०-०
देवरिया	मिश्रित खेती	१८-४	७९-०	१५७-७	१६४-४	२३२-०
	साधारण खेती	१५-७	५८-०	६७-२	२९-१०	५७-०
गोरखपुर	मिश्रित खेती	८-०	१११-९	१६०-१५	१२५-३	१६३-०
	साधारण खेती	६-११	५४-३	६६-७	४८-१२	६०-०

कुल का औसत लाभ प्रति एकड़

खेती का ढंग	पहला वर्ष	दूसरा वर्ष	तीसरा वर्ष	चौथा वर्ष	पाँचवाँ वर्ष	औसत
	रु० आ०	रु० आ०	रु० आ०	रु० आ०	रु० आ०	
मिश्रित खेती	२५-१५	९५- ५	१४१-२	१२२-६	१६७-६	११०- ७
साधारण खेती	१७- ७	६१-१३	६७-३	४६-७	६५-५	५१-१०
साधारण खेती की तुलना में अधिक लाभ— (प्रतिशत)	३७.४	५२.०	११०.०	१६७.३	१५९.३	१०५.४

इन आँकड़ों को देखने से मालूम होगा कि लगभग प्रत्येक दशा में साधारण खेती की तुलना में मिश्रित खेती से अधिक लाभ हुआ। पाँचों वर्ष का तथा सभी जिलों का औसत अंतर १०५.४ प्रतिशत आता है, यानी यह कहा जा सकता है कि मिश्रित खेती द्वारा किसान की वार्षिक आय दूने से भी अधिक बढ़ायी जा सकती है। इसमें संदेह नहीं कि मिश्रित खेती करने से लाभ ही लाभ है, परन्तु इसको सफल बनाने और इससे पूरा-पूरा लाभ उठाने के लिए किसान को निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए।

(१) गोपालन में तभी लाभ हो सकता है, जब अच्छी नस्ल की गाय-भैंसें पाली जायँ। मामूली जानवरों को, जो कम दूध देते हैं, पालकर लाभ की आशा करना व्यर्थ है। जितना उनके खिलाने-पिलाने में व्यय होगा, उतना भी उनसे वापस मिलना कठिन हो जायगा।

(२) जानवरों का मल-मूत्र बड़ी सावधानी से सुरक्षित रखना चाहिए, क्योंकि उसके व्यर्थ नष्ट हो जाने से जमीन को उपयोगी खाद न मिल सकेगी तथा उससे जो पैदावार होगी वह भी कम होगी।

(२) जानवर उतने ही पाले जायँ, जितनों के लिए किसान स्वयं चारा पैदा कर सके। बाहर से चारा खरीदकर गो-पालन को सफल बनाना कठिन है।

अध्याय ८

कृषि में समय का महत्त्व

खेत की जुताई, सिचाई, अच्छे बीज और खाद का महत्त्व प्रायः सभी किसान समझते हैं, परन्तु समय का महत्त्व उनमें से बहुत कम लोग ही समझ पाते हैं। किसान द्वारा कृषि संबंधी क्रियाएँ समयानुसार की जाने पर ही खेती की पैदावार बहुत हद तक निर्भर रहती है। कृषि के सभी साधन उपलब्ध होते हुए भी यदि फसलों के बोआई-सिंचाई इत्यादि कार्य समय से न किये गये, तो पैदावार अच्छी नहीं होती। अधिकांश किसान यह सोचते हैं कि यदि खाद-पानी का अच्छा प्रबन्ध हो, खेत अच्छा तैयार किया गया हो और अच्छा बीज बोया गया हो, तो आठ-दस दिन पिछड़कर बोने से कोई विशेष हानि नहीं होती। परन्तु उनका ऐसा सोचना ठीक नही है। सब कुछ होते हुए भी यदि बोआई पिछड़कर की जाय, तो पैदावार कुछ परिस्थितियों में आधे से भी कम हो सकती है।

अपने देश की मुख्य फसलें धान, गेहूँ और गन्ने की उपज है, इन फसलों की खेती में कौन सी क्रिया किस समय करनी चाहिए और समय पर उसे न करने से क्या दुष्परिणाम हो सकता है, इस पर इस अध्याय में कुछ प्रकाश डाला जायगा।

धान—धान की अच्छी पैदावार लेने के लिए यह आवश्यक है कि जहाँ तक सम्भव हो, खेत गर्मियों में जोत दिये जायँ। सब कुछ समान होने पर भी केवल गर्मी में जुताई कर देने से पैदावार सवायी बढ़ जाती है। जिस खेत में धान उपजाना हो उसको, यदि वह खाली हो, तो माघ के महीने में, नहीं तो रबी की फसल कटते ही जोत देना चाहिए। जुताई यदि पिछड़ गयी और वर्षा शुरू हो गयी, तो फिर चाहे जितनी जुताई की जाय, खेत से घास नहीं निकाली जा सकती।

कुआरी धान का सबसे बड़ा शत्रु गंधी कीड़ा है। इसके लग जाने पर कभी-कभी फसलें बिलकुल नष्ट हो जाती है। यह कीड़ा, जब धान के दानों में दूध पड़ने लगता है, तब उन्हें चूसकर पइया बना देता है। १० सितम्बर से १५ अक्टूबर तक यह कीड़ा सबसे अधिक सक्रिय रहता है। अतएव किसान का यह प्रयत्न होना चाहिए कि धान के दानों में दूध पड़ने का समय १० सितम्बर और १५ अक्टूबर के बीच में न पड़े। पकने के १० दिन पहले तक धान के दानों मे दूध रहता है। अधिकांश कुआरी धानों की, जो इस प्रदेश में बोये जाते हैं, आयु ८५ दिनों के लगभग होती है, अर्थात् बोने के ७५ दिनों बाद तक उनमें दूध रहता है। अतएव बोने के ७५ दिन बाद की तिथि १० सितम्बर और १५ अक्टूबर के बीच न पड़नी चाहिए, अर्थात् कुआरी धान को २५ जून तक या पहली वर्षा के साथ बोकर समाप्त कर देना चाहिए। इससे पिछड़-कर बोने से गंधी कीड़ा लगने का डर रहता है। यह कीड़ा इतनी शीघ्रता से हानि पहुँचाता है कि बोआई के एक सप्ताह पिछड़ जाने से पैदावार में बहुत बड़ा अन्तर कर दे सकता है।

इसी प्रकार अगहनी धान की पैदावार रोपाई की तिथि पर बहुत हद तक निर्भर है, जैसा कि निम्नलिखित तालिका से जाना जा सकता है।

रोपाई का समय	पैदावार प्रतिशत
९ जून	१३६
५ जुलाई	११०
३१ जुलाई	११७
७ अगस्त	१००
१६ अगस्त	६०

सभी परिस्थितियाँ समान होते हुए भी, यदि रोपाई जुलाई के अन्त में न करके अगस्त के अन्त में की जाय, तो पैदावार आधी हो जाती है। अतः अगहनी धान को भी वर्षा प्रारम्भ होने पर, जितने शीघ्र सम्भव हो, उतनी ही जल्दी बैठाने का प्रयत्न करना चाहिए। यदि जून-जुलाई के महीनों में खेत सूख जाय, तो धान के लिए सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती। परन्तु इसका ध्यान रखना चाहिए कि यदि कुआरी धान के खेत में अगस्त के महीने

में और अगहनी धान के खेत में अक्टूबर के महीने में पानी की कमी हो जाय, तो सिंचाई द्वारा इस कमी को दूर करना अत्यन्त आवश्यक है। फूटने के समय धान पानी की कमी सहन नहीं कर सकता। इसलिए ऐसे समय पर खेत में नमी अवश्य बनाये रखनी चाहिए।

गेहूँ—गेहूँ की फसल लेने से पहले किसान हरी खाद का प्रयोग करते हैं। परन्तु हरी खाद से लाभ उठाने के लिए यह आवश्यक है कि उसकी फसल की पलटायी ऐसे समय से हो जाय कि गेहूँ की बोआई से पहले उसे सड़ने को काफी समय मिल सके। हरी खाद के पलटने का ठीक समय अगस्त का दूसरा सप्ताह है। यदि हरी खाद की फसल देर में बोयी गयी और देर में पलटी गयी, तो वह ठीक से सड़ न सकेगी और गेहूँ की फसल को लाभ के बदले हानि पहुँचेगी। यदि किसी कारण हरी खाद की फसल देर से बोयी गयी हो, तो भी उसे अगस्त के द्वितीय सप्ताह तक जोत देना चाहिए, चाहे हरी फसल छोटी ही क्यों न रह गयी हो।

गेहूँ बोने के समय का भी पैदावार पर बहुत असर पड़ता है। गेहूँ की फसल २० अक्टूबर से ५ नवम्बर तक बो देनी चाहिए। पिछड़ जाने पर न केवल पछवाँ हवा से पकते समय गेहूँ के पतले हो जाने का ही, बल्कि गेरुई लगने का भी डर रहता है। गेरुई कुछ गर्मी शुरू होने पर १५ फरवरी के बाद जोर पकड़ती है। यदि १५ फरवरी के पहले ही गेहूँ के दाने कुछ मजबूत हो जायँ तो गेरुई का असर कम होता है। गेरुई से बचने के लिए २० अक्टूबर के बाद शीघ्र से शीघ्र गेहूँ बो देना चाहिए।

गेहूँ की पहली सिंचाई का समय भी कुछ कम महत्त्व का नहीं है। सिंचाई उस समय करनी चाहिए, जब गेहूँ के पौधे पानी की कमी से पीले पड़ने लगें। यदि सिंचाई जल्दी कर दी जाय, तो गेहूँ की जड़ें नहीं बढ़ेंगी और फसल आगे चलकर कमजोर हो जायगी। यदि सिंचाई में देर की जाय, तो गेहूँ के पौधों के मरने का डर रहता है।

गन्ना—बोने के समय का गन्ने की पैदावार पर भी बहुत बड़ा असर पड़ता है। पिछड़कर बोने से चाहे जितनी खाद दी जाय और सिंचाई-गुड़ाई की जाय, फसल अच्छी तरह नहीं बढ़ सकती। नीचे दी हुई तालिका से यह देखा

जा सकता है कि गन्ना पिछड़कर बोने से उसकी पैदावार पर कितना बुरा असर पड़ता है।

बोने के समय का गन्ने की पैदावार पर प्रभाव

बोआई की तिथि	पैदावार मनों में		
	को० २१९	को० ४२१	को० ३२१
१२ अप्रैल	१३६.६	३५०.३	४००.५
८ मार्च	५८७.५	८१३.०	८२८.१

जिस प्रकार गन्ना पिछड़कर बोने से हानि होती है, उसी प्रकार उसे पिछड़कर काटने से भी बहुत हानि होती है। पिछड़कर गन्ना काटने से होने-वाली हानि नीचे की तालिका में दिखायी गयी है।

कटाई-काल का गन्ने की पैदावार पर प्रभाव

कटाई का समय	पैदावार प्रति एकड़	प्रतिशत कमी
जनवरी मास में	६८३.८	०.०
फरवरी मास में	५९५.७	१२.५
मार्च मास मे	४८६.६	२९.३
अप्रैल मास में	४२४.१	३८.०

गन्ने की बोआई जब नालियों या कूँड़ों में करनी हो तो इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि नालियाँ नवम्बर में ही बनाकर तैयार कर ली जायँ। उन्हें देर से बनाने मे यह डर रहता है कि खेत की बढ़िया बनी हुई मिट्टी तो मेड़ों पर चली जाती है, और नालियों की मिट्टी को ठीक बनाने का अवसर नहीं मिलता। ऐसी नालियों में गन्ना बोने से फसल की पैदावार अच्छी नहीं होती।

अन्त में उत्तर प्रदेश में बोयी जानेवाली मुख्य-मुख्य फसलों के बोने के

समय की तालिका देकर इस अध्याय को समाप्त किया जाता है। किसान इसी के अनुसार फसलें बोकर पैदावार बढ़ा सकते है।

नाम फसल	बोने का समय
चना, मटर और रबी के तेलहन	७ अक्टूबर से १५ अक्टूबर, अर्थात् हथिया नक्षत्र के अन्त में, और चित्रा नक्षत्र के शुरू मे।
जौ और जई	१५ अक्टूबर से २० अक्टूबर, अर्थात् चित्रा नक्षत्र के अन्त में।
गेहूँ	२० अक्टूबर से ७ नवम्बर तक, अर्थात् चित्रा नक्षत्र के अन्त में या स्वाती नक्षत्र के आरम्भ मे।
गन्ना	पूर्वी उत्तर प्रदेश--२० जनवरी से १५ फरवरी। मध्य उत्तर प्रदेश--पूरा फरवरी का महीना। पश्चिमी उत्तर प्रदेश--१५ फरवरी से १५ मार्च।
धान	बरसात शुरू होने पर शीघ्र से शीघ्र। १० से ३० जून का बोया या बैठाया कुआरी धान अच्छा होता है। अगहनी धान को वर्षा आरम्भ होते ही शीघ्र से शीघ्र बियाड़ मे बो देना चाहिए और जुलाई के अन्त तक बैठा देना चाहिए।
मक्का, तिल, लोबिया, मूँगफली और अरहर इत्यादि	इनकी बोआई वर्षा आरम्भ होते ही कर देनी चाहिए।
माइलो, बाजरा, उरद	इनकी बोआई २० जुलाई से ३१ जुलाई तक करनी चाहिए।
कपास	सिंचाई द्वारा अप्रैल के महीने में।

अध्याय ९

फसलें

गन्ने की खेती

गन्ने की खेती ऐसी सभी जमीनों में हो सकती है, जिनमें पानी तो न रुकता हो, परन्तु जिनकी सिंचाई का पूरा प्रबन्ध हो। नदी के किनारे तथा तराई में कुछ ऐसे स्थान होते हैं, जिनमें गर्मियों में भी नमी बनी रहती है और गन्ना बिना सिचाई के पैदा किया जा सकता है।

खेत की तैयारी—जिस खेत में गन्ना बोना हो, गर्मियों में, जहाँ तक सम्भव हो उसकी दो बार जुताई कर देनी चाहिए। गर्मी में जुताई करने से खेत की घासें मर जाती हैं तथा ऐसे कीड़े-मकोड़े, जिनसे बाद में बीमारी फैलने का डर रहता है, अधिकांश रूप में नष्ट हो जाते हैं। गन्ना बोये जानेवाले खेत में वर्षा ऋतु में क्या किया जाय, यह इस पर निर्भर करेगा कि किसान के पास वानस्पतिक खादें कितनी मात्रा में हैं। यदि ऐसी खादों की उसके पास कमी नहीं है, तो यह सम्भव है कि बरसात में जिन खेतों में उसे गन्ना बोना है, उनसे वह खरीफ की एक फसल, जैसे कुआरी धान या मक्का, ले ले। गहन खेती करनेवाले किसानों का उद्देश्य यह होता है कि वे खेती से अधिक पैदावार ले। इसलिए वे बरसात में खेत खाली नहीं छोड़ सकते। ऐसे कर्मठ किसानों के लिए गन्ने के साथ अन्य फसलों के कुछ लाभदायक हेर-फेर के उदाहरण आगे के अध्याय में दिये गये हैं। परन्तु इनको प्रयोग में लाने के लिए किसान के पास वानस्पतिक खादें प्रचुर मात्रा में प्राप्त होनी चाहिए। यदि ऐसा नहीं है तो किसान को वर्षा ऋतु में खेतों में हरी खाद पैदा करनी चाहिए। प्रथम वर्षा के साथ खेत में २५ सेर ढेंचा या सवा मन सनई प्रति एकड़ के हिसाब से बोकर उसी में मिला देनी चाहिए। जब ढेंचा या सनई की फसल चार पाँच फुट ऊँची हो जाय, तब उसको मिट्टी पलटनेवाले हल से पलटकर खेत में मिला देना चाहिए।

इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि १५ अगस्त तक हरी खाद की फसल अवश्य जोत दी जाय, क्योंकि पिछड़कर जुताई करने से हरी खाद को सड़ने का मौका न मिलेगा और न सड़ने के कारण अगली फसल को लाभ के बजाय हानि होगी। यदि वर्षा पिछड़ जाने के कारण या अन्य किसी कारण से हरी खाद की फसल ऊँची न बढ़े, तो भी उसे १५ अगस्त के लगभग जोत देना चाहिए, उसके बड़े होने की प्रतीक्षा न करनी चाहिए। हरी खाद की जुताई के बाद खेत को लगभग तीन सप्ताह यों ही पड़ा रहने देना चाहिए। इसके बाद देशी हल से अथवा कल्टीवेटर से कई जुताइयाँ करके खेत की मिट्टी खूब बारीक भुरभुरी बना देनी चाहिए।

बोने का समय—गन्ना दो मौसमों में बोया जाता है। पहला तो अक्टूबर मास में और दूसरा फरवरी-मार्च में। प्रयोगों से यह सिद्ध हुआ है कि अक्टूबर में बोये हुए गन्ने की पैदावार कुछ अधिक होती है और उसका रस भी जल्द पक जाता है। परन्तु यह भी पाया गया है कि अक्टूबर मे बोये हुए गन्ने पर पिहका रोग के कीड़ों का आक्रमण अधिक होता है जो गन्ने के कल्लों में छेद करके उसे सुखा देते हैं। जिन क्षेत्रों मे पिहका रोग अधिक लगता हो उनमें अक्टूबर में गन्ना नहीं बोना चाहिए। बाद मे बोये जानेवाले गन्ने को उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग मे २० जनवरी से १५ फरवरी तक, मध्य उत्तर प्रदेश में पूरे फरवरी भर तथा पश्चिमी भाग में १५ फरवरी से १५ मार्च तक बोना चाहिए।

अक्टूबर से फरवरी मास तक खेत को खाली रखना बुद्धिमानी नहीं है। यदि खाद की कमी है, तो अक्टूबर के प्रथम सप्ताह में खेत मे बरसीम बोकर उसकी दो-तीन कटाई करके, पुनः बढ़ने पर हरी खाद की तरह उसे खेत में पलटकर भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ायी जा सकती है। बरसीम की हरी खाद के साथ फास्फेट देकर और बिना फास्फेट दिये शाहजहाँपुर गन्ना अनुसंधान केन्द्र पर प्रयोग किये गये। जो नतीजे प्राप्त हुए वे पृष्ठ संख्या १८ पर दिये गये हैं। इस प्रयोग मे बरसीम जोतने के पहले उसकी तीन कटाई की गयी थीं, जिनसे ४०० मन हरा चारा प्राप्त हुआ था। यदि इस हरे चारे को जानवरों को न खिलाकर खेत में ही सड़ने के लिए छोड़ दिया गया होता तो गन्ने की पैदावार और भी अधिक बढ़ जाती। जिस प्रकार से बरसीम बोकर और

उसको हरी खाद की तरह इस्तेमाल करके खेत की ताकत बढ़ायी जा सकती है, उसी तरह मेथी, मटर, सेन्जी या खेसारी की भी फसल बोकर और उसको हरी खाद के लिए पलटकर खेत की ताकत बढ़ायी जा सकती है।

यदि किसान के पास खाद की कमी नहीं है और उसके खेत पहले से काफी जोरदार है, तो वह गन्ना बोने के पहले आलू या लाही की फसलें ले सकता है। आलू, गन्ने की फसले कैसे ली जानी चाहिए, इसका वर्णन अध्याय ११ में किया गया है। लाही की फसल लेने के लिए किसी विशेष ढग की आवश्यकता नही है। इसकी फसल मध्य जनवरी तक तैयार हो जाती है और उसके बाद खेत की जुताई करके गन्ना बोने के लिए उसे आसानी से तैयार किया जा सकता है। लाही बोने के पहले यदि खेत में मिट्टी की सतह के तीन-चार इच नीचे सुपरफास्फेट खाद (३० पौड फास्फोरिक एसिड प्रति एकड़ के हिसाब से) दी जाय तो लाही की पैदावार अच्छी होगी। खेत की उर्वरा शक्ति बनाये रखने की दृष्टि से यह अच्छा होगा कि किसान लाही को लाही के दानों के रूप में न बेचे किंतु उसे अपने यहा पेरकर तेल बेचे और खली को पुनः खेत मे डाल दे। ऐसा करने से लाही पैदा करने मे खेत की जितनी ताकत खर्च होती है, उसमे से अधिकांश फिर खेत में वापस लौट आती है।

पूर्वी उत्तर प्रदेश के कुछ किसान चना, मटर और गेहूँ की फसले काटकर गन्ना बोते है, परन्तु यह ढंग ठीक नहीं है। इससे गन्ने की बोआई बहुत पिछड़ जाती है। पिछड़कर बोये हुए गन्ने की पैदावार बहुत कम होती है और रस भी उतना मीठा नहीं होता, जितना समय से बोये हुए गन्ने का। यदि चना और मटर की फसल लेनी ही हो, तो यह अच्छा होगा कि जिस समय चना और मटर की फसल बोयी जाय, उसी समय उसके साथ ही गन्ना भी बो दिया जाय। ऐसा करने के लिए पहले खेत में मामूली ढंग से चना या मटर बो दिया जाता है। उसके बाद खेत मे पाटा चलाकर उसको बराबर कर लिया जाता है और उस पर तीन-तीन या साढ़े तीन-तीन फुट की दूरी पर लाइनें लगा दी जाती है। इन लाइनों पर कूँड़ बनाकर उनके पीछे गन्ना बो दिया जाता है। जाड़े के दिनों में गन्ना अधिक नहीं बढ़ता, इसलिए चना और मटर की फसलें पूरी पैदा हो जाती हैं, साथ ही गन्ने को भी कोई विशेष हानि नहीं पहुँचती। परन्तु जैसा ऊपर

कहा जा चुका है, यदि किसी क्षेत्र में पिहका रोग के कीड़े अधिक लगते हों, तो वहाँ इस विधि का प्रयोग नहीं करना चाहिए, क्योंकि अक्टूबर में बोये हुए गन्ने में इस रोग का आक्रमण अधिक होता है।

गेहूँ काटने के बाद खेत में बोया गन्ना बहुत ही पिछड़ जाता है। चूँकि गेहूँ से खेत की ताकत भी नही बढ़ती, इसलिए इस ढंग का प्रयोग किसानों को कभी नहीं करना चाहिए। परन्तु यदि खेत की कमी के कारण गेहूँ और गन्ना दोनों एक ही वर्ष में एक ही खेत से लेना है, तो इसके लिए उस सुधरे हुए ढंग को व्यवहार में लाना चाहिए, जिसका वर्णन ११ वे अध्यायके मध्य मे किया गया है।

गन्ना पिछड़ कर बोने से पैदावार बहुत कम होती है। परन्तु यदि बोते समय बीज की मात्रा बढ़ा दी जाय तो पिछड़ कर बोने का दुष्परिणाम कुछ हद-तक दूर किया जा सकता है।

खाद का प्रयोग––गन्ने की अच्छी फसल लेने के लिए लगभग डेढ़ सौ पौंड नाइट्रोजन की आवश्यकता होती है। इसे खेत में पहुँचाने के लिए किसान का प्रयत्न यह होना चाहिए कि वह ५० पौंड हरी खाद के रूप में, ५० पौंड गोबर की खाद या प्रेसमड के रूप में और ५० पौड रेंड़ी की खली, अमोनियम सल्फेट या यूरिया की शक्ल में डाले। गोबर की खाद और कम्पोस्ट बोआई के डेढ़ दो महीने पहले खेत में मिला देना चाहिए और खली की खाद लगभग चार सप्ताह पहले। रासायनिक खादें गन्ना उग आने के बाद पहली सिंचाई के समय देनी चाहिए। गन्ना अपने जीवन काल के प्रथम पाँच महीनों में नाइट्रोजन का सबसे अधिक उपयोग करता है। वर्षा आरम्भ होने के बाद यदि नाइट्रोजन की खादें दी जायँगी तो गन्ने का रस देर में पकेगा, और उसका गुड़ बनाने में कठिनाई हो सकती है। यदि गन्ने को खेत में नालियाँ बनाकर बोना है, तो खादों को नालियाँ बन जाने के पश्चात् नालियों में ही डालना चाहिए।

बोआई––गन्ने को तीन ढंग से बो सकते हैं––

(१) नालियों में, (२) सीधी लाइन में बोकर बरसात में ऊपर मिट्टी चढ़ाकर तथा (३) गढ्ढों में।

(१) नालियों में बोना––नालियाँ रबी की बोआई समाप्त करने के पश्चात् तुरन्त बनानी चाहिए। नालियाँ बनाने के पहले खेत को जोतकर और

पाटा लगाकर मिट्टी को भुरभुरी बना लेना चाहिए। फिर जिस खेत में नालियाँ बनानी हों, उसके आमने-सामने की दोनों मेड़ों पर एक-एक व्यक्ति खड़ा होकर एक रस्सी के सिरों को खेत के आर-पार पकड़ता है और खिंचकर जब रस्सी सीधी हो जाती है, तब तीसरा आदमी उस रस्सी पर चलता है, जिससे खेत में रस्सी का चिह्न बन जाता है। जब एक लाइन का चिह्न बन जाता है तब फिर दूसरी लाइन २१ इंच के फ़ासले पर बनायी जाती है और इस प्रकार समूचे खेत में २१–२१ इंच की दूरी पर निशान बनाये जाते हैं। इस प्रकार निशान बन जाने के बाद दो लाइनों के बीच की मिट्टी निकालकर बगल-वाली दो लाइनों के बीच फरसे से उठाकर रख दी जाती है, ताकि बोने के लिए पौने दो फुट की नाली बन जाय और उतनी ही चौड़ी मेंड़ भी तैयार हो जाय।

इस प्रकार नालियाँ बन जाने के बाद उनकी मिट्टी को कुदाली या कस्सी से गोड़ना चाहिए। गुड़ाई कम-से-कम ९" गहरी और इतनी बार करनी चाहिए कि नालियों की मिट्टी खूब भुरभुरी और मुलायम बन जाय। यह काम नवम्बर के अंत तक अथवा दिसम्बर के प्रथम सप्ताह तक समाप्त हो जाना चाहिए। बोआई से दो मास पूर्व नालियों में खाद डालकर दो-तीन गुड़ाई कर देनी चाहिए। यदि जनवरी के महीने में वर्षा न हो और नालियों में नमी की कमी हो, तो उनमें सिचाई करके तब बोआई करनी चाहिए।

नालियों में बोने का ढंग उन किसानों को अपनाना चाहिए जो खूब खाद देकर अच्छी पैदावार लेना चाहते हैं, या जहाँ सिंचाई के पानी की कुछ कमी है, क्योंकि नालियों में अधिक समय तक नमी सुरक्षित रखी जा सकती है। परन्तु नालियों में बोने के ढंग में असुविधा यह है कि बैल से चलनेवाले कल्टीवेटर का प्रयोग नाली में बोये हुए गन्ने पर नहीं किया जा सकता, और बाद में गुड़ाई का सारा काम कस्सी से ही करना पड़ता है।

(२) **सीधी लाइन में बोना और मिट्टी चढ़ाना**––गन्ना बोने की यह रीति सबसे सरल और सस्ती है। ज़मीन की तैयारी अक्टूबर मास तक वैसे ही की जाती है, जैसा नाली बनानेवाले ढंग में किया जाता है। जाड़े के दिनों में भी खेत को कई बार जोतकर तथा पाटा लगाकर मिट्टी को गहराई तक भुर-

भुरी और मुलायम बनाने का प्रयत्न करते रहना चाहिए। बोआई के पहले यदि नमी न हो तो पलेवा करके खेत में नमी पैदा कर लेनी चाहिए। पलेवा के बाद दो बार और जुताई करके खेत में पाटा लगा देना चाहिए और फिर खेत में तीन-तीन या साढ़े तीन-तीन फुट की दूरी पर रस्सी से चिह्न बना लेने चाहिए (जैसा कि पहले बताया जा चुका है)। पूरे खेत में लाइनें बन जाने के बाद उन्हें देशी हल से या लोहे के ऐसे हल से, जो दोनों तरफ मिट्टी फेंकता हो, कूँड़ बनाने चाहिए। यदि एक ही बार में काफी गहरे कूँड़ न बनें, तो उनमें दुबारा हल चलाकर कूँड़ों को काफी गहरा कर लेना चाहिए, क्योंकि गन्ने का बीज ऊपर रहने से उसके सूखने का डर रहता है। इस तरह कूंड़ तैयार हो जाने पर उनमें गन्ने का बीज बो दिया जाता है और फिर बाद में हल चलाकर कूँड़ों के दोनों तरफ से मिट्टी गिराकर उनको बंद कर दिया जाता है। बाद में पाटा चलाकर खेत बराबर कर दिया जाता है।

(३) **गड्ढों में बोआई**——यह गन्ना बोने की एक नयी विधि है। इसके अनुसार प्रचलित ढंग से बोयी हुई गन्ने की फसल की तुलना में पैदावार अधिक होती है। जिन किसानों के पास भूमि कम है, वे अपने परिश्रम के बल पर इस ढंग का प्रयोग करके अपनी थोड़ी-सी ही भूमि से अधिक पैदावार ले सकते हैं। इस ढंग के प्रयोग के लिए भी अक्टूबर मास तक खेत की तैयारी उसी तरह पर करनी चाहिए, जैसी प्रचलित विधि में की जाती है। नवम्बर के महीने में पूरे खेत की लम्बाई और चौड़ाई दोनों की ही दिशाओं में छः-छः फुट की दूरी पर लाइनें बना लेनी चाहिए। लाइनें बन जाने के बाद पूरा खेत छः-छः फुट के वर्गाकार खानों में बँट जायगा। जहाँ रेखाएँ एक-दूसरी को काटती हैं उस स्थान को केन्द्रबिन्दु मानकर दो-दो फुट के अर्धव्यास में घेरे बना लेने चाहिए (जैसा चित्र संख्या १८ में दिखाया गया है)।

घेरे बन जाने के बाद प्रत्येक घेरे में से चारों ओर से ९ इंच गहरी मिट्टी निकालकर घेरे के चारों ओर लगा देनी चाहिए। इसके बाद घेरे के अन्दर की मिट्टी की ९ इंच गहरी गुड़ाई करके मिट्टी भुरभुरी बना लेनी चाहिए। बोआई से पहले गड्ढों में यदि नमी की कमी हो तो पलेवा करके नमी पैदा कर लेनी चाहिए और फिर प्रत्येक गड्ढे में ५ सेर कम्पोस्ट खाद, ३ छटाँक अमोनियम

सल्फेट और १ छटाँक सुपरफास्फेट डालकर उन्हें खूब अच्छी तरह से मिला देना चाहिए। प्रत्येक गड्ढे में गन्ने के छः टुकड़े बोये जाते हैं, जैसा कि चित्र संख्या

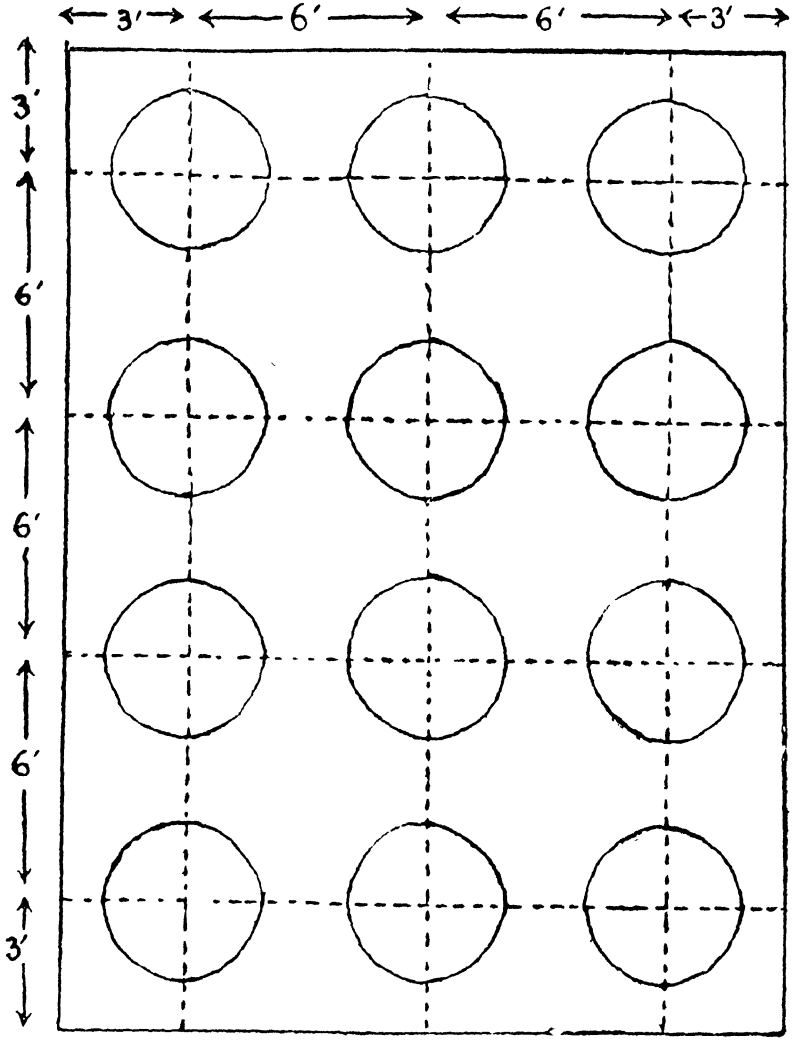

चित्र १८—खेत में गड्ढे बनाने की विधि।

१९ में दिखाया गया है। इस प्रकार गन्ने का बीज गड्ढे में रख देने के बाद गड्ढे के चारों ओर पड़ी हुई मिट्टी में से तीन इंच मोटी मिट्टी की तह ऊपर से डालकर दबा देना चाहिए। गन्ना उग आने के बाद प्रत्येक गुड़ाई के समय

बगल की मिट्टी थोड़ी-थोड़ी गड्ढों में गिरा दी जाती है, यहाँ तक कि बरसात शुरू होने तक खेत पुनः समतल हो जाता है। जुलाई के महीने में जब पौधे

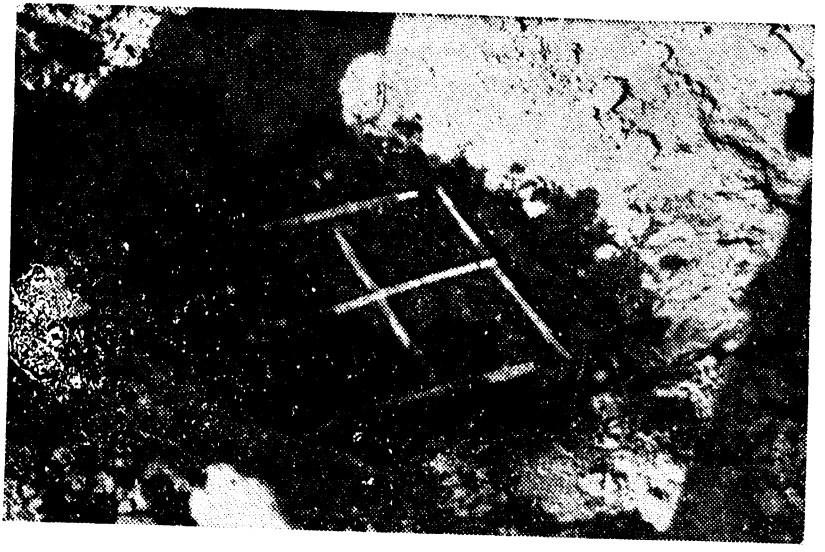

चित्र १९—**प्रत्येक गड्ढे में गन्ने के छः टुकड़े बोना।**

काफ़ी बड़े हो जायँ, उस समय गड्ढों के चारों ओर से मिट्टी लेकर पौधों की जड़ों पर लगभग ९" मोटी तह चढ़ा देनी चाहिए। मिट्टी चढ़ाने के पूर्व १ छटाँक प्रति गड्ढे के हिसाब से पुनः अमोनियम सल्फेट खाद देनी चाहिए।

इस तरह खेती करने से खाद का उसी स्थान पर प्रयोग होता है, जहाँ उसकी सबसे अधिक आवश्यकता होती है। सिंचाई के पानी में भी कुछ बचत होती है। एक गड्ढे से दूसरे गड्ढे की दूरी काफी होने के कारण बीच में धूप और हवा का आसानी से प्रवेश होता रहता है, जिसके कारण कीड़े-मकोड़े तथा अन्य बीमारियों के लगने की सम्भावना कम रहती है। यह भी देखा गया है कि इस प्रकार बोये हुए गन्ने की फसल हवा और पानी के झकोरों से आसानी से नहीं गिरती। गन्ने की खेती में मिट्टी चढ़ाने का काम सबसे कठिन होता है। परन्तु इस ढंग से गन्ना बोने पर यह आसानी से हो सकता है क्योंकि गड्ढे के चारों तरफ घूम-घूमकर मिट्टी चढ़ाने के लिए काफी स्थान मिलता है।

इस विधि से गन्ना उगाने का सबसे बड़ा लाभ पेड़ी रखने में है। फसल कटने के बाद गन्ने के हर चार गड्ढों के बीच में एक नया गड्ढा बनाकर उसमें नये सिरे से गन्ना बो दिया जाता है, जैसा कि चित्र संख्या २० में दिखाया

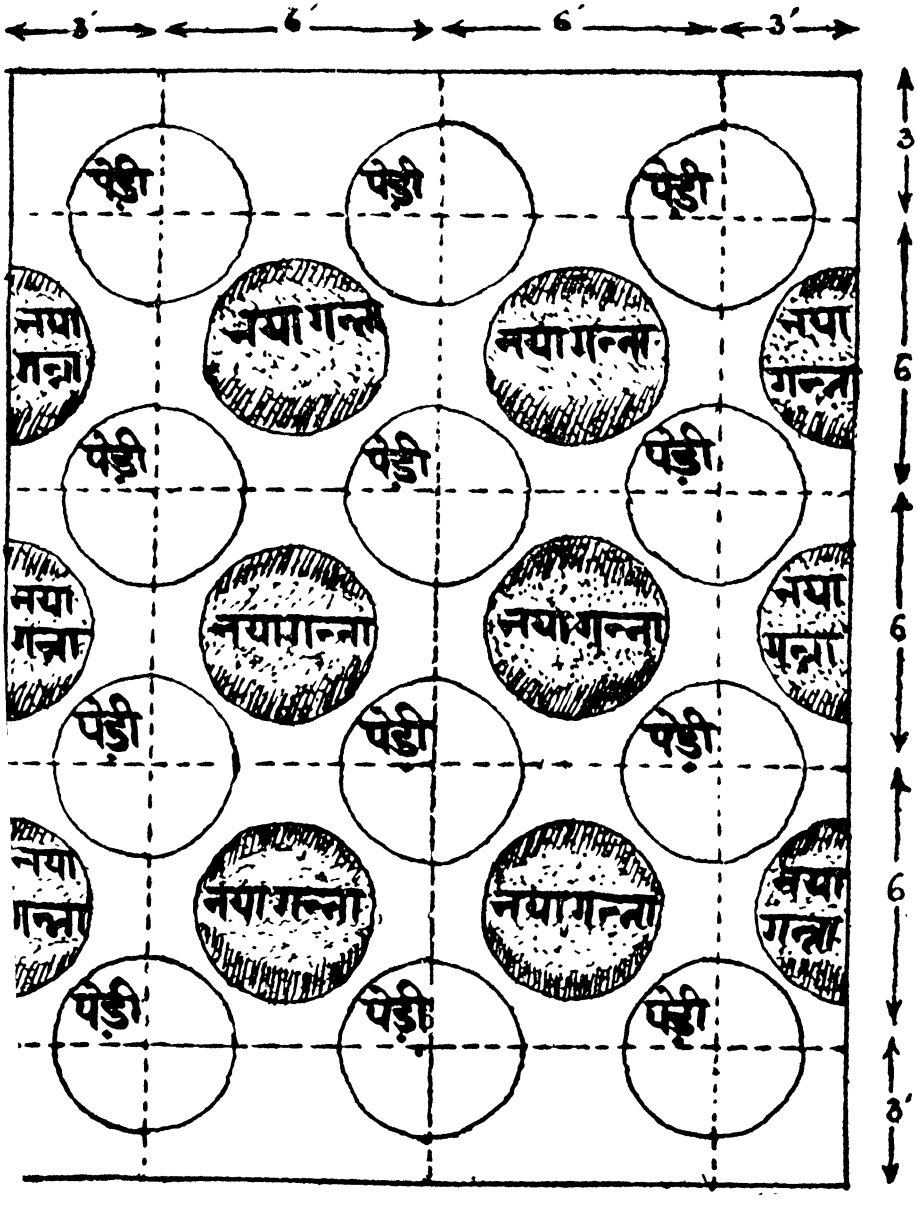

चित्र २०—प्रति चार गड्ढों के बीच एक नया गड्ढा।

गया है। चूँकि दूसरे वर्ष गड्ढों की संख्या बढ़ जाती है, इसलिए पैदावार भी पहले वर्ष की तुलना में दूसरे वर्ष अधिक मिलती है।

लेखक ने इस ढंग का प्रयोग अपने फार्म पर पिछले वर्ष किया। अक्टूबर मास में अत्यधिक वर्षा और तेज हवा के कारण फार्म पर बोया हुआ गन्ना सभी खेतों में गिर गया, केवल इस नये ढंग से बोया हुआ गन्ना नहीं गिरा। पैदावार भी बहुत अच्छी हुई। प्रति गड्ढा औसतन १ मन ५ सेर गन्ना हुआ, जो हिसाब लगाने से एक एकड़ में १३५० मन होता है। किसानों को यह ढंग अपनाकर अपनी गन्ने की पैदावार बढ़ानी चाहिए।

बीज का चुनाव

गन्ना अनुसंधान केन्द्र पर निरंतर प्रयत्न किया जाता है कि अच्छे-से-अच्छे गन्ने की किस्में निकाली जायँ। अच्छे किसानों को चाहिए कि वे कृषि तथा ईख विकास विभाग के कर्मचारियों से सम्पर्क बनाये रहें और इस बात का पता लगाया करें कि उनके क्षेत्र के लिए कौन-से अच्छे गन्ने की किस्में ईजाद हुई हैं। उन्हें थोड़ी-थोड़ी मात्रा में इन किस्मों को मँगाकर अपने खेतों में इनका प्रयोग करके देखना चाहिए कि कौन-सी किस्में उनकी भूमि और जलवायु में सफल होती है। उनमें से जो सबसे अच्छी साबित हो, उसको अगले साल अपने पूरे खेत में बोना चाहिए। उक्त विभाग द्वारा इस समय समर्थित किस्में परिशिष्ट १ में दी हुई हैं।

गन्ने का जो बीज बोने के लिए प्रयोग में लाया जानेवाला हो, उसे स्वस्थ रखने पर भी विशेष ध्यान देना चाहिए। बहुत-सी गन्ने की बीमारियाँ ऐसी हैं जो बीज से ही फैलती हैं। यदि रोगी बीज बोया जायगा तो फसल भी रोग-ग्रस्त होकर नष्ट हो जायगी। गन्ने की फसल की बहुत-सी बीमारियों का पता उस समय तक नहीं चलता जब तक गन्ना काटा न जाय। मुख्यतः इसी लिए गन्ने को डेढ़-डेढ़ बालिस्त के टुकड़ों में काटकर बोते हैं। इन टुकड़ों के दोनों सिरों को ध्यानपूर्वक देखते रहने से यह मालूम हो जाता है कि बीज स्वस्थ है अथवा रोगी। एक प्रकार की सूँड़ी होती है जो अगौरों में सूराख कर देती है। इस कीड़े के लगने से ऊपर का कल्ला सूख जाता है और उसके स्थान पर नीचे से कई

कल्ले निकल आते हैं, जिनको 'कनफरी' कहते हैं। बोआई के समय ऐसे सिरों के टुकड़ों को, जिनमें ये कल्ले निकले हों, ध्यानपूर्वक अलग करके नष्ट कर देना चाहिए। यदि इन्हें बो दिया जायगा तो अगली फसल में भी ये कीड़े क्षति पहुँचायेंगे।

इसी प्रकार तने में सूराख करनेवाली सूँड़ी भी होती है। यह सूँड़ी जड़

चित्र २१—लाल सिरेवाले गन्ने के टुकड़ों को अलग करना।

के पास सूराख करके तने में बैठ जाती है और अंदर ही अंदर उसको चबाती रहती है। अतः यदि गन्ने का बीज काटते समय कोई ऐसा टुकड़ा मिले, जिसके किसी सिरे पर छेद हो, तो ऐसे टुकड़े को बीज के प्रयोग में न लाकर नष्ट कर देना चाहिए। तीसरी बीमारी जो बीज से फैलती है, काना बीमारी या "रेड रॉट" है और यह गन्ने की सबसे भयंकर बीमारी है।

यह बीमारी हलकी होती है तो बाहर से इसका पता नहीं चलता, परन्तु गन्ने के अंदर लाल धारियाँ होती हैं और इन लाल धारियों के बीच में सफेद धब्बे होते है। जिस खेत का गन्ना बीज के प्रयोग में लाना है, उसमें से कुछ गन्नों को बीच में से फाड़कर यह देख लेना चाहिए कि उनमें रेड रॉट-वाली लाल धारियाँ और सफेद धब्बे तो नहीं हैं। यदि किसी खेत में यह बीमारी थोड़ी भी लगी हो तो उस खेत का बीज कदापि प्रयोग में नहीं लाना चाहिए और न उसकी पेड़ी ही रखनी चाहिए। जिस खेत में रेड रॉट लग जाता है उसकी मिट्टी भी रेड रॉट पैदा करनेवाले फंगस से अशुद्ध हो जाती है, अतः ऐसे खेत मे दो-तीन वर्ष तक गन्ने की खेती नही करनी चाहिए। गन्ने के बीच के टुकड़े काटते समय यदि सिरे लाल हों तो ऐसे टुकड़ों को भी बीज के लिए प्रयोग मे न लाना चाहिए, क्योंकि सम्भव है कि यह लाली रेड रॉट के कारण हो (चित्र २१)।

प्रयोगों से यह सिद्ध हुआ है कि बीज के लिए गन्ने के अगौरे का भाग ज्यादा अच्छा होता है। यह अधिक उगता है और इसे बोने से पैदावार भी प्रति एकड़ अधिक होती है। छोटे किसान जो अधिक गन्ना नहीं बोते, यदि गन्ने का अगला भाग बीज के लिए सुरक्षित करते रहें और शेष को गुड़ इत्यादि बनाने के काम में लायें, तो उन्हें दोहरा लाभ होगा। एक तो गन्ना अच्छा उगेगा—पैदावार अधिक होगी और दूसरे बीज भी लगभग मुफ्त में मिल जायगा। क्योंकि अगोरेवाले भाग में मिठास बहुत कम होती है, इसके निकल जाने से गुड़ की मात्रा में कोई विशेष कमी नहीं होती।

प्रति एकड़ गन्ने के बीज की मात्रा उसकी मोटाई, लाइन से लाइन की दूरी तथा बोने के ढंग पर निर्भर होती है। सामान्य ढंग से पैड़े से पैंडा मिलाकर तीन-तीन फुट की दूरीवाली पाँतों में बोने से पतला गन्ना ४० मन और मोटा गन्ना लगभग ६० मन लगता है। परन्तु जिन क्षेत्रों में दीमक लगने का डर रहता

है वहाँ बीज अँखुए से अँखुआ मिलाकर बोना चाहिए। ऐसे ढंग से बोने पर बीज कुछ अधिक लगेगा। परन्तु दीमक से बचने के लिए सबसे उत्तम उपाय यह है कि गैमेक्सीन या क्लोरोडेन का प्रयोग किया जाय। ५% बी० एच० सी० पाउडर १० सेर प्रति एकड़ के हिसाब से गन्ना बोते समय नालियों या कूँड़ में डालने पर दीमक के आक्रमण से बहुत हद तक छुटकारा मिल जाता है। इसी प्रकार ५% क्लोरोडेन का साढ़े सात सेर प्रति एकड़ के हिसाब से प्रयोग करके भी दीमक से छुटकारा पाया जा सकता है।

गन्ने की गुड़ाई

गन्ने की खेती में गुड़ाई का बड़ा महत्त्व है। पौधों की जड़ों को खाद और पानी के अलावा नरम भूमि और उचित मात्रा में हवा की भी आवश्यकता होती है, क्योंकि फसलों का बढ़ाव जड़ों के फैलाव पर ही अधिक निर्भर रहता है। अतः आवश्यक है कि बरसात के पहले गर्मी के दिनों में भूमि नरम और पोली रखी जाय, ताकि उसमें जड़ों को फैलने में आसानी हो और उन्हें हवा भी मिलती रहे। जमीन नरम न रहेगी तो गन्ने में कल्ले कम निकलेंगे और पैदावार कम होगी।

जो खादें खेत में दी जाती हैं उनसे पहले नाइट्रेट बनता है। यही नाइट्रेट पौधों की खूराक है, जो पानी में घुलकर पौधों को प्राप्त होती है। नाइट्रीकरण की क्रिया भूमि में रहनेवाले जीवाणुओं द्वारा होती है, जिन्हें आक्सिजन की आवश्यकता होती है। यदि भूमि के अंदर हवा न पहुँचे और जीवाणुओं को आक्सिजन न मिले तो नाइट्रीकरण का काम रुक जायगा। सबसे अधिक नाइट्रीकरण मार्च से लेकर जून महीने तक होता है। अतः इस अवधि में गुड़ाई करके भूमि में हवा पहुँचाते रहना चाहिए, नहीं तो भूमि में खादों के रहते हुए भी पौधों को उनका पूरा लाभ नहीं होगा। गुड़ाई करने से भूमि की नमी रोकने में भी सहायता मिलती है। यदि सिचाई करके गुड़ाई न की जाय तो खेत से नमी बड़ी जल्दी निकल जाती है। गुड़ाई करने से वह अधिक दिनों तक बनी रहती है। इस विधि से खेत में घासें भी नहीं बढ़ने पातीं।

जो किसान छोटे पैमाने पर गन्ने की खेती करते हैं, उनके लिए कुदाली या कस्सी से ही गुड़ाई करना ठीक है। परन्तु बड़ पैमाने पर गन्ने की खेती करनेवाले

किसानों को "मेकोर्मिक" या "वाह वाह" कल्टीवेटर और "आलोक हो" का प्रयोग करना चाहिए।

गन्ने में कितनी बार और कैसे गुड़ाई करने से अधिक-से-अधिक लाभ होता है, यह जानने के लिए शाहजहाँपुर ईख-अनुसंधान केन्द्र पर प्रयोग किये गये थे, उन प्रयोगों के नतीजे नीचे दिये जाते हैं।

गन्ने की पैदावार पर गुड़ाई का प्रभाव

(प्रति एकड़ पैदावार मनों में)

गुड़ाइयों की गिनती	छिछली गुड़ाइयाँ	गहरी गुड़ाइयाँ	बिना गुड़ाई
बिना गुडाई			६९.४६
एक गुड़ाई	७७१.२	९७७.०	
दो गुड़ाई	८५८.२	९९८.८	
तीन गुड़ाई	८९७.८	८९४.२	

इन नतीजों को देखने से मालूम होगा कि हर सिचाई के बाद दो गहरी (कम-से-कम ढाई इंच) गुड़ाइयाँ करनी चाहिए। बिना गुड़ाई की पैदावार की तुलना में दो गहरी गुड़ाइयों की पैदावार ४२% अधिक हुई। छिछली तीन गुड़ाइयों से भी उतना लाभ नहीं होता, जितना एक गहरी गुड़ाई से। गहरी तीन गुड़ाइयाँ करना हानिकर है, क्योंकि इससे खेत की नमी उड़ जाती है।

गन्ने की सिंचाई

सिंचाई के विषय में कोई एक नियम निश्चित करना कठिन है, क्योंकि भूमि और जलवायु के अनुसार भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न मात्रा की सिंचाई की आवश्यकता होती है। परन्तु सामान्य ढंग से यह कहा जा सकता है कि वर्षा से पूर्व हर १५ दिन से लेकर २० दिन तक के अन्तर पर सिंचाई करते रहना लाभप्रद है। वर्षाऋतु के अंत में यदि हथिया नक्षत्र में पानी न बरसे, तो कम-से-कम एक सिंचाई अक्टूबर के अन्त में कर देना लाभप्रद होगा।

प्रयोगों से यह भी सिद्ध हुआ है कि यदि पूरे खेत पर गन्ने के पौधों को बचा-

कर दो इंच मोटी सूखी गन्ने की पत्ती, पयाल अथवा अन्य कोई सूखा खर-पतवार बिछा दिया जाय, तो सिंचाई की आवश्यकता लगभग आधी हो जाती है। इस ढंग के प्रयोग से इतना ही नही कि सिचाई की आवश्यकता कम हो जाती है, बल्कि गुड़ाई इत्यादि से भी बिलकुल छुटकारा मिल जाता है। शाहजहाँपुर गन्ना अनुसंधान केन्द्र पर इस विधि का प्रयोग करके बिना गुड़ाई के और लगभग आधी सिंचाई करते हुए गन्ने की प्रति एकड़ पैदावार करीब-करीब उतनी ही ली गयी, जितनी कि साधारण ढंग से गन्ने की खेती करने से मिलती है।

गन्ना उग आने के बाद खाद, गुड़ाई, पानी इत्यादि की आवश्यकता पूरी होते हुए भी कभी-कभी पौधों के बीच के कल्ले मरने लगते हैं। इसका कारण यह है कि फसल की प्रारम्भिक अवस्था में जब छेदक कीड़ों का आक्रमण होता है तब पौधों के अंकुर सूख जाते है। इन कीड़ों का आक्रमण कभी-कभी इतना अधिक होता है कि यदि इनकी रोक-थाम न की जाय तो पैदावार एक तिहाई या इससे भी अधिक घट जाती हे। इन कीड़ों की रोक-थाम के लिए सबसे उत्तम दवा ०.०२% एन्ड्रीन का घोल पाया गया। पन्द्रह-पन्द्रह दिन का अंतर देकर ६० गैलन प्रति एकड़ के हिसाव से इस दवा का छिड़काव करने से अंकुर-छेदक कीड़ों पर काबू पाया जा सकता है। गन्ना अनुसंधान केन्द्र अनाकापली (आंध्र राज्य) में किये गये प्रयोगों से यह सिद्ध हुआ है कि दवा छिड़के हुए खेतों में, उन खेतों की तुलना में जिनमें अंकुर छेदक कीड़े लगने के वाद कोई दवा नही छिड़की गयी, लगभग दो सौ मन प्रति एकड़ गन्ना अधिक पैदा हुआ।

एक बार दवा छिड़कने का व्यय लगभग ६–७ रु० प्रति एकड़ आता है। इस प्रकार तीन छिड़काव में लगभग २० रु० व्यय करके २०० मन अधिक गन्ना प्राप्त किया जा सकता है। लेखक के अपने फार्म पर भी इस कीड़े से बहुत अधिक हानि होती थी, परन्तु एन्ड्रीन का प्रयोग करके इस हानि को रोका जा सका है। लेखक का तो मत यह है कि जिन क्षेत्रों में छेदक कीड़े अधिक लगते हों उन क्षेत्रों में, इस बात की प्रतीक्षा किये बिना ही कि जब कीड़े लगें तब दवा छिड़की जाय, कीड़े लगने के पहले ही एक या दो छिड़काव कर देने चाहिए। ऐसा करने से कीड़े लगने की सम्भावना बहुत ही कम हो जाती है और हानि से पूरी तरह बचा जा सकता है।

गन्ने पर मिट्टी चढ़ाना

नालियों में बोये हुए गन्ने की प्रत्येक सिंचाई के बाद मेंड़ों की मिट्टी को धीरे-धीरे गुड़ाई के साथ काटकर नालियों को पाटते रहना चाहिए, यहाँ तक कि वर्षा आरंभ होने के पहले सब मेंड़ें कटकर खेत पुनः बराबर हो जाय। बरसात हो जाने के बाद जब गन्ने के पौधे ५–६ फुट ऊँचे हो जायँ तब दोनों बगल की मिट्टी खोदकर गन्ने की जड़ों पर चढ़ा देनी चाहिए। गन्ने पर मिट्टी चढ़ाने से दो लाभ होते हैं। एक तो जड़ों के पास सहारा पा लेने से गन्ना गिरता नहीं, दूसरे जड़ों के पास ताज़ी मिट्टी पहुँच जाने से और खर-पतवार मिट्टी के नीचे दब जाने के कारण गन्ने के बढ़ने में सहायता मिलती है। मिट्टी चढ़ाने का काम जुलाई के अंत तक समाप्त कर देना चाहिए।

गन्ने की बँधाई

वर्षा के अंत में किसी-किसी वर्ष तेज हवा के साथ कई दिनों तक पानी बरसता रहता है। ऐसी हवा और वर्षा में गन्ने की अच्छी फसल के गिर जाने का डर रहता है। गन्ना गिर जाने से टेढ़ा-मेढ़ा हो जाता है और उसमें शक्कर का परता भी कम हो जाता है। यदि फसल अच्छी लगी हो तो किसान को उसे बाँधकर खड़ा रखने का प्रयत्न करना चाहिए। गन्ना बँधाई का काम अगस्त के अंत तक समाप्त कर देना चाहिए।

गन्ने की पेड़ी

प्रायः गन्ने की पेड़ी की फसल अच्छी नहीं होती। इसका यह कारण नहीं कि गन्ने की पेड़ी की फसल अच्छी हो ही नहीं सकती, बल्कि यह है कि किसान पेड़ी की फसल की उतनी देख-रेख नहीं करते और उतनी खाद इत्यादि भी नहीं देते जितनी वे नये बोये गन्ने को देते हैं। यदि पेड़ी की फसल में उतनी ही खाद दी जाय जितनी कि बोये हुए गन्ने में और उतनी ही गुड़ाई और सिंचाई की जाय तो पेड़ी से भी उतनी ही पैदावार ली जा सकती है, जितनी कि बोये हुए गन्ने से। यदि कमी पड़ती भी है तो उतने से अधिक नहीं, जितना गन्ने की बोआई में बीज लग जाता है। पेड़ी में इस बीज की बचत हो जाती है। इसलिए पैदावार बराबर माननी चाहिए। पेड़ी रखने में लाभ यह है कि खेत की तैयारी का

खर्च बच जाता है और दूसरे, पेड़ी का गन्ना पेराई के लिए जल्द तैयार हो जाता है। पेड़ी के गन्ने का गुड़ शीघ्र बनाकर किसान उसे अच्छे भाव पर बेचकर लाभ उठा सकते हैं।

गन्ने की अच्छी पेड़ी लेने के लिए उसमें कम-से-कम १२० पौंड नाइट्रोजन प्रति एकड़ के हिसाब से पहुँचाना चाहिए। इस को पूरा करने के लिए १० गाड़ी सड़ी हुई गोबर की बढ़िया खाद या कम्पोस्ट की खाद, दो मन अमोनियम सल्फेट और ६ मन रेंड़ी या मूँगफली की खली प्रति एकड़ डालना चाहिए। ये खादें अप्रैल या मई के महीने में देकर तुरन्त सिंचाई कर देनी चाहिए। अच्छी पेड़ी लेने के लिए यह भी आवश्यक है कि पहली फसल का गन्ना अच्छा और घना रहे और फसल काटते समय इस बात का ध्यान रखा जाय कि गन्ना ज़मीन से थोड़ा नीचे ही काटा जाय। गन्ना इस ढंग से काटा जाना चाहिए कि जिस खेत में वह काटा गया हो, उसमें चलने से गन्ने की जड़ें पैरों में न लगें। जो कल्ले पेड़ी के नीचे से निकलते हैं, वे ऊपर से निकल आनेवाले कल्लों से ज्यादा जोरदार और उपजाऊ होते हैं। जिस खेत में पेड़ी रखनी हो, उसको मार्च तक काट लेना चाहिए और उस खेत की गिरी-पड़ी पत्तियों को फूँक देना चाहिए, जिससे बीमारी पैदा करनेवाले कीड़े-मकोड़े मर जायँ। चूँकि पेड़ी के गन्ने में छेदक कीड़ों के आक्रमण का डर अधिक रहता है, इसलिए जैसे ही नये कल्ले निकलने लगें वैसे ही एन्ड्रीन का छिड़काव, जिसका वर्णन पहले किया जा चुका है, शुरू कर देना चाहिए।

धान की खेती

भारत की तीन चौथाई आबादी का मुख्य भोजन चावल है। ईसा से तीन हजार वर्ष पूर्व से ही भारत में धान की खेती होती आ रही है। देश की लगभग ३०% कृषि भूमि पर धान की खेती होती है।

धान की कई किस्में होती हैं, जो शीतोष्ण और उष्ण जलवायु तथा अधिक और कम पानी में पैदा की जा सकती हैं। परन्तु साधारणतया यह कहना ठीक होगा कि धान को उष्ण और आर्द्र जलवायु की आवश्यकता होती है। इसके लिए मटियार और नीची भूमि अच्छी समझी जाती है। परन्तु यदि पानी

रोकने का प्रबंध कर लिया जाय, तो ऊँची और हलकी भूमि पर भी धान की खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है।

वैसे तो धान की बहुत-सी किस्में हैं। परन्तु इसके पकने में लगनेवाले समय के अनुसार इसे निम्नलिखित श्रेणियों में बाँटा जा सकता है।

(१) **कुआरी धान**––यह शुरू बरसात में बोया जाता है और सितम्बर में काट लिया जाता है। इस श्रेणी में देउला, सरया, मुटमुरी, बक्की, गदरी, दुद्धी, साठी देशी धानों की और एन २२, चाइना १०, ए ६४ और टाइप १३६ समुन्नत धानों की प्रसिद्ध जातियाँ है। इनको उन क्षेत्रों मे पैदा किया जा सकता है, जहाँ सिंचाई का कोई साधन न हो।

(२) **कार्तिकी या मध्यम धान**––यह भी कुआरी धान की तरह होता है, परन्तु इसके पकने में कुछ अधिक समय लगता है। अतएव इसे नमी की अधिक आवश्यकता होती है, जो खादर या पहाड़ी क्षेत्रों में मिल सकती है। इस श्रेणी में देशी धानों में दलबादल, अंजना, रामजवाइन, लालमती, हंसराज, बासमती इत्यादि जातियाँ और समुन्नत धानों में टाइप १, २१, ४३, १३७, १३८ और चाइना ४ इत्यादि जातियाँ शामिल है। ये देर में कटते हैं, इसलिए इनके बाद रबी की फसल पिछड़ जाती है। इस श्रेणी के धानों की खेती वहीं सम्भव है जहाँ सिचाई का समुचित प्रवंध हो।

(३) **अगहनी धान या जड़हन**––यह धान प्रायः बरसात शुरू होने पर बियाड़ में वोया जाता है और ४०–५० दिनों के बाद दूसरे खेतों में बैठाया (रोप दिया) जाता है। कभी -कभी नहरी इलाकों में बरसात शुरू होने से पहले भी इसके बियाड़ बो दिये जाते हैं और बरसात शुरू होने पर पौधा खेत में लगा दिया जाता है। इस श्रेणी में देशी धानों में डिड़वा, मालदह, अंजी, जल्हौर, काला नमक इत्यादि और समुन्नत धानों में टाइप ९, १७, २२, ३६, ८८, १०० इत्यादि हैं। इनकी खेती निचली भूमियों में, जहाँ कुछ पानी ठहरता हो, की जाती है। कभी-कभी बरसात शुरू होने पर इसे खेतों में छिटकवाँ बो दिया जाता है, तब उसे 'बोवारी' धान कहते हैं। गहरे खेतों में जहाँ ३ से ५ फुट तक पानी जमा रहता है, सेंगर धान या टाइप १०० की बोआई अच्छी होती है।

(४) **जेठी धान**––यह धान अक्टूबर में बियाड़ में बोया जाता है और

इसके पौधे जनवरी में नदी और तालाबों के किनारे लगाये जाते हैं। इसकी फसल मई के महीने में तैयार होती है। इसको 'बोरो' धान भी कहते हैं।

खेती के दो तरीके

धान की खेती दो प्रकार से की जाती है--(१) बीज को सीधे खेत में बोकर, (२) बीज को पहले बियाड़ में बोकर, फिर उसकी रोपाई करके। कुआरी धान के बीज को खेत में छिड़ककर बोने की प्रथा अधिक प्रचलित है। पर अगहनी धान पहले बियाड़ में बोकर फिर रोपा जाता है। रोपाई करने से धान की उपज अधिक होती है, परन्तु इसके लिए रोपाई के समय खेत में पर्याप्त मात्रा में पानी होना आवश्यक है। जिस समय अगहनी धान बैठाया जाता है, उस समय तक वर्षा काफ़ी हो चुकती है और चूँकि अगहनी धान की खेती ज्यादातर ऐसी नीची भूमि में होती है जिसमें वर्षा का पानी इकट्ठा हो जाता है, इसलिए अगहनी धान की रोपाई के लिए पानी की कमी नहीं पड़ती। परन्तु कुआरी धान कुछ ऊँचे खेतों में पैदा किया जाता है और उसको बैठाने का समय भी वर्षा शुरू होने के साथ ही साथ होता है, इसलिए यदि सिंचाई का साधन न हो तो कुआरी धान की रोपाई सम्भव नहीं।

कुआरी धान को छिड़ककर बोने की वर्तमान पद्धति में सबसे बड़ी कठिनाई निराई की होती है। धान के साथ-साथ इतनी घासें उग आती हैं कि कभी-कभी उनकी निराई करना असम्भव हो जाता है। छोटे किसान तो, जिनके पास खेत कम और परिवार ज्यादा है, निराई कर भी लेते हैं, परन्तु मध्यम श्रेणी के और बड़े किसानों के लिए निराई करना असम्भव-सा हो जाता है। यदि वे निराई करते भी हैं तो मजदूरी इतनी अधिक लगती है कि धान की खेती लाभप्रद नहीं रह जाती।

इस कठिनाई को हल करने के लिए धान को कतारों में बोना चाहिए। कतार से कतार की दूरी १०" की होनी चाहिए। इस प्रकार से धान बोने के लिए खेत में २०-२०" की दूरी पर लाइनें डाल दी जाती हैं और हल के पीछे, जैसा चित्र संख्या १६ में दिखाया गया है, धान बो दिया जाता है। दो लाइनों के बीच एक हराई बिना लाइन के अन्दाज से चलना पड़ता है। खेत के दोनों

सिरों पर, जहाँ बैल मुड़ते हैं, कुदाली से लाइनें बनाकर बीज बोया जाता है। इस ढंग को अपनाने से धान की कतारें लगभग बिलकुल सीधी होती हैं और देखने में खेत ऐसा मालूम होता है, जैसे डिबलर से बोया गया हो। इस प्रकार से बोने में धान का बीज १२ सेर प्रति एकड़ लगता है। वर्षा प्रारम्भ होने के पहले ही खेत में नमी पैदा करके धान बो देना लाभप्रद होगा, परंतु यदि सिंचाई का साधन न हो तो प्रथम वर्षा के साथ बोना चाहिए। धान के पौधों के थोड़ा बढ़ते ही उनकी कतारों के बीच-बीच कस्सी से गुड़ाई कर दी जाती है। १५–२० दिनों का अंतर देकर मौका लगने पर फिर दूसरी गुड़ाई कर दी जाती है। गुड़ाई करने से कतारों के बीच उगा खर-पतवार नष्ट हो जाता है, परन्तु कतारों में धान के बीच-बीच में कुछ खर-पतवार बच रहता है, उसकी निराई खुरपी से कर दी जाती है।

यदि खेत में पहले कम्पोस्ट या गोबर की खाद दी जा चुकी है, तो बाद में ५० सेर अमोनियम सल्फेट प्रति एकड़ देना काफी होगा। खेत में ताकत होने और गुड़ाई करने पर इस प्रकार से बोये गये धान की पैदावार लगभग उतनी ही होती है, जितनी रोपाई करने से। इस ढंग की उपयोगिता जानने के लिए लेखक ने अपने फार्म पर सन् १९५८ में कुआरी धान की तीनों विधियाँ अर्थात् रोपाई, कतारों में बोआई एवं छिड़ककर बोआई का प्रयोग किया। उनसे प्रति एकड़ जो औसत उपज मिली वह निम्नलिखित है।

रोपाई द्वारा	२२.२५ मन प्रति एकड़
कतारों में बोआई द्वारा	२१.१५ ,, ,, ,,
छिड़क कर बोआई द्वारा	१७.११ ,, ,, ,,

सन् १९५९ में पुनः रोपाई और कतारों में बोआई के ढंग का मुकाबला किया गया। रोपाई द्वारा केवल २२½ मन प्रति एकड़ औसत पैदावार मिली, जब कि कतारों में बोने से २६ मन प्रति एकड़ पैदावार हुई। इस वर्ष वर्षा बहुत कम हुई थी, संभवतः इसी कारण रोपाईवाला धान कम पैदा हुआ। उपर्युक्त परीक्षण से यह सिद्ध है कि कतारों में बोआई करके लगभग उतनी ही पैदावार ली जा सकती है, जितनी रोपाई द्वारा। सूखा के वर्षों में तो कतारों में बोआई का ढंग शायद रोपाई से भी कुछ अच्छा सिद्ध हो।

सीधी पाँतों में बोआई करने के लाभ निम्नलिखित हैं--

(१) जहाँ सिंचाई की सुविधा पूरी नहीं है वहाँ भी इस तरीके से धान की बोआई करके अच्छी उपज ली जा सकती है।

(२) निराई का काम बहुत सुगम हो जाता है। छींटकर बोये गये धान में अधिक खर-पतवार उगने पर एक आदमी एक दिन में $\frac{५}{८०}$ एकड़ से अधिक निराई नहीं कर सकता। एक आदमी एक दिन में पाँतों में बोये धान की $\frac{१}{८}$ से लेकर $\frac{१}{४}$ एकड़ तक गुड़ाई कस्सी से कर सकता है।

(३) छिटकवाँ बोआई की अपेक्षा पाँतवार बोआई में बीज की बहुत बचत होती है।

(४) बोआई का काम वर्षा ऋतु आरम्भ होने के पहले ही, जब किसान को कम काम रहता है, समाप्त किया जा सकता है।

(५) खेत को वर्षा ऋतु में दो गुड़ाइयाँ मिल जाने से वही लाभ होता है जो जुताई से होता है। अतः बाद में रबी की फसल भी अच्छी होती है।

इस ढंग को काम में लाने के लिए दो बातों की सावधानी रखनी चाहिए—

(१) जहाँ तक सम्भव हो वहाँ तक इस ढंग का प्रयोग ऊँचाई के खेतों में किया जाय, जिससे शुरू बरसात में ही उनमें पानी न भर जाय। जिन खेतों में पहले से ही वर्षा का पानी भर जाने का डर हो, उनमें पलेवा करके वर्षा ऋतु आरम्भ होने के पहले ही धान बोकर उगा लेना चाहिए। फसल में पानी लग जाने पर कस्सी के बजाय जापानी निरायक यन्त्र का प्रयोग करना चाहिए।

(२) जिस खेत में इस ढंग से बोआई करनी हो उसकी मिट्टी अच्छी उर्वरा होनी चाहिए। खादों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग होना चाहिए।

यदि सिंचाई का साधन प्राप्त हो तो धान रोपाई का ढंग प्रयोग में लाना चाहिए। परन्तु यदि मौके पर पानी न मिल सकता हो तो धान को पाँतवार बोने का ढंग अपनाना चाहिए। गहैन खेती करनेवाले किसान को धान छिटक-कर न बोना चाहिए।

धान में कौन-सी खाद कब और कैसे दी जाती है, इस का प्रभाव उपज पर बहुत अधिक पड़ता है। धान की खेती की भूमि के प्रायः पानी के अन्दर रहने के कारण उसमें हवा का प्रवेश नहीं हो पाता, इसलिए उसके अन्दर

जो रासायनिक क्रियाएँ होती हैं, वे सूखी भूमि में होनेवाली क्रियाओं से भिन्न होती हैं। गेहूँ, गन्ना इत्यादि के लिए हरी खाद जोतने के बाद काफ़ी समय उसको सड़ने के लिए देना पड़ता है, यदि ऐसा न किया जाय तो हरी खाद से लाभ के बजाय हानि होने की सम्भावना रहती है। परन्तु धान के लिए हरी खाद को जोतकर तुरन्त धान रोप दिया जा सकता है। प्रयोगों से यह सिद्ध हुआ है कि यदि ६ से ८ हजार पौड तक प्रति एकड़ कोई भी हरा पदार्थ भूमि में मिलाकर जोत दिया जाय और उसके बाद धान की रोपाई की जाय तो धान के लिए बाहर से किसी अन्य प्रकार की खाद की आवश्यकता नहीं रह जाती। यह सब हरा पदार्थ चाहे खेत में पैदा किया जाय, या बाहर से लाया जाय, परिणाम एक-सा ही होगा।

धान की भारतीय किस्मों का यह एक अवगुण है कि खादें पाकर उनके पौधे बहुत ऊँचे बढ़ जाते हैं। धान की जापानी किस्मों में जब खाद अधिक दी जाती है, तब उनके पौधे ऊँचे बढ़ने के बजाय कल्ले अधिक देते हैं (चित्र २२)। इसी लिए जापानी धान की किस्मों में अधिक खाद देने पर पैदावार अधिक मिलती है। परन्तु हमारी धान की किस्मों में यदि उतनी ही खाद दी जाय, जितनी जापान में दी जाती है, तो वे ऊँची बढ़कर, खेत में फूटने के पहले ही ल्रोट जायँगी और फल यह होगा कि पैदावार अधिक होने के बजाय कम होगी। इसी लिए हमारे अनुसंधान-केन्द्रों पर इस बात का प्रयत्न हो रहा है कि भारतीय और जापानी धान की किस्मों को मिलाकर एक संकर जाति निकाली जाय, जो भारतीय जलवायु मे पैदा हो सके, और जिसमें यह भी गुण हो कि अधिक खाद पाने पर बढ़ने के बजाय अधिक कल्ले दे। परन्तु जब तक इस प्रकार की कोई संकर जाति निकाल नहीं ली जाती, तब तक धान में अधिक खाद देना उचित नही। प्रयोगों से यह सिद्ध हुआ है कि ४० पौंड प्रति एकड़ से ज्यादा नाइट्रोजन धान में देना लाभप्रद नहीं है। हरी खाद के प्रयोग से खेतों में ४० पौड नाइट्रोजन पहुँच जाता है। अतः यदि सिचाई के साधन प्राप्त हों तो धान की खेती के लिए सबसे सरल और सस्ता खाद देने का ढंग हरी खाद का प्रयोग ही है।

परन्तु यदि हरी खाद न दी जा सकती हो तो फिर कम्पोस्ट और अमोनियम सल्फेट का प्रयोग करना चाहिए। केन्द्रीय चावल-अनुसंधान-केन्द्र, कटक में

किये गये प्रयोगों से यह सिद्ध हुआ है कि खेत में १०० मन कम्पोस्ट और ५० सेर अमोनियम सल्फेट प्रति एकड़ देने से सबसे अधिक उपज प्राप्त होती है।

चित्र २२—**जापानी किसान जापानी धान के खेत में (देखिए, धान बहुत ऊँचा नहीं बढ़ा है)**

प्रायः यह देखा गया है कि किसान अमोनियम सल्फेट ले जाकर खेत में छींट देते हैं। इस तरह से अमोनियम सल्फेट का छींटना गन्ना, गेहूँ तथा ऊँचे खेतों में उपजायी जानेवाली अन्य फसलों के लिए तो ठीक है, परन्तु उन खेतों के लिए जिनमें पानी लगा रहता है, ठीक नहीं है। अमोनियम सल्फेट का अमोनियम भाग पहले नाइट्रेट में परिवर्तित होता है जो पानी में घुलकर नीचे पहुँच जाता है। वहाँ भूमि के जीवाणु आक्सिजन के अभाव में नाइट्रेट को

तोड़कर उसका आक्सिजन अपने प्रयोग में ले आते हैं। नाइट्रेट में से आक्सिजन निकल जाने के बाद जो स्वतंत्र नाइट्रोजन बच रहता है वह पानी में बुलबुले के

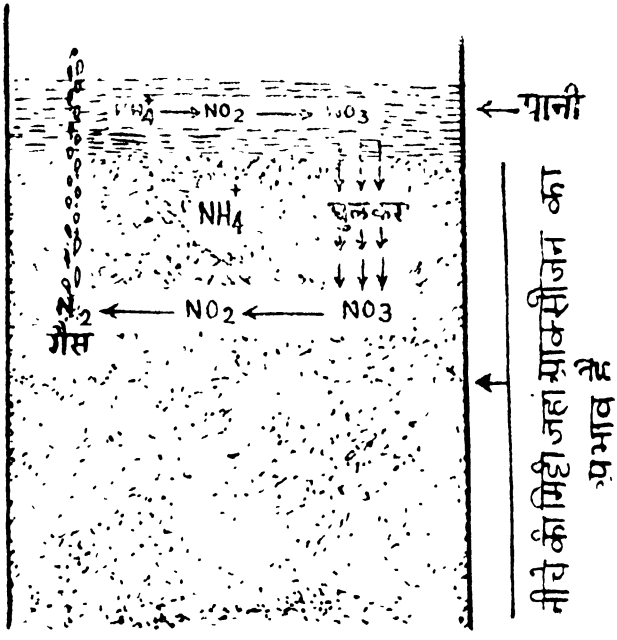

चित्र २३—धान के खेत में अमोनियम स्वतंत्र नाइट्रोजन में परिवर्तित हो जाता है।

रूप में निकलकर पुनः वायु में मिल जाता है। इस प्रकार नाइट्रोजन पौधों को न प्राप्त होकर हवा में मिलकर नष्ट हो जाता है। पानी भरे हुए खेत में जो रासायनिक क्रियाएँ होती हैं वे चित्र संख्या २३ में दिखलायी गयी हैं। यदि अमोनियम सल्फेट भूमि से दो-तीन इंच नीचे दिया जाय, तो आक्सिजन के अभाव में अमोनियम न तो नाइट्रेट के रूप में परिवर्तित होगा, न नाइट्रेट स्वतंत्र नाइट्रोजन के रूप में। भूमि के नीचे दिये हुए अमोनियम सल्फेट का अमोनियम वहाँ ज्यों-का-त्यों बना रहता है, जब तक कि पौधों की जड़ें उसका प्रयोग नहीं कर लेतीं। यही कारण है कि अमोनियम सल्फेट को ऊपर न छिड़क कर भूमि के नीचे देने से धान की पैदावार अधिक होती है। केन्द्रीय चावल-अनुसंधान-केन्द्र,

कटक में पिछले ५ वर्षों में हुए प्रयोगों से जो औसत पैदावार अमोनियम सल्फेट को सतह के ऊपर और सतह के नीचे देने से प्राप्त हुई है, वह निम्नलिखित है।

धान की पैदावार प्रति एकड़	(५ वर्षों का औसत)
१. बिना खाद	१८५० पौंड
२. २० पौंड नाइट्रोजन सतह के ऊपर	२१९४ पौंड
३. २० पौंड नाइट्रोजन सतह के २–३ इंच नीचे	२३१३ पौंड
४. पैदावार में वृद्धि, प्रति पौंड नाइट्रोजन सतह के ऊपर	१७.२ पौंड
५. पैदावार में वृद्धि, प्रति पौंड नाइट्रोजन सतह के नीचे	२३.२ पौंड

इन आँकड़ों से यह सिद्ध है कि अमोनियम सल्फेट सतह के ऊपर देने की अपेक्षा सतह के नीचे देने से लगभग ३५% अधिक लाभ होता है। धान के खेत में नाइट्रेट किस्म की खाद नहीं देनी चाहिए, क्योंकि वह पानी में घुलकर नीचे पहुँच जायगी और नीचे पहुँचकर स्वतंत्र नाइट्रोजन में परिवर्तित हो जायगी। अतः धान में ऐसे ही उर्वरक देने चाहिए जिनमें अमोनियम यौगिक हो, जैसे—अमोनियम सल्फेट, यूरिया इत्यादि, और वह भी सतह के दो-तीन इंच नीचे देना चाहिए।

अमोनियम सल्फेट और यूरिया की खाद भूमि की सतह के नीचे देने के दो उपाय हो सकते हैं। प्रथम तो यह कि सूखे खेत में ही हल के पीछे हराई में खाद देकर खेत में पानी भर दिया जाय और उसमें लेव लगाकर धान की रोपाई कर दी जाय। ऐसा करने में इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि खाद जमीन के अंदर डालने के दो-तीन दिन के अन्दर रोपाई कर दी जाय। यदि ऐसा नहीं किया जाता, तो अमोनिया नाइट्रेट के रूप में परिवर्तित हो जायगा और फिर पानी भरने पर नाइट्रेट उसी तरह स्वतंत्र नाइट्रोजन में बदल जायगा, जैसा पहले बतलाया जा चुका है।

इस विधि में कठिनाई यह है कि वर्षा ऋतु में धान के खेतों में पानी भर जाता है और यह सम्भव नहीं होता कि कीचड़ में हल चलाकर खाद को नीचे पहुचाया जा सके। और यदि वर्षा प्रारम्भ होने के पहले ही सूखे खेत में खाद दी जाय तो यह सम्भव न होगा कि खाद देने के दो-तीन दिन के अन्दर खेत में रोपाई की जा सके। खाद को भूमि की सतह के नीचे पहुँचाने का दूसरा उपाय यह हो सकता है कि चिकनी मिट्टी को अमोनियम सल्फेट या यूरिया खाद में मिलाकर उसकी गोलियाँ या गुल्ले बना लिये जायँ। इन गोलियों को सुखाकर रख लिया जाय और रोपाई के बाद इन गोलियों को धान के बीच-बीच में घुसा दिया जाय।

यद्यपि इस ढंग से खाद देने में खाद को सबसे अधिक उपयोगी पाया गया है, फिर भी इस विधि में खाद की गोलियों को जमीन में घुसाने में लगभग उतनी ही मेहनत पड़ती है जितनी धान की रोपाई में।

धान के पौधों को अपने जीवन-काल में नाइट्रोजन की सबसे अधिक आवश्यकता दो बार पड़ती है। एक तो तब, जब उनमें कल्ले निकल रहे हों और दूसरे तब, जब उनमें बालियों के साँचे बनना शुरू हों। इसलिए धान में अमोनियम सल्फेट या यूरिया खाद एक ही बार न देकर यदि दो बार दी जाय, तो अधिक लाभ होता है, यानी पहली बार जिस समय कल्ले निकलना शुरू हो तब, और दूसरी बार धान फूटने के लगभग २० दिन पहले। अगहनी धान के लिए रोपाई के १०–१५ दिन बाद और २० से २७ सितम्बर के बीच में खाद देना सबसे अधिक लाभप्रद सिद्ध हुआ है। यदि खाद एक ही बार देनी हो तो धान फूटने के तीन सप्ताह पहले देना ठीक होगा। धान फूटने के तीन सप्ताह पहले तक उसकी जड़ें भूमि में काफी फैल जाती हैं। इसलिए यदि अमोनियम सल्फेट छिड़काव द्वारा भी दिया जाय, तो अधिक नुकसान नहीं होता, क्योंकि पानी में घुलकर नाइट्रेट ज्यों ही नीचे पहुँचता है, फैली हुई जड़ें उसका तुरन्त प्रयोग कर लेती हैं।

उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखते हुए, धान में खाद देने का व्यावहारिक ढंग यही है कि रोपाई के समय हरी खाद, कम्पोस्ट तथा गोबर की खाद का प्रयोग किया जाय और धान फूटने के तीन सप्ताह पहले उसमें अमोनियम सल्फेट या यूरिया छींट दिया जाय।

बियाड़ बोकर रोपाई करने का ढंग––इस ढंग से धान की खेती करने के लिए पहले एक अलग खेत में, जिसे 'बियाड़' कहते हैं, धान बोकर जब पौधे कुछ बड़े हो जाते है, तब उन्हें उखाड़कर असली खेत में बैठा दिया जाता है। इस ढंग का प्रयोग धान की सभी प्रकार की किस्मों में किया जा सकता है। जिस खेत में बियाड़ बोना हो, वह ऐसा होना चाहिए कि उसमें पानी न रुके। यदि निचले खेत में बियाड़ बोना हो तो यह आवश्यक हो जाता है कि जिस प्रकार जापानी ढंग में ४ फुट चौड़ी और कुछ ऊँची क्यारियाँ बनाकर बेरन बोने के लिए कहा जाता है, उसी प्रकार से क्यारियाँ बनाकर बेरन बोयी जाय। परन्तु यदि खेत ऊँचा है, जिसमें पानी नहीं रुकता, तब ऊँची क्यारियाँ बनाने की कोई आवश्यकता नहीं।

धान के जापानी ढंग की खेती में बेरन के साथ अधिक खाद देने के लिए कहा जाता है। परन्तु भारत के जलवायु में बियाड़ में अधिक रासायनिक खादों का प्रयोग करके बेरन की उपज बढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं। जापान में जिस समय बेरन डाली जाती है उस समय काफी ठंड पड़ती है, इसलिए अधिक खाद देकर बेरन को शीघ्र बढ़ाने का प्रयत्न किया जाता है। परन्तु अपने देश में जिस समय बेरन उगायी जाती है उस समय जलवायु ऐसा होता है कि पौधे बहुत तेजी से बढ़ते हैं, अतएव उन्हें अधिक रासायनिक खाद देकर बड़ा करने की आवश्यकता नहीं होती। हमारे लिए इतना ही काफी है कि प्रति एकड़ १० गाड़ी गोबर या कम्पोस्ट की खाद डालकर बेरन डाल दी जाय। परन्तु यदि किसी कारण से बेरन डालने में देर हो गयी हो, तो पौधों को शीघ्र तैयार करने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि उसमें रासायनिक खादों का प्रयोग किया जाय, जैसा कि जापानी ढंग में बतलाया जाता है। बेरन डालने में इसका ध्यान रखना चाहिए कि बीज बहुत घना न पड़े, क्योंकि घने बीज का पौधा कमजोर हो जाता है। मोटा धान ४ मन प्रति एकड़ और बारीक धान ३ मन प्रति एकड़ बोना काफी होगा।

धान की कई बीमारियाँ बीज द्वारा फैलती हैं। अतः बीज बोने के पहले उसे रासायनिक दवा एग्रोसेन जी० एन० द्वारा डेढ़ छटाँक प्रति मन के हिसाब से शोध लेने पर बीमारियाँ लगने का डर कम हो जाता है। (दवा मिलाने के

ढंग के लिए देखिए पृष्ठसंख्या ६४)। जो बीज सीधे खेत में बोना हो, उसे भी इस दवा से शोध लेना आवश्यक है। कुआरी धान के लिए पौधे बियाड़ में लगभग ३० दिन तक रखे जाते हैं, और अगहनी धान के लिए ४० से ४५ दिन तक।

जिस खेत में धान की रोपाई करना हो, उसे पिछली फसल काटने के बाद गर्मियों में दो-तीन बार जोत देना चाहिए। जहाँ सिंचाई की सुविधा प्राप्त हो वहाँ हरी खाद बो देनी चाहिए। कुआरी धान के लिए मई के प्रथम सप्ताह में और अगहनी धान के लिए मई के अंतिम सप्ताह में हरी खाद बोनी चाहिए। यदि हरी खाद देने की सुविधा न हो तो कम्पोस्ट या गोबर की खाद देनी चाहिए। इसे खेत में मिलाकर लेव लगाना चाहिए। लेव लगाने में इस बात का प्रयत्न करना चाहिए कि जितनी घास उगी हुई हो वह कीचड़ में दब जाय, लेव ठीक से बराबर लगे और कहीं सूखी जमीन न छूटने पाये।

रोपाई के समय का प्रभाव धान की पैदावार पर बहुत पड़ता है। रोपाई जितनी पहले की जायगी, उतनी ही अच्छी पैदावार मिलने की आशा की जा सकती है। कुआरी धान की रोपाई जून में या ३–४ जुलाई तक अवश्य समाप्त कर देनी चाहिए। अगहनी धान की रोपाई भी जुलाई के अंदर ही समाप्त कर देनी चाहिए। पिछड़कर रोपाई करने से अगहनी धान की पैदावार पर कैसा प्रभाव पड़ता है, यह चित्र संख्या २४ में दिखलाया गया है।

कितने बीज एक स्थान पर और कितने दूर-दूर पर लगाये जायँ, यह धान की किस्म, भूमि की दशा और रोपाई के समय पर निर्भर होगा। जल्द पकने-वाले या कुआरी धान के लिए ६ × ६" की दूरी पर तथा प्रत्येक छेद में दो बीज लगाना काफी होगा, जब कि अगहनी धान के लिए ९ × ६" की दूरी और प्रत्येक छेद में दो बीज बैठाना ठीक होगा। परन्तु खेत यदि ताकत-वर है, तो कुआरी धान को ९ × ६" और अगहनी धान को १० × १०" की दूरी पर बैठाना चाहिए। रोपाई यदि जल्दी समाप्त कर दी जाय, तो पौधों को दूर-दूर और गिनती में कम लगाने से उपज अच्छी मिलती है। परन्तु यदि रोपाई का काम पिछड़ गया है, तो एक-एक छेद में अधिक पौधे तथा उन्हें

नजदीक-नजदीक लगाना ठीक होता है। रोपाई पिछड़ जाने से कल्ले निकलने का समय नहीं मिलता। कल्ले की कमी अधिक पौधे बैठाकर पूरी की जा सकती है। इस विषय में एक पुरानी कहावत भी है—

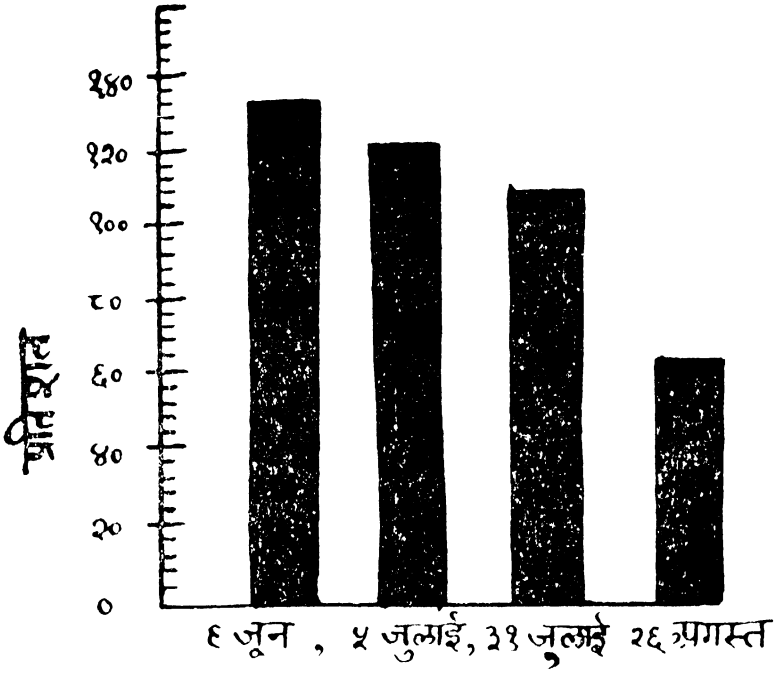

चित्र २४—**अगहनी धान पर पिछड़कर रोपाई करने का प्रभाव।**

पुष्य पुनर्वसु तान बेतान, अश्लेषा बित्ता परमान।
मघा पूर्वा घोंघा फेर, तीनों काटो एक मेर॥

अर्थात् पुनर्वसु और पुष्य नक्षत्रों के समय यानी जुलाई में धान के पौधे दूर-दूर लगाइए। आश्लेषा नक्षत्र में या अगस्त के आरम्भ में उन्हें एक-एक बालिश्त की दूरी पर लगाएँ और मघा व पूर्वा नक्षत्रों में अर्थात् अगस्त के अंत में या सितम्बर के आरम्भ में पौधे बहुत घने और अधिक संख्या में लगाने चाहिए, ताकि घोंघा भी आसानी से खेत में न घुस सके। ऐसा करने से पैदावार लगभग बराबर होती है।

धान की रोपाई यदि पाँतों में की जाय, तो बाद में निकाई और गुड़ाई में बड़ी आसानी हो जाती है। लाइन से रोपाई खेत के आर-पार एक रस्सी में निशान डालकर की जा सकती है।

इस प्रकार की रोपाई करने से पाँतों के बीच जापानी वीडर चलाया जा सकता है, जैसा चित्र संख्या २५ में दिखलाया गया है।

चित्र २५—**जापानी वीडर का प्रयोग।**

वीडर चलाने से खरपतवार नष्ट हो जाता है और खाद ऊपर से नीचे पहुँच जाती है, जहाँ उसका अच्छा प्रयोग होता है और पौधों की जड़ के पास की मिट्टी मुलायम हो जाती है, जिससे उसमें अधिक कल्ले निकलते हैं। परन्तु यह सब लाभ तब होता है जब खेत में से पानी बाहर निकालने और भरने की सुविधा हो। यह भी देखा गया है कि मटियार भूमि की अपेक्षा हलकी भूमि मे वीडर चलाने से अधिक लाभ होता है। यदि खेत की मिट्टी हलकी है और उसमें से पानी निकालने और फिर भरने की सुविधा है, तो धान लाइन से बैठाना चाहिए और कम से कम तीन बार उसमें वीडर चलाना चाहिए। धान के पौधों में बालियों का साँचा बनना शुरू होने से पहले ही वीडर चलाना बन्द कर देना चाहिए।

पौधों में बालियाँ निकलने और उसके दो सप्ताह पूर्व का समय धान के

जीवन-काल में बहुत ही नाजुक होता है। ऐसे समय यदि खेत में पानी की कमी हो जाय तो पैदावार पर बहुत बुरा असर पड़ता है। कुआरी धान को अगस्त के महीने में और अगहनी धान को २० सितम्बर से २० अक्तूबर के बीच पानी का कष्ट न होना चाहिए। यदि वर्षा के अभाव में खेत सूख जाय, तो उसमे सिंचाई द्वारा पानी भरने का प्रयत्न करना चाहिए। ऐसे समय पानी देने और न देने से पैदावार में बड़ा अंतर पड़ जाता है। बहुधा किसान ऐसे अवसरों पर वर्षा की प्रतीक्षा करते रहते हैं और खेत जब बिलकुल ही सूख जाता है, तब सिचाई करते हैं। परन्तु तब तक काफी नुकसान हो चुकता है और सिचाई करने पर भी कोई विशेष लाभ नहीं होता।

धान की खेती के दो सबसे बड़े दुश्मन हैं; एक तो खेत में घासों का उगना और दूसरा नमी की कमी। यदि धान के खेतों को छोटे-छोटे टुकड़ों में बाँट दिया जाय और इन टुकड़ों के चारों तरफ मेंड़ बाँध दी जाय, तो खेतों में वर्षा का पानी रुका रहेगा। पानी रुकने से नमी तो बनी ही रहेगी, खेत में खर-पतवार भी कम उगेगा। इसलिए धान की खेती के लिए अत्यन्त आवश्यक है कि छोटे-छोटे खेत बनाकर मेड़बंदी की जाय।

धान की कटाई––धान की कटाई उचित समय से करनी चाहिए, नहीं तो दानों के झड़कर गिरने से नुकसान होने का डर रहता है। धान जब कुछ हरा रहे तभी उसे काट लेना चाहिए। पिछड़कर धान काटने से उसका चावल भी अच्छा नहीं बनता।

फसलों के हेर-फेर में धान का स्थान––धान की सबसे अधिक उपज प्राप्त करने के लिए धान के बाद बरसीम बोना चाहिए। बरसीम में खेतों की ताकत बढ़ाने की जितनी शक्ति है, उतनी शायद दूसरी किसी फसल में नहीं है। धान के जिन खेतों में बरसीम सफलतापूर्वक उगायी गयी हो, उनमें उसके बाद कोई खाद देने की आवश्यकता नहीं रह जाती। बरसीम, कुआरी और अगहनी दोनों प्रकार के धानों के बाद उगायी जा सकती है। मिश्रित खेती के लिए चारे की आवश्यकता पड़ती है। बरसीम उगाकर यह चारे की कमी पूरी की जा सकती है और मिश्रित खेती का पूरा-पूरा लाभ उठाया जा सकता है।

यदि बरसीम की फसल न बोयी जा सकती हो तो कुआरी धान के बाद चना, मटर, बेझर, और अगहनी धान के बाद मसूर, धनिया, ढुरवा मटर, टाइप ८७ चना और बाकला की फसलें बोयी जा सकती हैं।

गेहूँ की खेती

हमारे देश में गेहूँ के खेत की तैयारी का सबसे प्रचलित ढंग खेत को चौमस या पलिहर रखने का है। इस ढंग के अनुसार जिस खेत में गेहूँ बोना होता है, उसको अवसर मिलने पर वर्षा ऋतु में बार-बार जोतते रहते हैं। परन्तु इस ढंग से गेहूँ पैदा करने में किसान को दो प्रकार से हानि होती है। एक तो वर्षा के तीन महीनों में खेत यों ही बेकार पड़ा रहता है, किसान को उससे कोई आमदनी नही होती। दूसरे, वर्षा के कारण मिट्टी का कटाव भी होता रहता है, जिसके फलस्वरूप खेत की बहुत-सी बनी बनायी मिट्टी बहकर खेत से बाहर चली जाती है और उसकी उर्वरा शक्ति कम हो जाती है (देखिए पृष्ठ संख्या ४१)। अतः गहन खेती करनेवाले किसानों को किसी भी दशा में खेत को चौमस या पलिहर नहीं छोड़ना चाहिए।

गेहूँ के पहले वर्षा ऋतु में यदि मूँग नं० १, अथवा लोबिया नं० १, बोकर इनके दाने तोड़ लिये जायँ और डंठल तथा पत्तियों को खेत में मिट्टी पलटनेवाले हल से मिला दिया जाय, तो किसान को दोहरा लाभ हो सकता है। एक तो उसे मूँग और लोबिया-जैसी कीमती फसलों के ५–६ मन दानों की प्राप्ति हो जायगी और दूसरे उनकी पत्तियों और डंठलों के सड़ने तथा भूमि-कटाव से खेत की रक्षा होते रहने के कारण खेत की उर्वरा शक्ति बढ़ जायगी।

मूँग और लोबिया की खेती एक ही ढंग से की जाती है। अंतर केवल इतना ही है कि मूँग की लाइनों की दूरी एक-दूसरी से डेढ़-डेढ़ फुट और पौधों से पौधों की दूरी ६–६" रखनी चाहिए, जब कि लोबिया की एक लाइन से दूसरी लाइन की दूरी २ फुट और पौधों की दूरी ९" होनी चाहिए। इन फसलों को लाइन से ही बोना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से निकाई-गुड़ाई करने में बड़ी सुविधा रहती है। इन फसलों को बोने से पहले खेत की दो-तीन जुताई करके मिट्टी भुरभुरी कर लेनी चाहिए और आखिरी जुताई करते समय कूँड़ में तीन-चार

इंच की गहराई पर ढाई मन प्रति एकड़ के हिसाब से सुपरफास्फेट खाद मिला देनी चाहिए। यह खाद देने से मूँग, लोबिया की पैदावार भी बढ़ जायगी और बाद में गेहूँ की पैदावार बहुत अच्छी होगी। अच्छी पैदावार के लिए मूँग और लोबिया की कम से कम दो बार निकाई-गुड़ाई करना आवश्यक है।

इन फसलों के बोने के लगभग डेढ़ महीने बाद इनमें फूल आने लगते हैं और फलियाँ लगना शुरू हो जाती हैं। बोआई के ५०–६० दिनों बाद फलियाँ तोड़ने लायक हो जाती हैं। पहली तुड़ाई के १०–१५ दिनों बाद दूसरी तुड़ाई करनी चाहिए। दूसरी तुड़ाई के बाद कच्ची फलियों के पक जाने की प्रतीक्षा किये बिना, फसल को जोतकर मिट्टी में मिला देना चाहिए। प्रायः यह देखा गया है कि किसान मूँग या लोबिया की अधपकी फलियों के लालच में खेत की जुताई में बिलम्ब कर देते हैं, जिसके कारण मूँग और लोबिया को सड़ने का पूरा समय नहीं मिलता और आनेवाली गेहूँ की फसल को नुकसान पहुँचता है। यदि किसान चाहते हैं कि वे मूँग और लोबिया की पूरी फसल लें, तो उन्हें वर्षा ऋतु आरम्भ होने से १५ दिन पहले ही मूँग और लोबिया की फसलें खेत में सिचाई द्वारा नमी पैदा करके बो देनी चाहिए। इस प्रकार १५ दिन पहले फसल बोने से फलियों की तीसरी तुड़ाई का भी अवसर मिल जायगा।

चौमस या पलिहर रखकर अथवा सनई की हरी खाद और मूँग बोने के बाद गेहूँ की फसल प्राप्ति का तुलनात्मक अध्ययन हानि-लाभ की दृष्टि से उत्तर प्रदेश के राजकीय कृषिफार्मों पर किया गया है। राज्य के ११ जिलों में स्थित इन फार्मों पर दो साल तक किये गये प्रयोगों का जो औसत परिणाम निकला, वह अगले पृष्ठ पर दिखाया गया है।

इन परिणामों को देखते हुए मूँग के बाद गेहूँ बोने का ढंग सबसे लाभप्रद सिद्ध होता है।

परंतु मूँग और लोबिया की फसलें ऐसे ही खेतों में पैदा की जा सकती हैं जिनमें पानी बिलकुल न रुकता हो। अतः जिन खेतों में पानी रुकने का कुछ भी डर हो उनमें मूँग या लोबिया न बोकर ढेंचा की हरी खाद का प्रयोग करना चाहिए। हरी खाद के लिए सनई और ढेंचा दोनों का प्रयोग किया जा सकता

सस्यचक्र	गेहूँ की पैदावार		बराबर की पैदावार प्राप्त एकड़ पौंड	टोटल पैदावार प्राप्त एकड़ पौंड	चौथस की गुणता में प्रतिशत	उत्पादन का मूल्य (रुपयों में)			
	पौंड	प्रतिशत				मूँग	गेहूँ दाना	गेहूँ भूसा	टोटल
चौमस गेहूँ	१५०७	१००	×	१५०७	१००	×	२८२.४	९४.२	३७६.६
सनई-गेहूँ	१७६१	११७	×	१७६१	११७	×	३३०.२	११०.१	४८०.३
मूँग-गेहूँ	१७३४	११५	२७३	२००७	१३३	६८.३	३२५.३	१०८.४	५०२.०

चौमस की गुणता में ह्रास (रुपयों में)
×
६३.७
१२५.४

है। परन्तु जिन खेतों में पानी रुका रहता है, उनमें सनई ठीक से नहीं बढ़ती। सनई भी ऐसे ही खेतों में सफल हो सकती है, जिनमें मूँग और लोबिया की खेती सम्भव है। जिन खेतों में थोड़ा भी पानी लगने का डर है, उनमें ढेंचा बोना चाहिए।

हरी खाद के लिए लगभग २५ सेर प्रति एकड़ ढेंचा या ५० सेर सनई का बीज चाहिए। बोआई के पहले ढाई मन प्रति एकड़ के हिसाब से सुपर-फास्फेट खाद कूँड़ों में देने से हरी खाद का प्रभाव बढ़ जाता है। प्रयोगों से यह सिद्ध हुआ है कि केवल हरी खाद की तुलना में, हरी खाद में ढाई मन प्रति एकड़ सुपरफास्फेट देने से गेहूँ की पैदावार तीन मन प्रति एकड़ बढ़ जाती है। हरी खाद की फसल को बोआई के सात या आठ सप्ताह के अंदर पलट देना चाहिए, क्योंकि पिछड़ जाने पर इसको सड़ने का मौका नहीं मिलता और आगे बोयी जानेवाली फसल को लाभ के बजाय हानि पहुँचने का डर रहता है।

हरी खाद को मिट्टी पलटनेवाले हल से एक बार जोतकर दो-तीन सप्ताह तक छोड़ देना चाहिए और बाद में देशी हल या कल्टीवेटर से खेत की जल्दी-जल्दी कई बार जुताई करनी चाहिए। १५ सितंबर के बाद खेत की हर जुताई के बाद हेंगा या पाटा से खेत को बराबर करते रहना चाहिए, जिससे मिट्टी के ढेले टूटकर बराबर हो जायँ। जिस साल वर्षा कम हो उस वर्ष खेत में नमी बनाये रखने के लिए खेत की जुताई का काम केवल सुबह और शाम को ही करना चाहिए। दिन की कड़ी धूप से बचने के लिए सुबह ८–९ बजे तक खेत में पाटा देकर कार्य समाप्त कर देना चाहिए।

बोआई––गेहूँ की बोआई के तीन ढंग हैं––एक बीज छिड़ककर बोने का, दूसरा कूँड़ में बोने का और तीसरा डिबलर द्वारा बोने का। छिड़ककर बोने का ढंग सबसे पुराना है, परन्तु सबसे अलाभकर है। इसमें बीज की मात्रा अधिक लगती है और बाद में निकाई-गुड़ाई भी असम्भव हो जाती है। गेहूँ बोने का सबसे उत्तम ढंग डिबलर की क्रियावाला है। डिबलिग ढंग से गेहूँ बोने में प्रति एकड़ केवल ६ सेर बीज की आवश्यकता होती है और चूँकि एक पौधे से दूसरे की दूरी नपी-तुली रहती है, इसलिए पैदावार भी अधिक होती है।

इस विधि से बोआई करने के लिए एक यंत्र, जिसको 'डिबलर' कहते हैं और जिसका आविष्कार लेखक ने किया है, आवश्यक होता है।

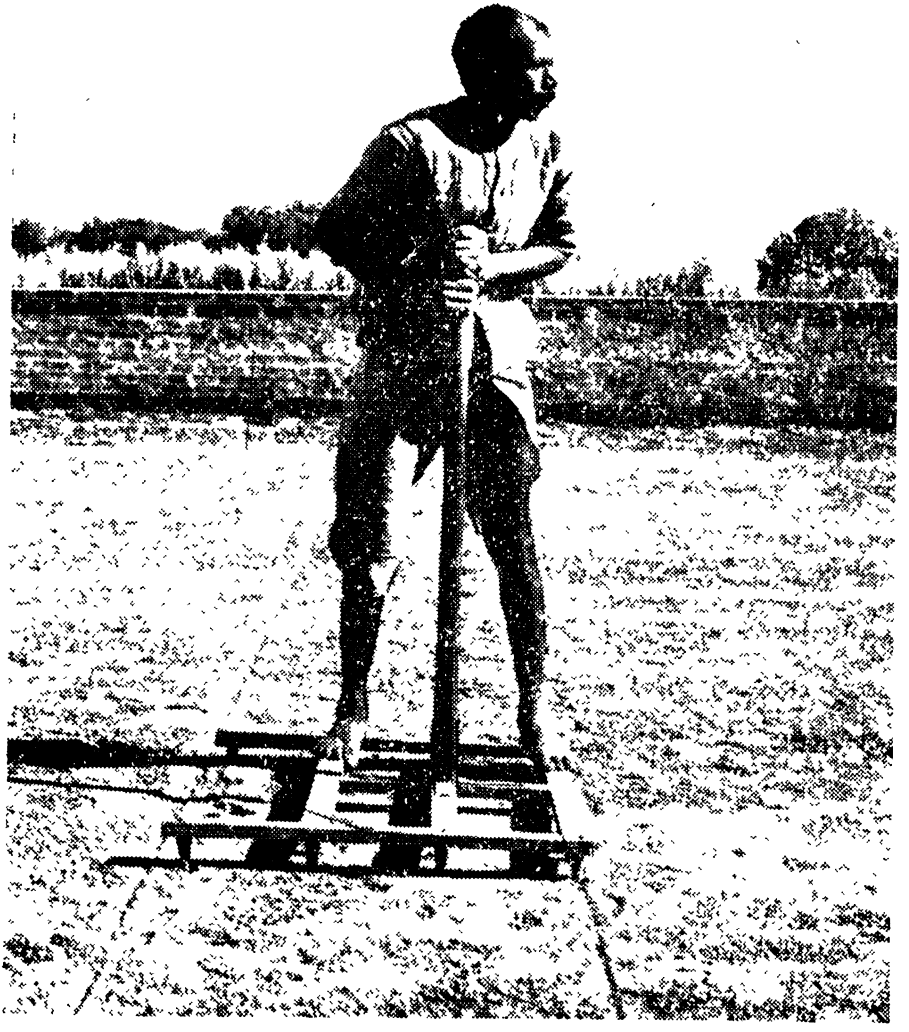

चित्र २६—बोआई के लिए डिबलर का प्रयोग।

इस यंत्र में लकड़ी का एक चौखटा रहता है, जिसमें ९–९" की दूरी पर लकड़ी की खूंटियों की तीन कतारें रहती हैं। हर एक कतार में खूंटियों की

एक-दूसरी से दूरी साढ़े चार इंच होती है। खूँटियों की लम्बाई तीन इंच होती है। प्रत्येक कतार में ९ खूँटियाँ होती हैं। चौखटे के बीचोबीच लकड़ी का एक डंडा लगा रहता है। इसी डंडे को पकड़कर इस यंत्र को उठाते और रखते हैं। डिबलर से एक साथ तीन लाइनें बोयी जा सकती हैं। एक आदमी इससे ठप्पे मारकर बड़ी आसानी से सत्ताईस-सत्ताईस सुराख बनाता चला जाता है, उसके पीछे तीन आदमी, औरतें या बच्चे इन सुराखों में दाने डालते चलते हैं। इस प्रकार चार आदमी मिलकर एक दिन में आधा एकड़ खेत बो सकते हैं।

इस ढंग से बोआई करने में समय और मजदूरी तो अधिक लगती है, परन्तु बीज की इतनी बचत हो जाती है कि उससे न केवल मजदूरी निकल आती है, बल्कि कुछ लाभ भी होता है। डिबलिंग का प्रयोग करने के पहले खेत में यदि सत्ताईस-सत्ताईस इंच के फासले पर लाइनें लगा दी जायँ और डिबलर की एक कतार इन लाइनों पर रखकर ठप्पे लगाये जायँ तो गेहूँ की कतारें बिलकुल सीधी होंगी और उनके बीच-बीच निकाई-गुड़ाई करने में बड़ी सुविधा होगी। डिबलिंग ढंग का प्रयोग करने के लिए किसानों को निम्न-लिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए--

(१) खेत में नमी काफी हो ताकि सब दाने उग आयें, यदि नमी की कमी हो तो पलेवा करके नमी पैदा कर लेने के बाद ही डिबलिंग ढंग का प्रयोग करना चाहिए।

(२) बीज बड़े दाने के और स्वस्थ हों।

(३) बीज लगभग सवा इंच की गहराई पर पड़ें, ताकि कोई बीज बहुत नीचे पड़कर सड़ न जाय।

(४) खेत में काफी ताकत हो, जिससे पौधों में खूब कल्ले निकलें और खेत भर जाय। कमजोर खेतों में डिबलिंग ढंग का प्रयोग नहीं करना चाहिए। गेहूँ की बोआई पिछड़ जाने पर भी डिबलिंग ढंग का प्रयोग न करना चाहिए।

इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि पैदावार तथा लाभ की दृष्टि से गेहूँ बोने का सबसे उत्तम ढंग डिबलिंग द्वारा ही है। जिन किसानों के पास भूमि कम

है उन्हें इस ढंग को अवश्य अपना लेना चाहिए। परन्तु जिन किसानों को बड़े क्षेत्रफल में गेहूँ बोना है और समय से बड़ी संख्या में मजदूर मिलना कठिन है, या जिनके खेत कमजोर हैं, उनको हल के पीछे चलते हुए कूँड़ों में गेहूँ बोने का ढंग अपनाना चाहिए। कूँड़ से कूँड़ की दूरी ९" रखनी चाहिए। कई कतारों में एक साथ गेहूँ बोने के लिए सीडड्रिल का प्रयोग करना चाहिए।

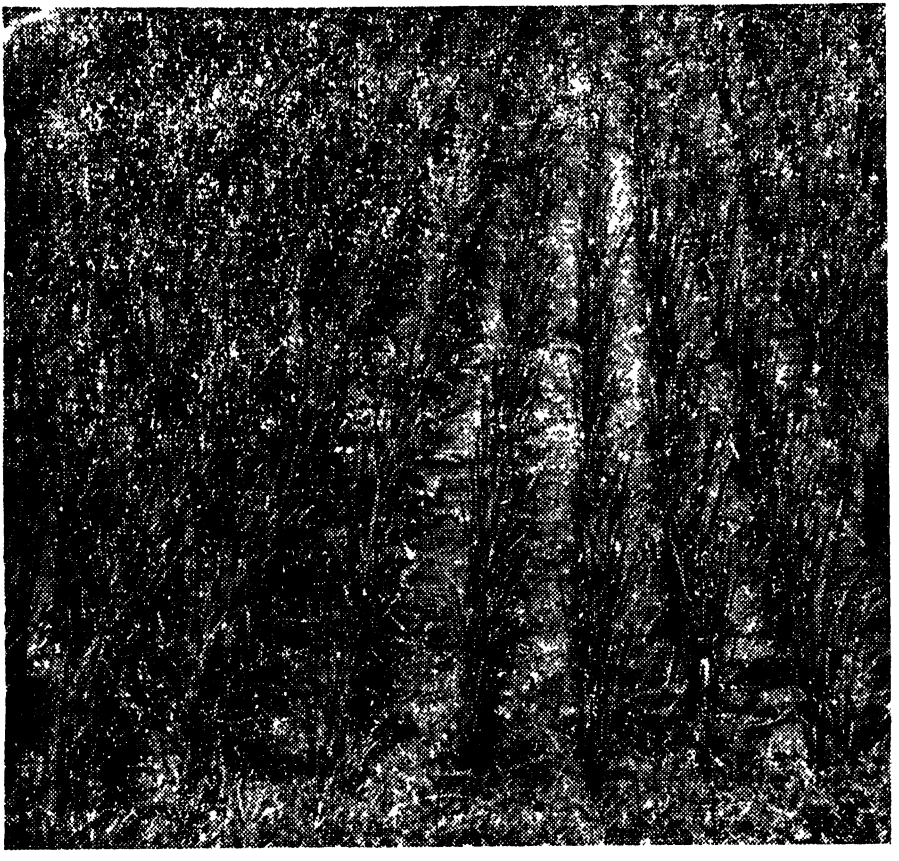

चित्र २७—**डिबलिंग ढंग के प्रयोग से उत्पन्न गेहूँ के पौधे।**

सीडड्रिल या कूँड़ से बोवाई करने में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बीज बहुत गहराई में न पहुँच जाय। सीडड्रिल या कूँड़ में बोने के लिए २५–३० सेर गेहूँ का बीज डालना चाहिए। यदि खेत कमजोर है या बोआई पिछड़ गयी है, तो बीज की मात्रा बढ़ा देनी चाहिए। क्योंकि दोनों

ही दशाओं में कल्ले कम निकलते हैं और इस कमी को बीज की मात्रा बढ़ाकर पूरा किया जा सकता है।

गेहूँ बोने का सबसे उत्तम समय २४ अक्टूबर से ७ नवम्बर तक है। गेहूँ पिछड़कर बोने से गेरुई रोग लगने का तथा चैत में गरम पछवाँ हवा चलने से नुकसान होने का डर रहता है। अतः २४ अक्टूबर के बाद शीघ्र से शीघ्र जितनी जल्दी हो सके किसान को गेहूँ बो देना चाहिए। धान या अन्य खरीफ की फसल के बाद यदि गेहूँ बोना हो, तब थोड़ा पिछड़कर बोना चाहिए। ऐसे खेतों में जल्दी बीज बोने से गेहूँ के उगकर मर जाने का डर रहता है, क्योंकि खेत की मिट्टी को बारीक करने का समय नहीं मिलता। ऐसे खेतों को नवम्बर के प्रथम सप्ताह में बोना चाहिए।

निकाई-गुड़ाई—अधिकतर किसान गेहूँ की निकाई-गुड़ाई नहीं करते, परन्तु प्रयोगों से यह सिद्ध हुआ है कि निकाई-गुड़ाई करने से पैदावार अधिक बढ़ जाती है। हमारे यहाँ गेहूँ की फसल में प्रायः बथुआ, प्याजी, मुरेरा, कृष्ण नील, हिरनखुरी, मोथा आदि खर-पतवार पाया जाता है। यदि इसको नष्ट न किया जाय तो यह अच्छी जुताई, बढ़िया खाद और सिचाई का लाभ उठाकर गेहूँ की उपज को कम कर देता है। यदि समय पर खेत की निकाई करके खर-पतवार को निकाल दिया जाय, तो गेहूँ की पैदावार बढ़ जाती है। निकाई करने से गेहूँ की उपज कितनी बढ़ जाती है, इसका अनुमान लगाने के लिए बिचपुरी फार्म में चार साल तक लगातार परीक्षण किये गये। उनके परिणाम नीचे दिये जाते हैं—

वर्ष	बिना निराये क्षेत्र में प्रति एकड़ उपज	निराये गये क्षेत्र में प्रति एकड़ उपज	उपज में वृद्धि
१९४९–५०	१९ मन १० सेर २ छ.	२३ मन ३४ सेर ८ छ.	२४%
१९५०–५१	१० मन ३० सेर –	१३ मन १० सेर –	२२%
१९५१–५२	११ मन ३० सेर ५ छ.	१५ मन ८ छटाँक	२७%
१९५२–५३	१६ मन ३० सेर	२० मन १ सेर ८ छ.	२२%

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि निकाई करके गेहूँ की पैदावार लगभग सवायी बढ़ायी जा सकती है।

डिबलिंग ढंग से या हल के पीछे चलते हुए सीधी कतारों में बोये गये गेहूँ की निकाई-गुड़ाई हैन्डहो या पतली कस्सी द्वारा बड़ी आसानी से की जा सकती है।

गेहूँ में उपजनेवाले खर-पतवार को मारने के लिए एक रासायनिक दवा का भी प्रयोग किया जा सकता है, जिसे २–४–डी० कहते हैं। इस दवा को छिड़कने से ऐसा सभी खर-पतवार, जिसके उपजते समय दो पत्तियाँ निकलती हैं, या जो चौड़े पत्तेवाला होता है, मर जाता है और गेहूँ ज्यों का त्यों बना रहता है। अँकरी, मुनमुन, बथुआ इत्यादि को मारने के लिए इस दवा का प्रयोग किया जा सकता है। एक एकड़ भूमि के लिए एक पौंड दवा काफी होती है। इसको पानी में बारीक घोलकर फुहारे से छिड़कना चाहिए। पौधे जब चार से लेकर छः इंच तक ऊँचे हो जायँ तब इस दवा का छिड़काव करना चाहिए। यह दवा काफी मँहगी है, इसलिए इसका प्रयोग केवल उन्हीं स्थानों पर किया जाना चाहिए, जहाँ निकाई-गुड़ाई के लिए मजदूर कम मिलते हैं।

खादों का प्रयोग––वानस्पतिक खादों का प्रयोग गेहूँ-बोआई के पहले ही करना चाहिए। जिन खेतों में हरी खाद का प्रयोग न किया गया हो उनमें गेहूँ बोने के लगभग एक मास पूर्व खेत में गोबर की खाद या कम्पोस्ट डालकर मिला देना चाहिए। खली की खादें प्रायः बहुत मँहगी पड़ती हैं, परन्तु यदि इन्हें डालना हो, तो बहुत बारीक करके बोआई के आठ-दस दिन पूर्व खेत में मिला देना चाहिए। सुपरफास्फेट हरी खाद के साथ ही देना लाभप्रद सिद्ध हुआ है। परन्तु यदि वह हरी खाद के साथ न दिया गया हो, तो बोते समय कूँड़ में भूमि की सतह से ३" नीचे देना चाहिए। यों तो साधारणतया अच्छी फसल लेने के लिए हरी खाद का ही प्रयोग काफी होता है, परन्तु यदि बहुत अच्छी फसल लेनी हो तो अमोनियम सल्फेट या यूरिया का भी प्रयोग करना चाहिए।

गेहूँ का पौधा दिन बीतने के साथ-साथ किस तरह बढ़ता है, इसका रेखाचित्र आगे दिया गया है। इसको देखने से पता चलेगा कि गेहूँ का पौधा अपने जीवन-काल में दो बार बहुत तेजी से बढ़ता है। प्रथम तो बोने के ३० दिन बाद और दुबारा बोआई के ६० दिन बाद। अतः बढ़ने के इन्हीं दोनों समयों पर जितना अमोनियम सल्फेट देना हो, वह आधा-आधा करके देना चाहिए; एक ही

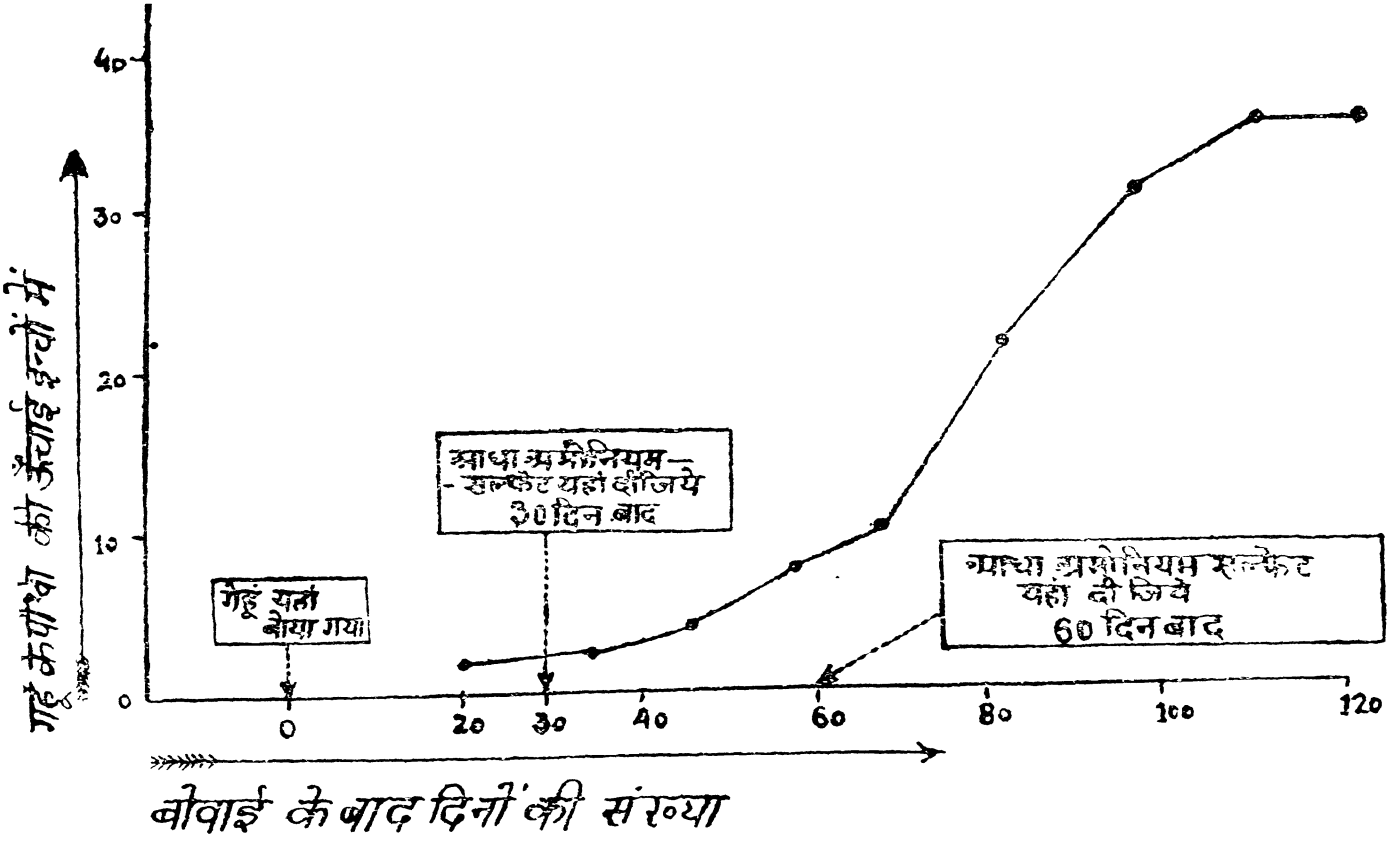

चित्र २८—गेहूँ के बढ़ने की रफ्तार।

बार कुल अमोनियम सल्फेट देने की अपेक्षा उपर्युक्त तरीके से दो बार देना अधिक लाभप्रद सिद्ध होगा। यदि हरी खाद या अन्य वानस्पतिक खादें पहले दी जा चुकी हों तो केवल २० पौंड नाइट्रोजन अमोनियम सल्फेट के रूप में देना काफी होगा। परन्तु यदि वानस्पतिक खादें न दी गयी हों तो ४० पौंड नाइट्रोजन अमोनियम सल्फेट के रूप में देना ठीक होगा। अमोनियम सल्फेट उर्वरक देने के बाद तुरन्त सिचाई कर देनी चाहिए।

किसानों के खेतों में किये गये प्रयोगों से सिद्ध हुआ है कि एक पौंड नाइट्रोजन रासायनिक खाद के रूप में देने से औसतन लगभग ८ पौंड गेहूँ की उपज बढ़ती है। इसी प्रकार एक पौंड फास्फेट (पी० २ वो० ५) देने से गेहूँ की पैदावार सात पौंड प्रति एकड़ बढ़ती है। ये नतीजे देश में हुए परीक्षणों के औसत के रूप में प्राप्त हुए हैं। भिन्न-भिन्न स्थानों पर भूमि की बनावट भिन्न-भिन्न होने के कारण सम्भव है कुछ स्थानों पर ये परिणाम न मिलें। भूमि में फास्फेट की काफी मात्रा होने पर सुपरफास्फेट देने से सम्भव है कि गेहूँ में अधिक बढ़ोतरी न हो। इसलिए किसान को चाहिए कि या तो वह खेत की मिट्टी की जाँच कराकर पता लगा ले कि उसकी भूमि में फास्फेट की कमी है या नहीं, अथवा वह अपने ही खेतों में छोटे पैमाने पर प्रयोग करके देख ले कि सुपरफास्फेट खाद डालने से लाभ होगा या नहीं।

सिंचाई—गेहूँ के लिए सिंचाई की मात्रा भूमि की बनावट और जलवायु पर निर्भर रहती है। हलकी बलुई भूमि के मुकाबले में मटियार भूमि के लिए कम सिंचाई की आवश्यकता होती है। नदी के किनारे जहाँ स्वभावतः नमी बनी रहती है, बिना सिंचाई के भी गेहूँ पैदा हो जाता है।

गेहूँ की सिंचाई दो प्रकार से की जाती है। एक तो खेत में क्यारियाँ बनाकर और दूसरे खेत में बरहा बनाकर हाथे से छिड़काव करके। उन भारी मटियार खेतों को छोड़कर, जिनमें हलकी सिंचाई करने से काम चल सकता है, खेत में क्यारियाँ बनाकर सिंचाई करना ही उचित है। परन्तु मटियार खेतों में क्यारी बनाकर पानी भर देने से मिट्टी बैठ जाती है और फसल का बढ़ाव रुक जाता है। इसलिए ऐसे खेतों में हाथे द्वारा छिड़ककर सिचाई करनी चाहिए। पहली सिंचाई के लगभग ४ सप्ताह बाद दूसरी सिंचाई करनी

चाहिए। जब तक गेहूँ पीला पड़कर सूखने न लगे तब तक पहली सिंचाई न करनी चाहिए। यह दशा बोआई के २५ दिन बाद आती है। जल्दी सिंचाई कर देने से गेहूँ की जड़ें भूमि में पूरी तरह नहीं फैलतीं और आगे चलकर कम फैली हुई जड़ों के कारण पैदावार अच्छी नहीं होती। जिस समय गेहूँ का दाना दूधिया अवस्था में हो उस समय एक सिचाई और कर देनी चाहिए।

कटाई—गेहूँ जब खूब अच्छी तरह से सूख जाय तभी कटाई करनी चाहिए। गेहूँ की दँवरी यदि ओलपैड थ्रेशर से की जाय, तो एक जोड़ी बैलों से तीन जोड़ी बैलों के बराबर काम लिया जा सकता है। दँवरी का काम इस थ्रेशर द्वारा शीघ्र समाप्त किया जा सकता है।

मक्का

मक्का बहुत जल्द तैयार होनेवाली फसल है और इसमे यह क्षमता है कि यदि पूरी खाद और गुड़ाई इत्यादि मिले तो यह बहुत अधिक पैदावार दे सकती है। संकरण (hybridization) विधि द्वारा मक्का के ऐसे बीज संयुक्त राज्य अमेरिका में तैयार किये गये हैं, जो १०० मन से भी अधिक पैदावार प्रति एकड़ दे सकते हैं। अपने देश में भी अब मक्का का ऐसा संकर बीज तैयार किया जाने लगा है, जिसको प्रयोग में लाकर किसान ५०–६० मन प्रति एकड़ तक पैदावार पा सकते हैं। उत्तर प्रदेश में संकर मक्का टाइप १९ का कृषि विभाग द्वारा प्रचार हो रहा है।

किसानों के हित में यहाँ यह बतला देना भी आवश्यक है कि संकर मक्का का बीज विशेष ढंग से उत्पन्न किया जाता है और यदि उससे पैदा हुआ बीज पुनः बोया जाय तो पैदावार घट जाती है। अतः जो किसान संकर मक्का का बीज बोना चाहते हैं, उनके लिए यह आवश्यक है कि वे प्रति वर्ष संकर मक्का का बीज कृषि विभाग से या उन स्थानों से प्राप्त करें, जहाँ यह बीज विशेष ढंग से पैदा किया जाता है। यदि संकर मक्का न बोना हो तो पुरानी जातियों में टाइप ४१ सर्वश्रेष्ठ है और इसे ही किसानों को बोना चाहिए।

मक्का की फसल ढ़ाई-तीन महीने में जितनी अधिक बढ़ती है और उपज देती है, उतनी शायद ही कोई अन्य फसल देती हो। अतः इससे पूरी पैदावार

लेने के लिए यह आवश्यक है कि इसके जीवनकाल में पोषण की कमी कभी न पड़े और अन्य किसी प्रकार से इसे कष्ट न हो। गन्ना इत्यादि दीर्घजीवी फसलों को यदि १५–२० दिन तक किसी कारण पोषण न मिले, तो उनकी अंतिम पैदावार पर बहुत बुरा असर नहीं पड़ता, क्योंकि बाद में पोषण मिलने पर फसल के सँभल जाने का मौका रहता है। परन्तु मक्का-जैसी अल्पजीवी फसल के जीवन मे यदि १५–२० दिन की रुकावट पड़ जाय, तो पैदावार पर बहुत बड़ा असर पड़ सकता है। मवका के बढ़ने मे कोई रुकावट न पड़े, इसके लिए यह आवश्यक है कि भूमि में पोषक तत्त्वों की प्रचुरता सदा बनी रहे और नमी की भी कमी न पड़ने पाये। इसी लिए मक्का के खेत में कम-से-कम डेढ़ सौ पौंड नाइट्रोजन प्रति एकड़ देना चाहिए और यदि वर्षा ऋतु मे लम्बे अरसे तक वर्षा न हो तो सिचाई कर देनी चाहिए।

भूमि––मक्का के लिए दोमट मिट्टी, जिसमें पानी बिलकुल न रुकता हो, सबसे अच्छी होती है। यदि आलू और बरसीम के बाद मक्का बोया जाय, तो इसकी फसल बहुत ही अच्छी पैदा होती है। आलू में जितनी खाद दी जाती है वह सबकी-सब आलू में ही खर्च नहीं होती, इसलिए बाद में बोयी जानेवाली फसल को उससे लाभ पहुँचता है बरसीम स्वयं भूमि में इतनी उर्वरा शक्ति छोड़ती है कि आनेवाली मक्का की फसल को उससे अधिक लाभ पहुँचता है।

खेत की तैयारी––मवका का खेत खूब गहरा, यानी ९–१०" गहरा जोतना या गोड़ना चाहिए। गहरी जुताई के लिए मिट्टी पलटनेवाले दो हल, जिनमे से पिछले हल का मिट्टी पलटनेवाला तवा निकाल दिया गया हो, एक ही हराई में चलाने का ढंग अपनाया जा सकता है। इस ढंग से खेत ९–१०" तक गहरा जोता जा सकता है। यह जुताई सबसे पहले रबी की फसल कटने के तुरन्त बाद ही हो जानी चाहिए। गहरी जुताई के बाद चार-छः मामूली जुताइयाँ करके खेत की मिट्टी बारीक भुरभुरी बना लेनी चाहिए। बोआई के एक मास पहले २०–२५ गाड़ी गोबर की खाद देनी चाहिए और अंतिम जुताई के समय ढाई मन सुपरफास्फेट हराई में भूमि की सतह के लगभग चार इंच नीचे देना चाहिए। प्रथम वर्षा के तुरन्त बाद एक बोरी प्रति एकड़ के

हिसाब से अमोनियम सल्फेट खेत में मिलाना चाहिए और तब उसे जोतकर बोआई कर देनी चाहिए।

बोआई——बोआई लाइन से करनी चाहिए, जिससे निकाई-गुड़ाई में आसानी रहे। प्रयोगों से सिद्ध हुआ है कि यदि बराबर दूरी पर एक एकड़ भूमि में लगभग २० हजार पौधे रहें तो सबसे अधिक पैदावार होती है। इसके लिए एक पाँत से दूसरी पाँत की दूरी ढाई फुट और पाँत में एक पौधे से दूसरे की दूरी १०" होनी चाहिए। इसके बोने का दूसरा ढंग यह भी हो सकता है कि पूरे खेत में आड़े-आड़े और बेंड़े-बेंड़े, दोनों तरफ से ढाई-ढाई फुट की दूरी पर लाइनें लगा ली जायँ, और जहाँ ये लाइनें एक-दूसरी को काटें, वहाँ मक्का के तीन-तीन बीज बो दिये जायँ। इस प्रकार की बोआई से पौधों की संख्या भी उतनी ही रहती है, जितनी कि पहले ढंग से बोने में, परन्तु लाभ यह है कि इस ढंग से बोये हुए खेत में दोनों तरफ से बैलों द्वारा खीचे जानेवाले कल्टीवेटर चलाये जा सकते हैं और उनके द्वारा खेत में उगनेवाली घासों पर आसानी से काबू पाया जा सकता है।

फसल की देखभाल——खेत को घासों से हमेशा मुक्त रखना चाहिए। बैलों द्वारा चलनेवाले कल्टीवेटर या हाथ के निरायकों से कम-से-कम चार बार निकाई-गुड़ाई करनी चाहिए। यदि दस दिन तक लगातार वर्षा न हो और दोपहर के समय पत्ते कुम्हला जाने के लक्षण दिखाई दें, तो हलकी सिंचाई कर देनी चाहिए। यदि छेदक कीड़ों का आक्रमण हो तो उससे बचने के लिए एन्ड्रेक्स का छिड़काव करना चाहिए। मक्का की फसल को गीदड़ों से और कभी-कभी इन्सानों से भी काफी नुकसान होता है। इनसे बचने के लिए रखवाली का समुचित प्रबंध करना चाहिए। यदि हरे भुट्टे बेचने हों तो भुट्टों में दूध पड़ जाने पर उन्हें तोड़कर मंडी भेज देना चाहिए। यदि पक्का दाना लेना हो तो भुट्टों के पकने पर फसल को काटना चाहिए। काटने के बाद भुट्टे तोड़ लेने चाहिए और उनके ऊपर के छिलके को निकालकर कई दिनों तक सुखाना चाहिए। सूखकर जब दाने बिलकुल कड़े हो जायँ, तब या तो मशीन से या डंडों से पीटकर उन को अलग कर लेना चाहिए। परन्तु जिस दाने को अगले साल बोना हो उसको डंडे से पीटकर नहीं निकालना चाहिए। बीज के लिए

साबित भुट्टों को खूब अच्छी तरह सुखाकर किसी सुरक्षित स्थान पर, जहाँ नमी न पहुँचे, रखना चाहिए और बोने के पहले हाथ से दाने निकाल लेना चाहिए।

माइलो की खेती

माइलो एक नयी फसल है, जो संयुक्त राज्य अमेरिका से भारत में लायी गयी है। यह एक प्रकार की ज्वार है जिसके दाने का आटा रोटी बनाने के काम में लाया जा सकता है। इसका कद देशी ज्वार की तुलना में आधे के लगभग होता है, परन्तु भुट्टे काफी बड़े होते हैं, इसलिए पैदावार देशी ज्वार से अधिक होती है। अच्छे उपजाऊ खेतों से २५ से लेकर ३० मन प्रति एकड़ तक दाना प्राप्त किया जा सकता है। यह देशी ज्वार से लगभग एक महीने पहले तैयार हो जाती है, इसलिए इसके बाद उसी खेत में चना, मटर आदि रबी की फसलें बोयी जा सकती हैं।

इस फसल की यह विशेषता है कि अन्य फसलों की तुलना में इसे पानी की आवश्यकता सबसे कम होती है। जिन परिस्थितियों में पानी की कमी से मक्का की फसल नहीं हो सकती, उनमें माइलो पैदा की जा सकती है। यदि लम्बे अरसे तक वर्षा न हो तो भी इसकी फसल सूखकर नष्ट नहीं होती, पत्तियाँ थोड़ी सिकुड़ जाती हैं, पुनः वर्षा होने पर पौधा बढ़ने लगता है और पूर्ण रूप से विकसित हो जाता है। जिन वर्षों में वर्षा बहुत कम होती है उन वर्षों में भी इसकी फसल बहुत अच्छी हो जाती है। दूसरी विशेषता यह है कि यह यदि चारे के लिए बोयी जाय, तो एक बार फसल काट लेने के बाद दुबारा बढ़ जाती है और लगभग उतना ही चारा दूसरी कटाई में भी मिल जाता है, जितना पहली कटाई में मिलता है। पौधा बहुत नहीं बढ़ता, इसलिए चारा भी मुलायम रहता है।

माइलो बोने के लिए ऐसा खेत चुनना चाहिए, जिसमें पानी न भरता हो। खेत को समतल बना लेना चाहिए और पानी निकलने के लिए बहाव के रास्ते साफ रखने चाहिए, क्योंकि जड़ों के पास थोड़ा भी पानी एकत्रित होने पर फसल को बहुत नुकसान पहुँचता है।

यदि सम्भव हो तो वर्षा से पहले ही २–३ जुताई करके खेत को घासों से

मुक्त कर लेना चाहिए और प्रथम वर्षा होने पर १० गाड़ी प्रति एकड़ गोबर की खाद या कम्पोस्ट खेत में डालकर दो जुताई कर देनी चाहिए, जिससे खाद

चित्र २९––**माइलो के भुट्टे।**

खेत में अच्छी तरह मिल जाय। बोआई के पहले ३–४" की गहराई के नीचे डेढ़ मन प्रति एकड़ के हिसाब से सुपरफास्फेट खाद देनी चाहिए।

बोआई––माइलो बोने के ६० दिनों के अंदर पौधों में भुट्टे निकलना शुरू हो जाते हैं, अतः यदि वर्षा प्रारम्भ होते ही माइलो बो दी जाय, तो वर्षा समाप्त होने के पूर्व ही भुट्टे निकल आते हैं। उस समय कभी-कभी कई दिनों तक लगातार वर्षा होती रहती है और यह डर रहता है कि अधिक नमी के कारण भुट्टे काले न पड़ जायँ, या अन्य प्रकार से नुकसान न हो जाय। अतः इसे जुलाई के मध्य में बोना अच्छा होता है, क्योंकि पिछड़कर बोने से भुट्टे सितम्बर के अंत तक निकलते हैं। उस समय तक वर्षा कुछ धीमी पड़ जाती है और दाने धूप में पकने से निरोग रहते हैं।

इसकी बोआई पाँतवार करनी चाहिए। एक पाँत से दूसरी पाँत की दूरी दो

फुट रखनी चाहिए। खेत में डोरी से लाइन डाल लेने के बाद हल के पीछे से कूँड़ में बीज डाला जाता है। बोते समय बीज कुछ ज्यादा डाला जाता है, परन्तु उगने के बाद पहली निकाई के समय कमजोर पौधों को निकालकर शेष पौधों को ९ से १२" की दूरी पर छोड़ना चाहिए। पौधे जब लगभग ४–५" ऊँचाई के हो जायँ तब पहली निकाई-गुड़ाई करनी चाहिए। इसी समय प्रति एकड़ २५ पौंड के हिसाब से अमोनियम सल्फेट या अन्य रासायनिक खादों के रूप में नाइट्रोजन देना चाहिए। पहली निकाई-गुड़ाई के लगभग ३ सप्ताह बाद फिर दूसरी निकाई-गुड़ाई करनी चाहिए। दूसरी निकाई-गुड़ाई के समय भी २५ पौंड नाइट्रोजन रासायनिक खादों के रूप में देना उचित होगा।

उपर्युक्त क्रियाएँ करने के बाद कुछ भी करना शेष नहीं रह जाता। भुट्टे लगने पर यदि चिड़ियों का आक्रमण अधिक हो तो उनकी रखवाली का प्रबंध करना चाहिए। बीज को शुद्ध बनाये रखने के लिए यह भी आवश्यक है कि दो-चार पौधे, जो अन्य सभी पौधों की तुलना में अधिक बढ़ गये हों, निकाल दिये जायँ।

फसल तैयार होने पर भुट्टों को काटकर उन्हें पीटकर आसानी से दाना निकाला जा सकता है। यदि उपर्युक्त ढंग से पर्याप्त मात्रा में खाद दी गयी हो, खेत में पानी न रुकने दिया गया हो और समय-समय पर निकाई-गुड़ाई होती रही हो, तो ३० मन प्रति एकड़ तक माइलो की पैदावार प्राप्त की जा सकती है।

मूँगफली की खेती

मूँगफली के लिए बलुई या दोमट मिट्टी, जिसमें पानी बिलकुल न रुकता हो, सबसे अच्छी होती है। क्षारीय, अम्लीय या सख्त भूमि में और जिस भूमि में पानी रुकता हो उसमें मूँगफली न बोनी चाहिए, क्योंकि उनमें मूँगफली की पैदावार अच्छी नहीं होती है।

मौसम—मूँगफली अधिकतर वर्षा ऋतु में बोयी जाती है। जिन स्थानों में ४५" से अधिक वर्षा होती है वहाँ इसकी फसल अच्छी न होने का डर

रहता है, क्योंकि अधिक वर्षा इसके लिए अनुकूल नहीं होती। दक्षिण भारत में मूँगफली की दूसरी फसल भी सिंचाई द्वारा नवम्बर से अप्रैल के बीच में ली जाती है। वर्षा ऋतु की फसल की तुलना में नवम्बर से अप्रैलवाली फसल की पैदावार अधिक होती है। परन्तु उत्तर भारत में नवम्बर, दिसम्बर और जनवरी में इतनी अधिक ठंड पड़ती है कि मूँगफली पैदा नहीं की जा सकती, और फरवरी से जून तक इतनी अधिक गर्मी पड़ती है कि मूँगफली के लिए बहुत अधिक सिंचाई करनी पड़ेगी, जो आर्थिक दृष्टि से लाभकर सिद्ध न होगी। अतः उत्तर भारत में केवल वर्षा ऋतु में ही मूँगफली की खेती की जाती है। परन्तु यदि किसी क्षेत्र में सस्ती सिंचाई की सुविधा प्राप्त हो, तो गर्मी में मूँगफली की अच्छी फसल संभवतः प्राप्त की जा सकती है।

यद्यपि शुद्ध मूँगफली की तुलना मे उसकी मिली-जुली फसल कुछ कम पैदा होती है, फिर भी उसे बहुधा ज्वार, बाजरा, कपास, मक्का तथा अरहर के साथ मिलाकर बोते हैं। मूँगफली और अरहर को मिलाकर बोने का ढंग बहुत ही लाभकर सिद्ध हुआ है। इसका वर्णन ग्यारहवें अध्याय में किया गया है।

खेत की तैयारी—मूँगफली जड़ों में पैदा होती है। परागण (पालीनेशन) के बाद फूल भूमि के अंदर घुस जाते हैं और मूँगफली के रूप में विकसित होते हैं। यदि भूमि सख्त होगी तो फूलों को भूमि में घुसने में कठिनाई होगी और इसके कारण पैदावार भी कम होगी। अतः मूँगफली का खेत तैयार करने के लिए कम-से-कम एक बार गहरी जुताई और तीन-चार बार मामूली हल से जुताई करके मिट्टी को भुरभुरी बना लेना चाहिए।

खाद—ज्यादातर लोग मूँगफली मे खाद नहीं देते। परन्तु ऐसा करना ठीक नही है। यद्यपि मूँगफली फलीदार फसल होने के कारण स्वयं हवा से नाइट्रोजन लेकर भूमि मे एकत्रित करती है, फिर भी देखा गया है कि गोबर की खाद या कम्पोस्ट देने से पैदावार बढ़ जाती है। इन भारी खादों को देने से भूमि की बनावट में सुधार होता है और उसके कारण पैदावार मे वृद्धि होती है। १० गाड़ी प्रति एकड़ गोबर की खाद या कम्पोस्ट देना काफी होगा, इसके

अतिरिक्त सवा मन प्रति एकड़ सुपरफास्फेट देने से भी लाभ होगा। यदि गोबर की खाद या कम्पोस्ट न प्राप्त हो, तो उसके स्थान पर २५ सेर प्रति एकड़ अमोनियम सल्फेट देना चाहिए।

किस्में--मूँगफली की दो मुख्य किस्में होती है--एक गुच्छेवाली और दूसरी फैलनेवाली। गुच्छेवाली मूँगफली के पौधे खड़े रहते हैं और फैलनेवाली मूँगफली के पौधे खेत में फैल जाते हैं। आम तौर से यह देखा गया है कि फैलनेवाली मूँगफली दीर्घकालीन होती है और उसके पकने में लगभग साढ़े चार महीने लगते हैं। गुच्छेवाली मूँगफली अल्पकालिक होती है और उसे तैयार होने में साढ़े तीन महीने लगते हैं। दीर्घकालिक किस्मों की पैदावार अल्पकालिक किस्मों की तुलना में अधिक होती है। दीर्घकालिक किस्में वहाँ ही बोनी चाहिए जहाँ साढ़े चार महीने तक उनके लिए अनुकूल जलवायु हो। जहाँ बरसात कम होती हो वहाँ गुच्छेवाली अल्पकालिक मूँगफली बोना बेहतर होता है।

उत्तर प्रदेश की टाइप नंबर २५ फैलनेवाली और ए० के० १२,२४ गुच्छेदार मूँगफली की उन्नत किस्में हैं।

बोआई--वर्षा ऋतु की मूँगफली वर्षा प्रारम्भ होते ही बो देनी चाहिए। इसका बीज छीलकर बोया जाता है। परन्तु इस बात का हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि छीलते समय बीज के ऊपर लाल छिलकों को किसी तरह का कोई नुकसान न पहुँचे और साथ ही उसे बोआई से एक सप्ताह से अधिक पहले न छीला जाय।

मूँगफली की कुछ बीमारियाँ बीजों से फैलती हैं। इस लिए सरेसन या एग्रोसेन जी० एन० जैसी रासायनिक दवाइयों से इसके बीजों का पूर्वोपचार कर लेना चाहिए। इसके लिए सवा मन गिरी पर दो छटाँक रासायनिक दवा का प्रयोग करना चाहिए। इस दवा को बीज में मिलाने का सबसे अच्छा ढंग यह है कि बीज को तौलकर किसी एक घड़े में रखें और उपर्युक्त अनुपात में दवा बीज के ऊपर डालकर घड़े का मुँह किसी कागज से बाँध दें फिर ५ मिनट तक घड़े को खूब अच्छी तरह से झकझोरें, जिससे थोड़ी-थोड़ी दवा प्रत्येक बीज

में चिपक जाय। **इन दवाओं के प्रयोग में यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि ये बहुत ही जहरीली होती हैं। इसलिए दवा लगी हुई गिरी को घर के बच्चे या जानवर न खाने पायें, इसकी सावधानी रखी जाय और प्रयोग के बाद घड़ा नष्ट कर दिया जाय।**

मूँगफली को हमेशा लाइन से बोना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से निकाई-गुड़ाई में बहुत सुभीता रहता है। गुच्छेवाली किस्म को बोने के लिए लाइन से लाइन की दूरी एक फुट रखनी चाहिए और फैलनेवाली किस्मों के लिए डेढ़ फुट। गुच्छेवाली किस्म के बीज लाइन में ६–६" की दूरी पर और फैलनेवाली किस्मों को ९–९" के अंतर पर बोना चाहिए। गुच्छेवाली किस्म के लिए लगभग एक मन और फैलनेवाली किस्मों के लिए लगभग ३५ सेर प्रति एकड़ बीज की आवश्यकता होती है। बोआई सीधी लाइनें लगाकर हल के पीछे से या खुरपी से की जाती है। बीज दो इंच से कम नीचे नहीं बोना चाहिए, नहीं तो प्रायः इस बात का डर रहता है कि चिड़ियाँ उसे चुनकर खा जायेंगी। फसल के उगते समय रखवाली करनी चाहिए, क्योंकि दिन में चिड़ियों और गिलहरियों से और रात में गीदड़ और साही से उसे नुकसान पहुँचने का खतरा रहता है।

गुड़ाई––मूँगफली को अच्छी गुड़ाई से लाभ होता है। बोआई के २० दिनों बाद गुड़ाई करनी चाहिए, जब पौधे ५ या ६" के हो जायँ, फिर दूसरी गुड़ाई पहली गुड़ाई के २० दिनों बाद। यदि खेत में घासें उगी हों तो प्रत्येक गुड़ाई के पहले निकाई करना आवश्यक है। बोआई के ६ सप्ताह बाद पौधों में फूल लगना शुरू हो जाता है। उसके बाद निकाई-गुड़ाई करना ठीक नहीं होता, क्योंकि उससे उन फूलों के, जो मिट्टी में घुस गये हैं, टूटकर नष्ट हो जाने का डर रहता है।

सिंचाई––वर्षा ऋतु में बोयी जानेवाली फसल को साधारणतया सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती। परन्तु यदि फलियाँ लगने के समय लम्बे अरसे तक वर्षा न हो, तो एक सिंचाई कर देनी चाहिए।

खुदाई––जब पौधा पीला पड़ने लगे और पत्तियाँ गिरने लगें, तब समझना

चाहिए कि फसल पक चुकी है। उस समय जमीन को थोड़ा-सा खोदकर देख लेना चाहिए। पकने पर ऊपर का छिलका सख्त और भीतर का छिलका लाल हो जाता है। गुच्छेवाली फसलों के दाने जड़ों के पास होते हैं और यदि मिट्टी भुरभुरी हो तो पौधों को उखाड़ने से ९०% दाने पौधों के साथ निकल आते हैं। परन्तु फैलनेवाली किस्मों के दाने दूर-दूर तक फैले रहते हैं और उन्हें इकट्ठा करने के लिए पूरे खेत को गोड़ना या जोतना पड़ता है। यदि मिट्टी सख्त हो गयी हो, तो हलकी सिंचाई करके खुदाई करने में बहुत आसानी रहती है। परन्तु इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि सिंचाई अधिक न हो और खेत उतना ही सींचा जाय, जितने की खुदाई कर सकना एक या दो दिन में सम्भव हो। यदि पानी देकर खेत को अधिक समय के लिए छोड़ दिया जायगा, तो सम्भव है भूमि के अंदर पकी हुई तैयार गिरियाँ फिर से उगने लगें या सड़कर नष्ट हो जायँ। खुदाई के बाद मूँगफली को ६–७ दिनों तक धूप मे अच्छी तरह सुखाना चाहिए।

चेना सावाँ की खेती

अधिकतर किसान केवल खरीफ़ और रबी की फसलें बोने के आदी हैं। परन्तु जहाँ सिंचाई की सुविधा प्राप्त हो, वहाँ गर्मी के मौसम में एक तीसरी 'ज़ायद' (अतिरिक्त) फसल भी पैदा की जा सकती है। गर्मी में पैदा होनेवाली फसलों में चेना सावाँ सबसे प्रमुख है। बीज बोने के बाद यह ७५ से ८० दिनों के अंदर तैयार हो जाता है। इस अन्न की गिनती मोटे अनाजों में की जाती है। इसका दाना चिकना और सुनहले रंग का तथा सरसों के दाने से कुछ बड़ा होता है। यदि इसकी खेती ठीक से की जाय तो इसकी पैदावार बहुत अच्छी, अर्थात् २५ से ३० मन तक प्रति एकड़ हो जाती है। अन्न की कमी को पूरा करने के लिए देश मे ऐसी फसलों का अधिक से अधिक प्रचार होना चाहिए।

इसकी उपज बलुई दोमट भूमि में ही अच्छी होती है। मटियार मिट्टी में इसे नहीं बोना चाहिए, क्योंकि ऐसी मिट्टी में इसकी फसल अच्छी नहीं होती। जिन खेतों में आलू पैदा होता है, उन्हीं खेतों में यदि आलू के बाद इसकी फसल

बोयी जाय तो बहुत ही अच्छी पैदावार होती है। इसको गन्ना, लाही और मटर काट लेने के बाद खेत तैयार करके बोया जा सकता है। परन्तु बोने से पहले खूब खाद देनी चाहिए और खेत की मिट्टी भुरभुरी बना लेनी चाहिए। यदि

चित्र ३०—चेना सावाँ की फसल।

आलू के बाद चेना सावाँ की फसल बोयी जाय और आलू बोने के समय गोबर या कम्पोस्ट की खाद डाली जा चुकी हो, तो फिर चेना सावाँ बोने के समय और खाद डालने की आवश्यकता नहीं रह जाती। परन्तु यदि पहले से खाद नहीं पड़ी है तो लगभग १५ गाड़ी गोबर की खाद या कम्पोस्ट प्रति एकड़ डालना चाहिए।

इसके बोने का समय मध्य जनवरी से अंतिम मार्च तक है। परन्तु इस अवधि में जितनी ही जल्दी बो दिया जाय, उतनी ही कम सिंचाई करनी पड़ती है। पिछड़कर बोयी हुई फसल में सिंचाई अधिक करनी पड़ती है और अधिक सिंचाई करने पर भी कभी-कभी तेज पछवाँ हवा के कारण दाने अच्छी तरह नहीं पड़ते। इसको बोने का सबसे अच्छा समय खिचड़ी के त्यौहार का यानी

मकरसंक्रान्ति का दिन माना जाता है, जो प्रति वर्ष १४ जनवरी को पड़ता है। प्रतापगढ़, रायबरेली, सुल्तानपुर और बनारस जिलों में जहाँ इसकी खेती अधिक होती है, किसान इसे खिचड़ी के दिन ही बोते है। इसका बीज १० सेर प्रति एकड़ डाला जाता है। बोने के पहले बीज को १२ से २४ घंटे तक पानी में भिगोकर रखने से फसल बराबर उगती है। बोने के समय खेत में नमी पर्याप्त होनी चाहिए। यदि नमी कम हो तो खेत सींचकर बोना चाहिए। बोने के सात-आठ दिनों बाद चेना सावाँ उग आता है। उगने के १०–१५ दिन बाद खेत में कुछ घास उग आयी हो तो उसे निकालकर एक हलकी सिंचाई कर देनी चाहिए। ४–६ दिन बाद खेत उखड़ने पर उसकी भौराई करनी पड़ती है।

भौराई के बाद ८–१० दिनों तक खेत की मिट्टी सूखने दी जाती है, उसके बाद दूसरा पानी देना चाहिए। दूसरा पानी देने के साथ राख और लोना मिट्टी देने का भी रिवाज है। जहाँ लोना मिट्टी न मिल सके वहाँ अमोनियम सल्फेट या यूरिया की खाद देनी चाहिए। २५ सेर यूरिया खाद प्रति एकड़ काफ़ी होगी। कहीं-कहीं दूसरा पानी देकर क्यारियों में पानी भर जाने के बाद झाँखर से झाड़ू देकर फसल को पानी में लिटा देते हैं। ऐसा करने से, कहा जाता है, पौधों में कल्ले अधिक निकलते हैं। परन्तु ऐसा करने में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि पौधे केवल लेट ही जायँ, न कि उखड़ जायँ। दूसरी सिंचाई करने के बाद और कुछ करने को बाकी नहीं रह जाता, केवल आवश्यकतानुसार हर दसवें, पंद्रहवें दिन सिंचाई करते रहना चाहिए। फसल फूटने से पककर तैयार होने तक सिंचाई पर विशेष ध्यान देना चाहिए, क्योंकि इस समय पानी की कमी से पैदावार घटने की सम्भावना रहती है।

कटाई के संबंध में यह सावधानी रखनी चाहिए कि फसल ज्यादा न सूख जाय, नहीं तो दाने झड़ जाने की सम्भावना रहती है। इसलिए जब दाने कुछ अधपके रहें, तभी फसल को काटकर खलिहान में २–३ दिनों के लिए पही बनाकर रख देना चाहिए। ऐसा करने से अधपके दाने २–३ दिनों में पक जाते हैं और दँवरी के समय बड़ी आसानी से छूट जाते हैं।

इसके दानों के ऊपर एक से अधिक पतले छिलके होते हैं, जिन्हें ढेंकी में कूटकर अलग किया जा सकता है। इन दानों से अरवा और भुजिया दोनों

प्रकार का चावल तैयार किया जा सकता है। एक मन दाने में लगभग ३२ सेर चावल तैयार होता है।

'पानी अधिक देना पड़ता है' यह सोचकर किसान इसकी खेती से घबड़ाते हैं, परन्तु यदि सस्ती दर पर सिंचाई हो सकती हो तो इसकी खेती लाभदायक होती है। इसे यदि उचित समय से बोया जाय तो ५ सिंचाइयों में फसल तैयार हो जाती है। यदि १० रुपया प्रति एकड़ प्रति सिचाई भी खर्च लगे तो उसका कुल मूल्य ५० रुपया होगा। इसके अतिरिक्त १५ रुपया प्रति एकड़ खेत की तैयारी, ४ रुपया बीज का दाम, २० रुपया प्रति एकड़ भौराई, १० रुपया प्रति एकड़ कटाई-दँवरी, ५० रुपया प्रति एकड़ कम्पोस्ट और रासायनिक खाद की कीमत, कुल जोड़कर १४९ रुपया प्रति एकड़ खर्च आता है। यदि २५ मन प्रति एकड़ की भी पैदावार हो और १२ रुपया प्रति मन के हिसाब से बिके, तो भी आमदनी ३०० रुपया और मुनाफा १५० रुपया प्रति एकड़ होता है। यह मुनाफा किसानों को केवल ७५ दिनों मे प्राप्त हो जाता है।

कभी-कभी दैवी प्रकोप के कारण ओले इत्यादि पड़ने से यदि गेहूँ की फ़सल मारी जाय, तो चेना सावाँ पैदा करके किसान अपने खाने के लिए अन्न पैदा कर सकता है और भुखमरी से बच सकता है। इसी प्रकार उन क्षेत्रों में, जहाँ प्रायः बाढ़ आया करती है, किसानों के लिए उचित होगा कि वे बरसात शुरू होने के पहले ही एक फसल चेना सावाँ की पैदा करके कम-से-कम अपने भोजन का प्रबंध कर लें, जिससे यदि बाढ़ में उनकी खरीफ़ की फसल खराब हो जाय तो भी उनको भूखों न मरना पड़े।

बरसीम

बरसीम एक दलहन जाति की फसल है। यह अक्टूबर महीने में बोयी जाती है और नवम्बर के अंत से अप्रैल के अंत तक ४–५ कटाई में ५००–६०० मन ऐसा हरा चारा देती है जो बहुत ही पौष्टिक होता है। इसके लिए अनुमान लगाया गया है कि छः सेर हरा चारा कोई एक सेर चने के दाने के बराबर पौष्टिक होता है। जानवरों के दाने की खुराक में तीन चौथाई कमी करके उसकी जगह पर यदि बरसीम का हरा चारा दिया जाय, तो न तो जानवरों के काम कनेर

और न उनके दूध देने की क्षमता पर कोई बुरा प्रभाव पड़ेगा। बरसीम जितनी उपयोगी जानवरों के लिए है उतनी ही भूमि के लिए भी है। इसमें भूमि को उर्वरा बनाये रखने की जितनी शक्ति है, उतनी शायद ही किसी दूसरी दलहन की फसल में हो। पंजाब में ऊसर जमीन को सुधारने के लिए बरसीम का प्रयोग किया गया। वर्षा ऋतु में ऊसर खेतों में धान बोया जाता था और जाड़ों में बरसीम उगाकर उसको हरी खाद की तरह पलट दिया जाता था। ऐसा करने से तीन ही वर्षों में भूमि की दशा सुधर गयी और चौथे वर्ष जब परीक्षण के लिए गेहूँ बोया गया, तब उसकी उपज २१.६६ मन प्रति एकड़ हुई। बरसीम से क्रमशः भूमि की दशा किस प्रकार सुधरी, इसका अनुमान उसकी उस पैदावार से, जो चार वर्षों में निम्नलिखित मात्राओं में मिली, लगाया जा सकता है--

वर्ष	फसल	पैदावार, मन प्रति एकड़
१९३३–३४	धान	२.३४
१९३४–३५	धान	७.८१
१९३५–३६	धान	१९.७५
१९३६–३७	गेहूँ	२१.६७

बरसीम का हरी खाद की तरह उपयोग करने से गन्ना-जैसी फसल के लिए भी नाहर से खाद डालने की बहुत कम आवश्यकता रह जाती है। यदि इसे काटकर जानवरों को खिला दिया जाय तो भी इसकी गिरी हुई पत्तियों और जड़ों से भूमि इतनी उर्वरा हो जाती है कि अगली खरीफ की फसलें खाद दिये बिना भी अच्छी पैदावार देती हैं। लेखक के अपने फार्म पर पिछले २० वर्षों से की जा रही बरसीम की खेती का अनुभव बतलाता है कि भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाने में बरसीम अद्वितीय है।

बरसीम तीन प्रकार से बोयी जा सकती है—

(१) खेत में लेव लगाकर,

(२) मिट्टी को नम करके सूखी बोआई द्वारा,

(३) छिटकवाँ बोकर।

(१) **खेत में लेव लगाकर बोआई**--बरसीम बोने का यह सबसे सफल

ढंग है। खेत में पानी भर दिया जाता है और देशी हल से जोतकर उसी तरह लेव तैयार कर लिया जाता है जैसे धान बोने के लिए तैयार किया जाता है। फिर पटेला चलाकर खेत को बराबर करके बरसीम छींटकर बो दी जाती है। इस ढंग से बोने में इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि बोने के १२ घंटे बाद खेत में पानी न लगा रह जाय, क्योंकि पानी अधिक समय तक लगा रहने से बीज के सड़ जाने का डर रहता है। इस ढंग से बोने के लिए १० सेर बीज प्रति एकड़ चाहिए। यदि मुख्य उद्देश्य बरसीम का बीज पैदा करना हो, तो ८ सेर प्रति एकड़ बीज बोना चाहिए।

सूखी बोआई—जिन स्थानों में लेव लगाने के लिए पानी की कमी हो या इसके साथ अन्य फसलें बोनी हों, तो खेत में पलेवा करके खूब नमी पैदा कर लेना चाहिए और खेत ज्यों ही उखड़े, उसमें २–३ जुताई करके मिट्टी बारीक बना लेनी चाहिए। अंत में पटेला देकर बीज छीटकर बो देना चाहिए। यदि खेत मे नमी काफी होगी तो बोआई के बाद दो-तीन बार पटेला चला देने से बीज मिट्टी में घुस जायगा और दो-तीन दिनों में उग आयेगा। परन्तु यदि कुछ नमी की कमी हो तो बीज को अरहर के झाँखर से झाड़ू की तरह चलाकर मिला देना चाहिए और फिर पाटा चला देना चाहिए। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बीज भूमि में बहुत नीचे न जाने पाये, नहीं तो वहीं सड़ जायगा। इस ढंग से बरसीम बोने के लिए १२ सेर प्रति एकड़ बीज बोना चाहिए।

छिटकवाँ बोआई—अगहनी धान के खेतों में धान कटने के पहले ही यदि भूमि में उपयुक्त नमी हो, तो बरसीम को खड़ी फसल पर छींटकर बोया जा सकता है। बरसीम का बीज नीचे पहुँच जाता है और उपयुक्त नमी पाकर उग आता है, फिर नीचे ही नीचे बढ़ता रहता है। धान कटने के बाद उसको बढ़ने का मौका मिलता है और वह शीघ्र ही फैलकर पूरे खेत को ढक लेता है।

बरसीम दलहन की एक नयी फसल है, जिसकी खेती हमारे देश में पहले नहीं होती थी। अतः इसकी जड़ों में रहनेवाले जीवाणु सभी जमीनों में नहीं पाये जाते। जिन खेतों में इसकी खेती पहले-पहल करनी हो, उनमें इसकी जड़ों मे रहनेवाले जीवाणुओं को पहुँचाना आवश्यक है। इसके लिए दो उपाय हैं—

(१) बीज के साथ कल्चर (जीवाणु युक्त मिट्टी) मिलाकर बोना।

(२) जिन खेतों में बरसीम की खेती पहले से होती आयी हो, उनकी मिट्टी लाकर नये खेतों में मिलाना।

बरसीम का कल्चर निम्नलिखित पते से मिल सकता है —

प्लान्ट पैथालाजिस्ट टू, यू० पी० गवर्नमेंट,
राजकीय कृषि कालेज, कानपुर।

कल्चर के प्रयोग का ढंग बड़ा सरल है। एक डब्बे का कल्चर एक एकड़ के लिए काफी होता है। थोड़े गुड़, शीरे या चीनी का शर्बत तैयार कर कल्चर को उसी में मिलाकर गाढ़ा घोल तैयार कर लेना चाहिए। एक एकड़ के लिए १० सेर बरसीम के बीज पर इस गाढ़े घोल को छिड़क-छिड़ककर तब तक मिलाते रहना चाहिए जब तक घोल समाप्त न हो जाय और बीज के प्रत्येक दाने मे कुछ-न-कुछ घोल का अंश चिपक न जाय। फिर बीज को छाया में सुखाकर, ज्यो ही वह बोने योग्य हो जाय, खेत में बो देना चाहिए।

बरसीम एक दलहन की फसल है, इसे नत्रजनीय खाद या उर्वरक की आवश्यकता नहीं होती। परन्तु फास्फेटिक खाद देने से इसे बहुत लाभ होता है। फास्फेटिक खाद देने से इतना ही नही कि बरसीम की पैदावार और इसका पौष्टिक गुण बढ़ जाता है, बल्कि भूमि में नाइट्रोजन इकट्ठा करने की इसकी क्षमता भी बढ़ जाती है। अतः बरसीम को हमेशा सुपरफास्फेट खाद देकर बोना चाहिए। लेव लगाने के पहले खेत में सुपरफास्फेट छींटकर तब लेव लगाना चाहिए। इससे भी अच्छा ढंग यह होगा कि खेत में पानी भरने के पहले ही अंतिम सूखी जुताई के समय कूँड़ में भूमि की सतह से ४" नीचे सुपरफास्फेट दिया जाय। बोने के ६ सप्ताह बाद पहली कटाई के लिए बरसीम तैयार हो जाती है। पहली बार यदि यह कुछ कम ही बढ़ी हो, तो भी इसे काट लेना चाहिए, क्योंकि काट लेने के बाद ही यह अधिक बढ़ती है। काटते समय ध्यान रखना चाहिए कि बिलकुल जड़ के पास यह न काटी जाय, बल्कि ३–४" छोड़ कर काटी जाय।

प्रायः पहली कटाई के समय कम चारा मिलता है, यह कमी बरसीम को सरसों या लाही के साथ मिलाकर बोने से पूरी की जा सकती है। लाही तेजी से बढ़ती है और पहली कटाई के समय काफ़ी चारा दे देती है। पहली कटाई के बाद बरसीम पूरे खेत पर शीघ्रता से फैल जाती है।

बोने के दो सप्ताह बाद पहला पानी दिया जाता है, उसके पश्चात् हर कटाई के बाद एक पानी देना पड़ता है। कुल मिलाकर चार-पाँच सिंचाइयों की आवश्यकता पड़ती है।

यदि बरसीम का हरा चारा आवश्यकता से अधिक हो तो उसे सुखाकर रखा जा सकता है। यदि ठीक से सुखाया जाय तो सुखाये हुए चारे का पौष्टिक गुण लगभग हरे चारे के बराबर ही रहता है। सुखाने के लिए उसे साफ़-सुथरी जगह में तेज धूप मे फैला देना चाहिए और जब एक तरफ से सूख जाय तब पलट-कर दूसरी तरफ से भी सुखा लेना चाहिए। पलटाई सुबह करनी चाहिए जब वह ओस से नम रहे। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि पत्तियाँ कम-से-कम टूटने पायें, क्योंकि पत्तियों के टूट जाने से पौष्टिक गुण कुछ कम हो जाता है।

बरसीम का बीज लेने के लिए फरवरी के अंतिम सप्ताह तक तीन कटाइयों के बाद कटाई बंद कर देनी चाहिए और आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहना चाहिए। बीज औसतन ढाई-तीन मन प्रति एकड़ पैदा हो जाता है। यदि बीज न लेना हो तो अप्रैल के अंत तक हरा चारा मिलता रहता है।

तम्बाकू

धनोपार्जन के लिए तम्बाकू की फसल भारतवर्ष की एक प्रमुख उपज है। देश भर में इसकी खेती ९ लाख एकड़ में होती है, जिससे १९४ करोड़ रुपयों का माल तैयार होता है। तम्बाकू भारत से विदेशों को भेजा जाता है जिससे विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है।

तम्बाकू के इतने प्रकार हैं और वे इतने भिन्न-भिन्न ढंग से भिन्न-भिन्न उद्देश्यों, अर्थात् सिगार, सिगरेट, बीड़ी इत्यादि बनाने, हुक्के में पीने, खाने और सूँघने आदि के लिए तैयार किये जाते हैं कि उन सबका वर्णन इस छोटी-सी पुस्तक में कर सकना कठिन है। यहाँ केवल तम्बाकू की खेती की रूप-रेखा ही दी जा रही है। विशेष जानकारी के लिए विशेषज्ञों तथा तम्बाकू के अनुभवी किसानों से परामर्श करना आवश्यक है।

भूमि—तम्बाकू के लिए हलकी दोमट मिट्टी, जिसमें पानी का निकास अच्छा हो, सर्वोत्तम होती है। किन्तु हलकी दोमट या भारी दोमट दोनों तरह

की मिट्टियों में तम्बाकू पैदा किया जा सकता है। ऐसी भूमि, जिसमें लोना का अंश अधिक रहता है तथा खारी कुओं से सिंचाई होती है, तम्बाकू के लिए विशेष उपयुक्त होती है।

किस्में——यों तो तम्बाकू की पचासों किस्में है, परन्तु दो ही उनमें से अधिकांश रूप में बोयी-बैठायी जाती है——

(१) देशी या पूर्वी तम्बाकू (Nicotiana Tobacum)

(२) बिलायती या कलकतिया (Nicotiana Rustica)

देशी तम्बाकू का पौधा लम्बा होता है। पत्ते लम्बे, नोकदार और चिकने होते हैं। यह सिगरेट, सिगार और बीड़ी बनाने के काम में अधिक आता है। परन्तु उत्तर भारत मे इस किस्म को भी हुक्के और खाने का तम्बाकू बनाने के लिए पैदा करते है। इसके फूल गुलाबी रंग के होते है। इसकी खेती सारे देश में होती है।

कलकतिया या बिलायती के पौधे छोटे होते हैं, पत्ते कुछ गोल और सिकुड़े हुए रहते है। इस तम्बाकू से बीड़ी, सिगरेट और सिगार नहीं तैयार किये जा सकते। यह केवल हुक्के मे पीने, खाने और सूँघने के काम आता है। इसके फूल पीले होते है। इसके लिए कुछ ठडा जलवायु चाहिए, इसलिए इसकी खेती केवल उत्तर भारत मे होती है। उत्तर भारत में तम्बाकू की दो फसलें बोयी जाती हैं; एक जाड़े की ऋतु में और दूसरी गर्मियों में। जाड़े की फसल अगस्त या सितम्बर में बोयी, नवम्बर में रोपी और अप्रैल में काटी जाती है। गर्मीवाली फसल जनवरी-फरवरी में बोयी, मार्च-अप्रैल में रोपी और मई-जून में काटी जाती है।

बेहन तैयार करना——बेहन तैयार करने के लिए खूब उपजाऊ और ऊँची भूमि, जिस पर पानी न रुकता हो, छाँटनी चाहिए। यदि पानी का निकास ठीक न हो और पानी रुकने का डर हो तो भूमि से ६" उभरी हुई क्यारियाँ तैयार करनी चाहिए। क्यारियों की चौड़ाई चार फुट और लम्बाई आवश्यकतानुसार होनी चाहिए। दो क्यारियों के बीच में डेढ़ फुट जगह छूटी रहनी चाहिए, जिसमें से मिट्टी उठाकर क्यारियों को ऊँचा करने के काम में लाना चाहिए। मिट्टी निकल जाने के बाद बीच-बीच का स्थान पानी के निकलने के लिए नालियों के रूप में हो जायगा। बाद में इन्हीं नालियों में बैठकर बियाड़ की

निकाई की जा सकती है। ५० वर्गगज में तम्बाकू के ६००० पौधे तैयार किये जा सकते हैं। चूंकि हर प्रकार के तम्बाकू के पौधों की दूरी भिन्न-

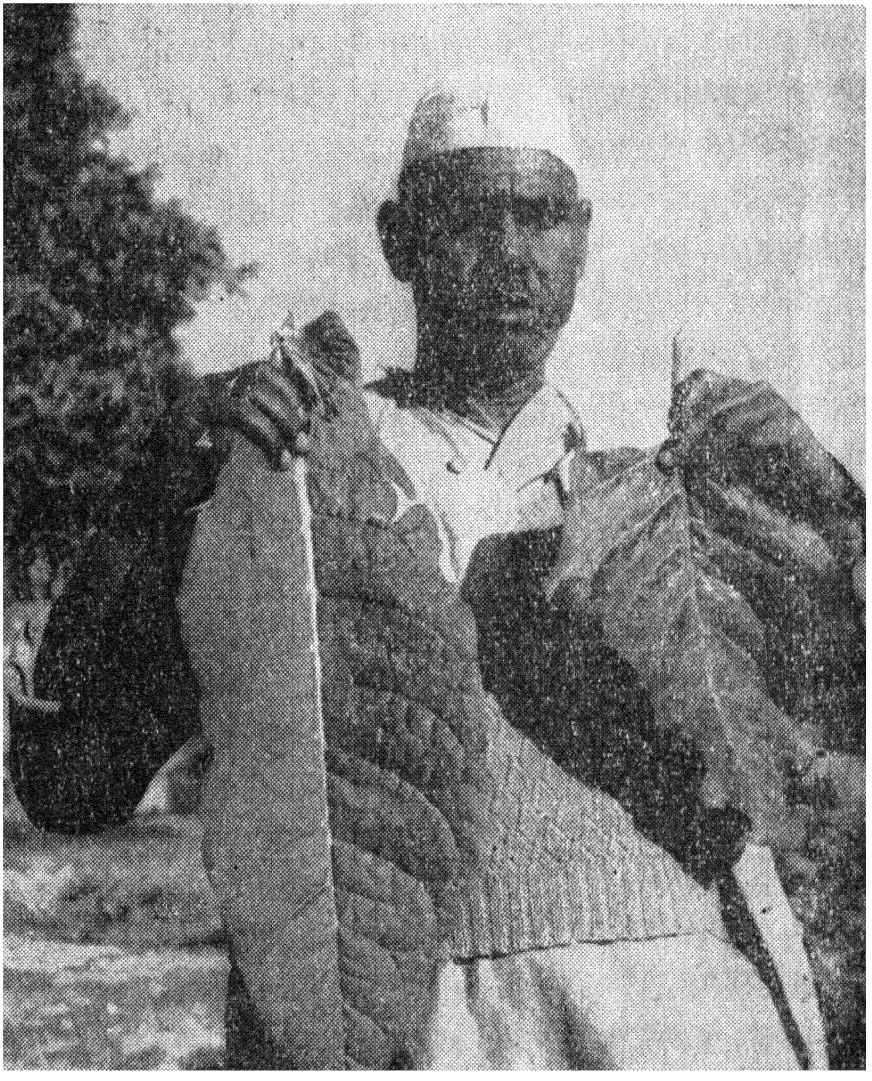

चित्र ३१—**बायीं ओर देशी और दायीं ओर कलकतिया तंबाकू के पत्ते।**

भिन्न होती है, इसलिए जिस प्रकार के तम्बाकू की खेती करनी हो उसके लिए पहले यह हिसाब लगाना चाहिए कि एक एकड़ में कितने पौधों की आवश्यकता पड़ेगी। फिर ५० वर्गगज में ६००० पौधों के हिसाब से बियाड़ का क्षेत्रफल

निश्चित कर लेना चाहिए। प्रायः किसान बीज बहुत घना बोते हैं। परन्तु ऐसा करने से पौधे बहुत कमज़ोर रहते हैं जिसका पैदावार पर बुरा प्रभाव पड़ता है। बियाड़ की भूमि को गहरी जुताई या गुड़ाई से खूब अच्छी तरह तैयार कर लेना चाहिए। यह देखा गया है कि यदि बियाड़ के ऊपर सूखे घास-फूस, कंडा इत्यादि रखकर फूँक दिये जायँ, तो बाद में पौधों की उपज बहुत अच्छी होती है और वे अधिक स्वस्थ होते हैं। इसका कारण यह है कि जलने से खर-पतवार के बीज तथा कुछ बीमारियों के बीजाणु नष्ट हो जाते हैं और तम्बाकू को इन सबसे मुक्त रहकर बढ़ने का अच्छा अवसर मिलता है।

दक्षिण भारत मे छोटे बीजवाले तम्बाकू का १ सेर बीज बियाड़ के एक एकड़ में बोया जाता है। परन्तु उत्तर भारत में देशी तम्बाकू का बीज ८ सेर प्रति एकड़ और कलकतिया का बीज १६ सेर प्रति एकड़ बोया जाता है। बीज बोने के बाद इसे ठीक तरह से मिट्टी मे मिला देना चाहिए, ताकि वह चौथाई इंच से आधे इंच तक नीचे भूमि में पहुँच जाय। बोने के बाद बियाड़ को दबा देना चाहिए। अच्छा तो यह होगा कि उस पर कोई हलका रोलर वगैरह दो-तीन बार चला दिया जाय, जिससे वह ठीक तरह से दब जाय। इस ढंग से बियाड़ बराबर भी हो जाता है और मिट्टी भी बीज के चारों तरफ दब जाती है। इस दबाव के तुरन्त बाद हलका पानी बियाड़ पर छिड़क देना चाहिए, जिससे उसम नमी तो हो जाय, परन्तु पानी बहने लायक न पड़े। पानी छिड़कने के पहले यदि पयाल की एक हलकी तह बियाड़ पर बिछा दी जाय, तो नमी देर तक रुकी रहेगी और उससे बीज उगने में सहायता मिलेगी। तम्बाकू का बीज ५ या ६ दिन में उग आता है। इस बीच बियाड़ की भूमि में नमी बनाये रखना आवश्यक होता है, परन्तु कीचड़ बनने या बहने लायक पानी नहीं देना चाहिए।

बियाड़ में कभी-कभी फफूँदी की बीमारी लग जाती है और नये पौधे सूखकर गिर जाते हैं। यह बीमारी बड़ी तेजी से फैलती है। इसे रोकने के लिए बोर्डो मिक्सचर २–२–५० को फसल के ऊपर छिड़कना चाहिए या आधा पाव पेरीनाक्स ढाई कनस्टर पानी में घोलकर छिड़कना चाहिए। यह क्रिया पौधे में दो पत्ते निकल आने या बोने के २०–२५ दिन बाद आरम्भ करनी चाहिए। पहला छिड़काव बोआई के तीन सप्ताह बाद करना चाहिए और फिर प्रति

सप्ताह एक बार छिड़कते रहना चाहिए। यदि बराबर पानी बरसता रहे और आकाश बादल से घिरा रहे, तो दवा हर पाँचवें दिन छिड़कनी चाहिए। तम्बाकू के खेत में कार्य करते समय तम्बाकू खाना नहीं चाहिए। सम्भव है खानेवाले तम्बाकू में कोई बीमारी हो जो थूक के साथ नयी फसल में भी फैल जाय।

जब तक पौधे छोटे रहते हैं, तब तक तम्बाकू के बियाड़ में नाइट्रोजन की खाद घोल के रूप में देनी चाहिए। इससे पौधे जल्दी बढ़ेंगे। आधा सेर अमोनियम सल्फेट दो कनस्टर पानी में घोलकर ५० वर्गगज बियाड़ में सप्ताह में एक बार डालना चाहिए। अमोनियम सल्फेट का घोल छिड़कने के बाद पानी छिड़क देना चाहिए, जिससे पत्तों के ऊपर से अमोनियम सल्फेट धुल जाय। अमोनियम सल्फेट का घोल पौधों के उगने के तीन-चार सप्ताह बाद आरम्भ करना चाहिए और चार-पाँच सप्ताह तब तक देना चाहिए, जब तक पौधे खेत में लगाने लायक तैयार न हो जायँ। पौधे लगाने के एक सप्ताह पहले से पानी देना बंद कर देना चाहिए जिससे पौधे कुछ पुष्ट हो जायँ।

पौधे बैठाना—तम्बाकू की रोपाई करने के लिए खेत अच्छी तरह तैयार करना चाहिए। हुक्का और खानेवाले तम्बाकू के खेत में डेढ़ सौ से दो सौ मन गोबर की खाद और दो मन अमोनियम सल्फेट डालना चाहिए। गोबर की खाद रोपाई के तीन-चार सप्ताह पहले डालनी चाहिए और अमोनियम सल्फेट आधा रोपाई के दिन और आधा एक महीने बाद, जब पौधे कुछ बड़े हो जायँ, डालना चाहिए। १०० पौंड सुपरफास्फेट और १०० पौंड पोटाश की खाद भी गोबर की खाद के साथ ही डालनी चाहिए। सिगरेट के तम्बाकू में नत्रजनीय खाद अधिक नहीं देनी चाहिए, नहीं तो उसका रंग खराब हो जाता है। उसके लिए मक्का की हरी खाद सबसे अच्छी पायी गयी है। मक्का की हरी खाद में यह विशेषता है कि यह भूमि में ह्यूमस की मात्रा तो बढ़ा देती है, परन्तु नाइट्रोजन की मात्रा नहीं बढ़ाती।

दक्षिण भारत में सिगरेट का तम्बाकू ढाई-ढाई फुट की दूरी पर बैठाया जाता है। परन्तु उत्तर भारत में हुक्का और खाने का तम्बाकू घना बैठाया जाता है। देशी तम्बाकू १०×१०" की दूरी पर और बिलायती १२×६" की दूरी पर बैठाया जाता है।

बियाड़ में हर एक पौधा बराबर नहीं होता। इसलिए छाँट-छाँटकर जो पौधे बड़े हों उनको सँभालकर ऐसा निकाला जाय कि उनकी जड़ें न टूटें, और लगा दिया जाय। ५–६ पत्तोंवाले पौधे रोपाई के लिए अच्छे होते हैं। नीचे की ओर भूमि से सटे हुए पत्तों को रोपाई के समय निकाल देने से फसल को लाभ होता है। जिन पौधों की जड़ें टूट जायँ उनकी रोपाई न की जाय, क्योंकि उनके सूख जाने से खेत बीच-बीच में खाली हो जाता है। अच्छा यह होगा कि तीसरे पहर के बाद पौधे उखाड़कर तुरन्त ही लगा दिये जायँ। यदि किसी कारण से कुछ पौधे रह जायँ, तो उनकी पतली तह लगाकर ऊपर से कोई भी भीगा कपड़ा डाल देना चाहिए। रात में पौधों को खुला रखना चाहिए। सूखे हुए पौधों की रोपाई नहीं करनी चाहिए, नहीं तो बाद में उनके मर जाने से बहुत जगह खाली रह जाती है। खाली जगहों में भी एक सप्ताह या १० दिन के अंदर ही दूसरे पौधों की रोपाई कर देनी चाहिए। यदि इस काम में देर लग जाती है तो बाद में पौधे बहुत पिछड़ जाते हैं और पुराने पौधों के दबाव से बढ़ते नहीं।

रोपाई के बाद ४–५ दिनों तक पौधों को पानी देते रहना चाहिए, जिससे वे जम जायँ। जब पौधे हरे हो जायँ, तब सिंचाई आठवें-दसवें दिन करनी चाहिए। परन्तु जब गर्मी बढ़ जाय तो फिर सिंचाई चौथे-पाँचवें दिन करनी चाहिए। अच्छी रोपाई के बाद पौधे ५% से अधिक नहीं मरते। रोपाई के बाद पौधे जब हरे हो जायँ, तब खेत की निकाई-गुड़ाई करनी चाहिए, जिससे खेत में घासें उगने न पायें और खेत की नमी भी बनी रहे। सिगरेट के तम्बाकू की, जो दूर-दूर बैठाया जाता है, गुड़ाई बैलों द्वारा कल्टीवेटर से की जाती है। परन्तु हुक्का और खानेवाले तम्बाकू में, जो नजदीक-नजदीक बैठाया जाता है, हाथ से ही गुड़ाई सम्भव है। जब पौधों में फूल आने लगें, तो उनके फूल को ऊपर से तोड़ देना चाहिए। ऐसा करने से सारा खाद्य पदार्थ पत्तियों में ही, जिनके लिए तम्बाकू की खेती की जाती है, पहुँचता है। ऊपर का फूल तोड़ देने पर बहुत-सी शाखाएँ निकलने लगती हैं, इन्हें भी फसल तैयार होने के पहले ५–६ बार तोड़ना चाहिए। यदि इन शाखाओं को तोड़ते न रहें, तो पुरानी पत्तियाँ खराब हो जाती हैं। तम्बाकू की खेती में यह बहुत ही आवश्यक कार्य है।

चित्र ३२—तम्बाकू के पौधों में फूलों को ऊपर से तोड़ देना चाहिए। (पृ० १५६)

जब पत्तियों में हलका पीलापन और चिपचिपाहट आ जाय, तब समझना चाहिए कि तम्बाकू की फसल काटने के लिए तैयार हो गयी। यदि वर्षा के कारण चिपचिपाहट धुल जाय, तो पुनः चिपचिपाहट तक रुके रहना चाहिए। उत्तर भारत में इस फसल के पूरे पौधे काट लिये जाते है और खेत में ही दो-तीन दिन सूखने के लिए छोड़ दिये जाते हैं। इनको सुबह शाम उलटते रहना चाहिए। तेज गर्मी होने के कारण पत्ते सूखकर पीले रंग के हो जाते हैं। डंठल और पत्तों के बीच की नसें बिलकुल सूखने नहीं देनी चाहिए। खेत में सुखाने के बाद देशी तम्बाकू के पौधे दो से ढ़ाई फुट गहरे गड्ढों में रखे जाते हैं। साधारणतया उन गड्ढों की लम्बाई ६ फुट और चौड़ाई ४ फुट होती है। तम्बाकू की पत्तियों के चारों तरफ पयाल की एक तह लगा दी जाती है। तम्बाकू के पौधों की जड़े किनारे की तरफ और पत्ते अंदर की तरफ रखकर गड्ढा भर दिया जाता है और पयाल से ढककर ऊपर से कुछ मिट्टी डाल दी जाती है। इस प्रकार से देशी तम्बाकू एक सप्ताह तक रखा जाता है।

कलकतिया तम्बाकू का ढेर खुले में धरती पर लगाया जाता है और ऊपर से पयाल या तम्बाकू की हरी शाखाओं और बोरों से उसे ढक दिया जाता है। यह ढेर ८–१० दिन तक इसी तरह पड़ा रहता है। कलकतिया के पूरे पौधों के बंडल बना लिये जाते हैं और देशी तम्बाकू के केवल पत्ते निकालकर उनको रस्सी के रूप में बँट लिया जाता है। जबसे कर लगा है तबसे कहीं-कहीं कलकतिया के भी डंठल अलग कर लिये जाते हैं, क्योंकि डंठल पर आबकारी-कर पत्ती के मुकाबले में कम लगता है। पत्तियों के बंडल भी तीन-चार दिन तक एक ढेर में रखे जाते हैं। पत्तियों का मोटा हिस्सा अंदर की ओर रखा जाता है और ढेर गोल चक्र के रूप में बनाया जाता है। तीन दिन के बाद पत्तियों का ढेर खोल दिया जाता है और तम्बाकू बाजार में बेचने के लिए तैयार हो जाता है। तम्बाकू सिझाने का काम जो लोग करते हैं, उनसे यह रीति सीखना आवश्यक है, क्योंकि इसमें थोड़ी-सी भी भूल होने से तम्बाकू का रंग और स्वाद खराब होने का डर रहता है। तम्बाकू को उचित ढंग से सिझाना, खेत में तम्बाकू पैदा करने से भी अधिक अनुभव का कार्य है।

अध्याय १०

फल और तरकारियों की खेती

फल और तरकारियों की खेती स्वय एक अलग बहुत बड़ा विषय है। इस छोटी-सी पुस्तक में इस विषय के सभी पहलुओं पर प्रकाश डालना सम्भव नहीं। कुछ थोड़े फलों और तरकारियों की खेती का वर्णन यहाँ केवल इसलिए कर दिया जा रहा है कि इनकी खेती द्वारा थोड़े क्षेत्रफल से अधिक आमदनी प्राप्त की जा सकती है, जो वास्तव में गहन खेती का उद्देश्य है।

आलू की खेती

आलू की खेती में सफलता प्राप्त करने के लिए अच्छे स्वस्थ बीज का प्रयोग सबसे अधिक आवश्यक है। खाद-पानी सभी का पूरा प्रबंध होते हुए भी, यदि बीज घटिया किस्म का बोया जायगा, तो पैदावार अच्छी न होगी। आलू की बहुत-सी बीमारियाँ बीज से ही फैलती हैं। अतः किसान का यथा-सम्भव प्रयत्न होना चाहिए कि वह बीज ऐसे स्थान से प्राप्त करे, जहाँ से उसे विश्वास हो कि रोग-रहित बीज मिलेगा। बीज लेते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए।

(१) बीज एक ही नस्ल का हो,

(२) बीज स्वस्थ, साफ और एक-सा हो,

(३) बीज में आँखें निकलना प्रारम्भ हो गया हो, परन्तु वे बहुत बड़ी न हो पायी हों। आलू सख्त हो, सिकुड़ा तथा पिलपिला न हो।

(४) बीज बहुत छोटे न हों। छोटे बीज बोने से पैदावार कम होती है। जितना ही बड़ा आलू बीज में बोया जायगा उतनी ही अधिक पैदावार होगी। परन्तु बीज का आकार बहुत बड़ा होने पर वह बहुत मँहगा पड़ता है। इसलिए आर्थिक दृष्टि से बीज के लिए $\frac{3}{4}$ इंच से $1\frac{1}{4}$ इंच तक के आकार का बीज ठीक समझना चाहिए। यह देखा गया है कि बड़े आकार का आलू बोने पर कुल पैदावार तो अधिक होती है, परन्तु छोटी साइज के आलू का अनुपात अधिक

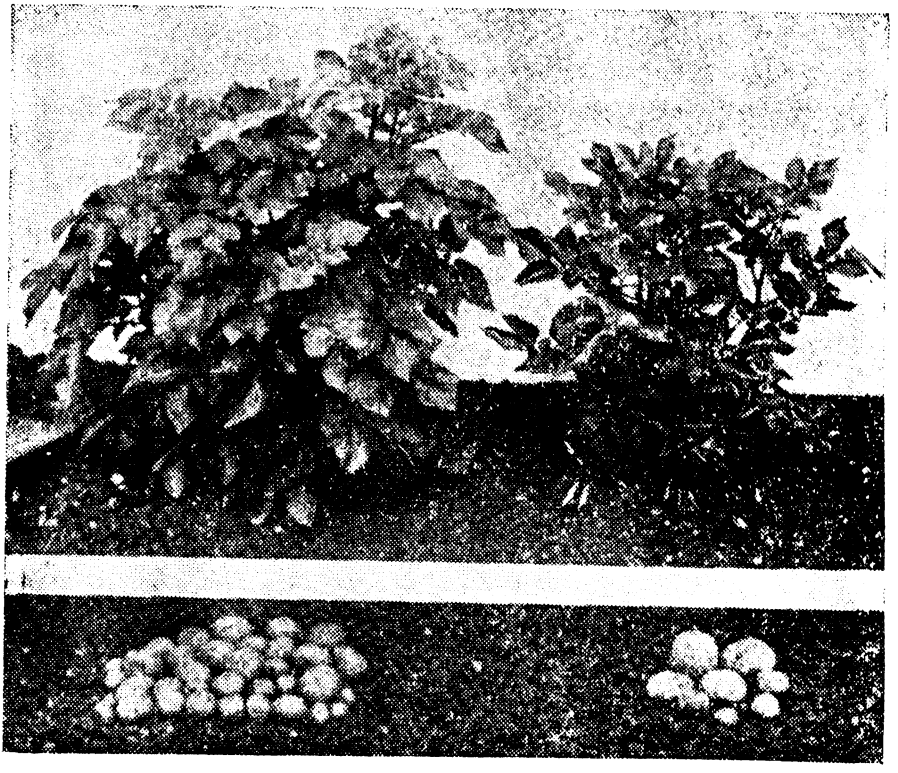

चित्र ३३—**स्वस्थ और रोगग्रस्त आलू के पौधे और उनकी उपज।**

रहता है। अतः बीज लेने के लिए आलू पैदा करना हो तो बड़ी साइज़ का आलू बोना चाहिए। एक एकड़ में कितना आलू का बीज लगेगा, यह निम्न-लिखित फार्मूला से निकाला जा सकता है।

$$\text{बीज की आवश्यकता मनों में} = \frac{१३५}{२ \times न \times स}$$

जहाँ न = १ छटाँक में बीजों की संख्या

स = क्षेत्रफल वर्गफुट में जो एक पौधे के लिए छोड़ी जाती है।

उदाहरण—यदि औसतन एक छटाँक में ४ आलू के बीज चढ़ते हैं और लाइन से लाइन की दूरी डेढ़ फुट और लाइन में पौधों को एक दूसरे से दूरी ९" रखी जाती है, तो—

$$न = ४$$

और $$स = १\frac{१}{२} \times \frac{९}{१२} = \frac{३}{२} \times \frac{३}{४} = \frac{९}{८}$$

इसलिए ऐसे बीज से १८" × ९" की दूरी पर १ एकड़ खेत बोने के लिए

$\frac{१३५}{२ \times ४ \times \frac{९०}{८}}$ मन = १५ मन की आवश्यकता होगी।

(नोट--यह फार्मूला आलू के अतिरिक्त अन्य फसलों की भी बीज-मात्रा मालूम करने के प्रयोग में लाया जा सकता है।)

(५) सितम्बर-अक्टूबर की बोआई के लिए पूरे आलू बोना चाहिए। नवम्बर के प्रारम्भ से आलू काटकर बोया जा सकता है। इसके पहले काटकर बोने से गर्मी अधिक होने के कारण बीज सड़ने का डर रहता है। काटकर बोते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि प्रत्येक टुकड़े में एक या दो आँखें अवश्य हों। कटा हुआ आलू, कटने के तुरन्त बाद बो देना चाहिए, नहीं तो नुकसान होने का डर रहता है।

किस्में

आलू की कई किस्में होती हैं। मैदानों की प्रमुख किस्में निम्नलिखित हैं।

फुलवा--यह चार से पाँच महीने में तैयार होनेवाली किस्म है। उत्तर भारत में इसकी खेती बड़े क्षेत्र में की जाती है। पैदावार अच्छी होती है। आलू सफेद रंग का, छोटे और मध्यम आकार का होता है। इस किस्म के आलू का बीज ज्यादा समय तक आसानी से सुरक्षित रखा जा सकता है। जिन स्थानों पर आलू शीघ्र बिकने की सम्भावना न हो और जहाँ कोल्ड स्टोर की सुविधा न हो, वहाँ फुलवा किस्म का आलू बोना चाहिए, क्योंकि खोदने के बाद यह ज्यादा समय तक अच्छी दशा में रखा जा सकता है।

दार्जिलिंग लाल गोल--यह भी पिछड़कर तैयार होनेवाली किस्म है, परन्तु फुलवा से कुछ पहले तैयार होती है। इसकी खेती भी उत्तर भारत में बड़े क्षेत्र में की जाती है। पैदावार अच्छी होती है। आलू का आकार मध्यम और रंग लाल होता है। यह ज्यादा समय तक सुरक्षित नहीं रखा जा सकता, यदि शीघ्र न बिके तो कोल्ड स्टोर में रखना चाहिए। स्वाद अच्छा और पैदावार अधिक होने के कारण इसकी लोकप्रियता बढ़ रही है। इसी जाति में से छाँट

कर एक सुधरी हुई नस्ल आलू-अनुसंधान केन्द्र, शिमला में तैयार की गयी है, जिसे सी० पी० आर० आई० रेड या 'कुफ्री रेड' कहते हैं।

मिलिटरी स्पेशल, अप-टू-डेट या नम्बरी——यह मध्यम समय में ३, ४ महीने में तैयार होनेवाली आलू की एक अच्छी जाति है। इसका आलू कुछ लम्बा और बड़े साइज़ का होता है, यह सफेद रंग का और पकने में शीघ्र गलनेवाला है। सितम्बर के अंत और अक्टूबर में बोने के लिए मैदानों में पैदा हुआ और कोल्ड स्टोर में सुरक्षित इसका बीज बोना चाहिए, परन्तु जाड़ों में बोने के लिए पहाड़ों पर पैदा हुआ बीज प्रयोग में लाना चाहिए।

हाई ब्रिड २२३६——यह एक नयी जाति का आलू है जो संकरण विधि द्वारा आलू-अनुसंधान केन्द्र, शिमला में तैयार किया गया है। बिहार, उत्तर प्रदेश, बंगाल और उड़ीसा में यह बहुत ही सफल सिद्ध हुआ है। इसका आलू बड़े आकार का, कुछ लम्बा और सफेद रंग का होता है। यह अपटूडेट की तरह जल्द तैयार होनेवाली जाति है।

साठा——यह एक शीघ्र, ढाई-तीन महीने में, तैयार होनेवाली जाति है। परन्तु आलू का आकार छोटा होता है और पैदावार कम होती है। जहाँ जल्दी पैदा होने के कारण भाव अच्छा मिलने की सम्भावना हो, वहाँ इस जाति का आलू बोया जाता है। इसकी खेती बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश में छोटे पैमाने पर होती है, क्योंकि ६० या ६५ दिनों बाद खोदने पर पैदावार ५०–६० मन से अधिक नहीं होती।

सभी किसान यह चाहते हैं कि आलू शीघ्र तैयार करके मण्डी में अच्छे भावों पर बेच लिया जाय। परन्तु उन्हें यह समझना चाहिए कि वे चाहे साठा किस्म का आलू बोयें या अन्य किसी किस्म का, शीघ्र खोदने पर उसकी पैदावार बहुत कम होगी। दार्जिलिंग लाल गोल या अपटूडेट आलू को भी ६० दिनों बाद खोदकर ६०–७० मन प्रति एकड़ आलू प्राप्त किया जा सकता है। परन्तु यदि यही आलू छोड़ दिया जाय और चार महीने के बाद पकने पर खोदा जाय तो लगभग २५० मन पैदा होगा। लेखक का अनुमान है कि ६० दिनों के बाद आलू की पैदावार प्रति दिन प्रति एकड़ ५ मन बढ़ती है। संयुक्त राज्य अमेरिका में आलू खोदने के समय के पैदावार पर पड़नेवाले प्रभाव का परीक्षण किया

गया। इस परीक्षण का फल आगे दिया जाता है। इन अंकों से भी इसी बात की पुष्टि होती है कि पौधों के विकसित हो जाने के बाद आलू की पैदावार प्रति दिन लगभग ५ मन बढ़ती है।

खुदाई की तारीख	सूखी पत्तियाँ प्रतिशत	कुल पैदावार बुशल मे। दैनिक वृद्धि बुशल मे (एक बुशल लगभग $\frac{2}{5}$ मन)	
जुलाई ३१	०	३८.७	५
अगस्त ७	१	८७.७	७.०
अगस्त १४	८	१४१.५	७.७
अगस्त २३	२२	२०३.२	६.९
अगस्त ३०	९९	२५३.९	७.२

अतः आलू शीघ्र खोदकर बेचने मे कोई विशेष लाभ नहीं है। जितना भाव गिरता है उतनी ही पैदावार बढ़ती है, इसलिए बाद मे खोदने पर भी आमदनी लगभग उतनी ही होती है, या उससे कुछ अधिक होती है, जितनी जल्दी खोदने पर। फसल शीघ्र खोदने से लाभ केवल उसी दशा मे सम्भव है, जब पहली फसल खोदकर उसी खेत में आलू की दूसरी फसल बोयी जाय। सितम्बर के अतिम सप्ताह या अक्टूबर के प्रथम सप्ताह में आलू की पहली फसल बोकर और दिसम्बर के प्रथम सप्ताह मे इसे खोदकर १५ दिसम्बर तक दूसरी आलू की फसल बो दी जाय, तो एक ही खेत मे आलू की दो फसले प्राप्त की जा सकती है और दोहरा लाभ उठाया जा सकता है।

अगाही (शीघ्र तैयार होनेवाली) आलू की फसल की सफलता के लिए साधारण फसल की तुलना मे दूनी खाद डालनी चाहिए। बीज भी बड़े बोने चाहिए और उन्हें जरई करके आँखे निकल आने पर बोना चाहिए।

बोआई तथा अन्य क्रियाएँ

आलू की खेती के लिए दोमट और हलकी दोमट ज़मीने सबसे अच्छी सिद्ध हुई है। खेत ऐसे हों जिनमे बरसात मे पानी न ठहरता हो, वे ऊँचे-नीचे न हों और वहाँ सिंचाई के साधन किसान के पास पूरे हों, ताकि वह जब चाहे सिचाई कर सके।

खेत की तैयारी

आलू की फसल लेने से पहले गर्मी में निर्दिष्ट खेत से मोठ, लोबिया, मूँग आदि फलीदार फसलें चारे और दाने के लिए ले ली जायँ तो खेत की उर्वरा शक्ति बढ़ जायगी। जून के दूसरे पखवारे में घनी सनई ५० सेर प्रति एकड़ के हिसाब से बो देनी चाहिए और उसको अगस्त महीने के दूसरे सप्ताह में पाटा देकर मिट्टी पलटनेवाले हल से खेत मे दबा देना चाहिए। इस तरह सनई या ढेचा की हरी खाद खेत मे देने से उसकी उर्वरा शक्ति बहुत बढ जाती है। इसके बाद सितम्बर के महीने में आलू के खेतों की बार-बार जुताई होनी चाहिए और हर जुताई के बाद पाटा फेरना चाहिए, ताकि सब ढेले फूट जायँ और खेत की मिट्टी बारीक हो जाय। सितम्बर के आरम्भ में दो एक जुताइयाँ करने के बाद प्रति एकड़ २५ गाड़ी गोबर की खाद या कम्पोस्ट की खाद डालकर उसको खेत में बराबर बखेरकर जुताइयाँ करते रहना चाहिए। कम्पोस्ट या गोबर की खाद के अतिरिक्त बोते समय अमोनियम सल्फेट और सुपरफास्फेट ढाई मन और तीन मन प्रति एकड़ के हिसाब से देना चाहिए। बोते समय कुदाली से नालियाँ बनायी जाती हैं, इन्हीं नालियों में उपर्युक्त मात्राओं के अनुसार रासायनिक उर्वरक डालकर उन्हें दुबारा कुदाली से गोड़कर मिट्टी मे अच्छी तरह मिला देना चाहिए। इस प्रकार जब रासायनिक खादें मिट्टी में अच्छी तरह मिल जायँ, तब नालियों में आलू बो देना चाहिए। आलू के लिए राख बहुत उपयोगी है। मिल सके तो प्रति एकड़ ५ मन राख भी खेत में डालनी चाहिए।

बोआई—आलू की बोआई हस्त नक्षत्र समाप्त होने पर और चित्रा के आरम्भ में १० अक्टूबर के आस-पास कर देनी चाहिए। बोआई के पहले ध्यान रखना चाहिए कि खेत में इतनी नमी हो कि आलू उसी नमी पर उग आये। बोने के लगभग २० दिन बाद आलू उगने लगता है। इस बीच खेत की सिंचाई नहीं करनी चाहिए। उगने से पहले सिचाई करने से जमीन कड़ी हो जाती है, कुछ बीज सड़ जाते हैं और जो उगते हैं उनके पौधे भी कमजोर निकलते हैं। सितम्बर के अत में यदि नमी की कमी हो तो आलू के खेत में पलेवा करके और फिर चार जुताइयाँ करके तब आलू बोना चाहिए। आलू की नालियाँ करीब ३" गहरी और १५ से १८" की दूरी पर बनानी चाहिए और इनकी

लम्बाई लगभग २० फुट होनी चाहिए। इन्हीं नालियों या गूलों में ९–९" के फासले पर बीज बोने चाहिए। बोने के बाद गूलों के ऊपर माँझे से चार इंच ऊँची मेंड़ें बना देना चाहिए।

सिंचाई––आलू बोआई के लगभग २० दिन बाद उग आता है। जब पौधे मिट्टी से तीन इंच ऊँचे हो जायँ तब सिंचाई करके उनकी निराई कर देनी चाहिए। निराई के समय यह ध्यान रखना चाहिए कि पौधों के चारों ओर की मिट्टी भुरभुरी हो जाय, परन्तु उनकी जड़ों को हानि न पहुँचने पाये। जब पौधे ६ से ९" ऊँचे हो जायँ तब उनके किनारे पुनः गुड़ाई करके मिट्टी चढ़ा देनी चाहिए। मिट्टी चढ़ाते समय पौधों की जड़ों के पास ढाई मन प्रति एकड़ के हिसाब से अमोनियम सल्फेट खाद बुरककर मिट्टी चढ़ानी चाहिए। मिट्टी चढ़ जाने के बाद जल्दी-जल्दी हलकी सिंचाई करते रहना चाहिए। प्रयत्न यह होना चाहिए कि नमी बराबर बनी रहे, परन्तु पानी न तो खेत में रुके और न मेंड़ों के ऊपर ही चढ़ने पाये। सिंचाई इत्यादि के कारण, यदि कहीं मेंड़ों पर से मिट्टी बह जाय, तो उसे पुनः चढ़ा देना चाहिए, क्योंकि जो आलू मिट्टी के नीचे दबा नहीं रहेगा, वह हरा हो जायगा और खाने योग्य नहीं रहेगा।

आलू की सिचाई के लिए खारा पानी प्रयोग में न लाना चाहिए।

अच्छी पैदावार के लिए आलू पर बोर्डो मिक्सचर छिड़किए

आलू में लेट ब्लाइट या दीर्घ झुलसा की बीमारी इतनी प्रचलित है कि इसकी रोक-थाम के लिए यह आवश्यक है कि फसल पर बोर्डो मिक्सचर का या इसी प्रकार की कीटनाशक दवाओं का प्रयोग किया जाय। यह देखा गया है कि दीर्घ झुलसा की बीमारी खेत में फैल जाने के बाद दवाएँ छिड़कने से भी उसे रोकना कठिन हो जाता है। अतः अच्छे किसान फसल पर बोर्डो मिक्सचर का छिड़काव आलू की खेती के लिए आवश्यक समझते है और बिना इस बात का खयाल किये कि इस रोग के लक्षण दिखाई देते हैं या नहीं, वे आलू पर मिट्टी चढ़ाने के बाद दवा का छिड़काव शुरू कर देते हैं और फसल तैयार होने तक १५–१५ दिन का अन्तर देकर छिड़काव करते रहते हैं।

दीर्घ झुलसा की बीमारी के प्रथम चिह्न पत्तों के नीचे मुलायम बादामी रंग के दाग आ जाना है। इन दागों के चारों ओर सफेद रुई की तरह की फफूंदी का

चक्कर बन जाता है। ढंडे और नम जलवायु में यह बीमारी बहुत तेजी से फैलती है और एक सप्ताह के अन्दर ही पूरी फसल पर छा जाती है। बीमारी की बढ़ी हुई दशा में सभी पत्तियाँ झुलस जाती हैं और पौधा समय से पूर्व मर जाता है। आलू में बीमारी पहुँच जाने पर वह बदरंग हो जाता है और उसमें सड़न पैदा हो जाती है। ऐसे आलू, जिनमें इस बीमारी की छूत पहुँच चुकी हो, बोने से अगले वर्ष बीज से ही बीमारी फैलना शुरू हो सकता है। खुदाई के समय भी यदि रोग लगी हुई पत्तियों के सम्पर्क में आलू आयेगा, तो सम्भव है, इस बीमारी के कण आलू के साथ चिपककर सुरक्षित रहें और अगले वर्ष की फसल को नुकसान पहुँचायें। इसलिए यह आवश्यक है कि जिस खेत के आलू को बीज के प्रयोग में लाना हो, उसकी फसल की पत्तियों को काटकर खेत से अलग कर देना चाहिए और उसके बाद खुदाई शुरू करनी चाहिए।

ऊपर बताया जा चुका है कि इस बीमारी से बचने के लिए बोर्डो मिक्सचर का छिड़काव सबसे उत्तम है। बोर्डो मिक्सचर बनाने का ढंग यह है कि पाँच सेर कापर सल्फेट (तूतिया) लेकर ५० गैलन पानी में एक कपड़े या बोरी में बाँधकर घुलने के लिए लटका देना चाहिए। रात भर में वह धीरे-धीरे पानी में घुल जायगा। इसी प्रकार पाँच सेर बरी का चूना लेकर ५० गैलन पानी में घोलना चाहिए। इसको घोलने के लिए चूने के गिट्टकों को किसी बर्तन में रखकर उनके ऊपर धीरे-धीरे पानी डालना चाहिए और जब चूना बुझ जाय तब उसमें और पानी मिलाकर ५० गैलन पूरा कर देना चाहिए। फिर इन दोनों घोलों को बराबर मात्रा में उस बर्तन मे मिलाना चाहिए, जिसके द्वारा पम्प करके दवा का छिड़काव करना है।

मिलाने के पहले दोनों घोलों को मोटे कपड़े से छान लिया जाय, तो स्प्रेयिंग मशीन के छेद भर जाने का डर न रहेगा। दोनों घोल मिलाते समय एक लकड़ी से उन्हें बराबर चलाते रहना चाहिए। इस प्रकार का जो घोल तैयार होगा वह आसमानी नीले रंग का होगा। घोल तैयार होने पर २४ घंटे के अंदर उसका प्रयोग कर लेना चाहिए, क्योंकि ज्यादा समय बीतने पर वह बेकार हो जाता है। शुरू में जब पौधे छोटे रहते है तब ६० से ७५ गैलन प्रति एकड़ तक

इस घोल की आवश्यकता होती है, परन्तु पौधों के बढ़ जाने पर १०० से १२५ गैलन की आवश्यकता होती है।

यदि जाड़ों में वर्षा न हो तो बोर्डो-मिक्सचर का छिड़काव कुछ कम किया जा सकता है, क्योंकि आर्द्र जलवायु में ही बीमारी फैलने का डर अधिक रहता है।

खुदाई—आलू की खुदाई के कुछ समय पूर्व सिचाई बन्द कर देनी चाहिए। आलू का पौधा पीला पड़ने लगे और उसकी पत्तियाँ और डंठल सूखने लगें, तभी आलू को खोद लेना चाहिए। खुदाई में देरी करने से नुकसान होने का डर रहता है। खोदते समय खेत की मिट्टी गीली न होनी चाहिए, वह आलू में चिपकी रह जाती है। इसका भी ध्यान रखना चाहिए कि खुदाई में आलू कटने न पाये। खोदने के बाद आलू को छाया में रखना चाहिए। लगभग एक सप्ताह बाद उसका छिलका मजबूत हो जाता है। कोल्ड स्टोर मे रखने के पहले आलू को एक सप्ताह बाहर रखना लाभप्रद है, क्योंकि ऐसा करने से आलू का छिलका मजबूत हो जाता है और वह जहाँ कटा-पिटा रहता है वहाँ सूख भी जाता है। परन्तु यदि खुदाई के तुरन्त बाद ही उसे कोल्ड स्टोर में रख दिया जाय तो छिलका कमजोर रहने और आलू के जख्म ताजे बने रहने के कारण कोल्ड स्टोर से निकालते ही वह सड़ने लग जाता है। आलू को जब कोल्ड स्टोर में न रखना हो तब उसे आलू की तितली से बचाने के लिए विशेष प्रयत्न करना चाहिए। इसके लिए आलू जब खेत में खुदे, उसी समय से कपड़े से ढका रहना चाहिए और गोदाम में भी बारीक जाली के दरवाजे होने चाहिए, ताकि आलू की तितली पहले से आलू की आँखों में अंडे न दे सके, नही तो अंडों से कीड़े पैदा होकर आलू को सड़ा देंगे।

गाँवों में आलू का बीज सुरक्षित रखने की विधि

आलू सुरक्षित करने का सबसे उत्तम ढंग कोल्ड स्टोर में रखना है। परन्तु जिन स्थानों पर कोल्ड स्टोर की सुविधा प्राप्त न हो, वहाँ के किसान भी यदि थोड़ी-सी सावधानी से काम लें तो आलू का बीज सुरक्षित रख सकते है।

आलू रखने के लिए मिट्टी का एक गोदाम बनाना पड़ता है। गोदाम निम्नलिखित ढंग से तैयार किया जाना चाहिए।

किसी बड़े पेड़ की घनी छाया में, आवश्यकतानुसार १०'-१०' या १०'-२०' नाप का एक ऐसा स्थान गोदाम के लिए चुनना चाहिए, जिस पर सूर्य का प्रकाश सीधा न पड़ता हो। यह स्थान यदि किसी बाग के बीच में हो तो और अच्छा होगा। गोदाम ९-१० फुट ऊँचा होना चाहिए। इस ऊँचाई का जितना भाग भूमि की सतह के नीचे रहेगा, गोदाम उतना ही ठंडा रहेगा और आलू रखने की दृष्टि से उतना ही वह उपयोगी होगा। परन्तु उन स्थानों में, जहाँ वर्षा ऋतु में पानी की सतह दो तीन फुट के ऊपर आ जाती है, वहाँ कुल गोदाम भूमि की सतह के ऊपर ही बनाना चाहिए। इस बात का ध्यान रखते हुए कि वर्षा ऋतु मे गोदाम में पानी न आ जाय, गोदाम जितना सतह से नीचे बनाना हो वहां की मिट्टी खोदकर निकाल देनी चाहिए, और नीचे से कच्ची ईंटों की जुड़ाई शुरू कर देनी चाहिए। इस काम के लिए पक्की ईंटों का प्रयोग न करना चाहिए, क्योंकि वे गर्म हो जाती हैं। जब दीवार की ऊँचाई ९–१० फुट हो जाय, तो पटरे रखकर छत मिट्टी से पाट देनी चाहिए। मिट्टी की इस छत के ऊपर दो छप्पर रख देने चाहिए, जिससे बरसात का पानी सीधे गोदाम की छत पर न पड़े।

गोदाम में एक छोटा दरवाजा और पूर्व-पश्चिम की दीवारों में दो खिड़कियाँ होनी चाहिए। दोनों खिड़कियों मे भीतर से बारीक जाली लगी रहनी चाहिए, जिससे आलू का पतिगा या दूसरे कीड़े-मकोड़े उसमें न घुस सकें। दरवाजा और खिड़की इस तरह से बने होने चाहिए कि उन्हे बद कर देने पर बाहर से हवा का प्रवेश न हो सके। गोदाम से ८ फुट की दूरी पर चारों तरफ दो लाइन देशी केले की लगा देनी चाहिए, जो गर्म हवा को रोकने का काम करेंगी। गोदाम की छत और भूमि की सतह के ऊपर निकली हुई दीवारों को सफेद चूने से पोत देना चाहिए, जिससे उन पर पड़नेवाली सूर्य की किरणें वापस लौट जायँ। गोदाम के अंदर बाँस के रैक बनाकर ५–६" गहरी टोकरियों में आलू रखना चाहिए। टोकरियों में तीन-चार परत से ज्यादा आलू नहीं रखना चाहिए। बीज के आलू पर डी० डी० टी० मिली हुई मोटे दाने की स्वच्छ बालू फैला देने से पतिगों द्वारा नुकसान का डर और कम हो जाता है।

परन्तु खाने के लिए निर्दिष्ट आलू पर डी० डी० टी० का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

गोदाम की दोनों खिड़कियाँ रात को दस बजे से साढ़े पाँच बजे तक खुली रखी जाती है और शेष समय में बिलकुल बंद। ऐसा करने से गोदाम में रात की ठंडी हवा भर जाती है जो उसको दिन में ठंडा बनाये रहती है। रात्रि में १० बजे से प्रातः साढ़े पाँच बजे तक का समय सबसे ठंडा रहता है। उस समय की ठंडी हवा कमरे में भर जाने से और बाहर से गर्म हवा न आ सकने के कारण कमरे का तापक्रम लगभग उतना ही बना रहता है, जितना वह २४ घंटे में सबसे नीचे उतरता है।

आलू रखने के उपर्युक्त ढंग की सफलता निम्नलिखित बातों पर निर्भर करती है। इनका विशेष ध्यान रखना चाहिए।

(१) आलू फुलवा किस्म का हो।

(२) खिड़कियाँ नियमित ढंग से समय पर खोली और बंद की जायँ।

(३) आलू छोटे आकार के रखे जायँ जो कटे-पिटे न हों और निरोग हों।

(४) जिस आलू को सुरक्षित रखना हो उसे गर्मी शुरू होने के पहले ही फरवरी के अंत में खोद लेना चाहिए।

मल्चिंग

आलू की खेती का एक उत्तम ढंग

आलू की बोआई साधारण ढंग से करके यदि उसे पयाल या अन्य किसी प्रकार की सूखी पत्तियों की ३–४" मोटी तह से ढक दिया जाय तो आलू की पैदावार लगभग ३३% तक बढ़ जाती है। लेखक ने अपने फार्म पर इस ढंग की उपयोगिता का अनुमान लगाने के लिए एक प्रयोग किया था। इस प्रयोग में खेत के बराबर छः टुकड़े किये गये और इनमें से प्रत्येक में बराबर-बराबर खाद डाली गयी। इन टुकड़ों में एक ही दिन एक ही किस्म का आलू बोया गया। बोआई तक सभी क्रियाएँ एक-सी ही की गयीं, किन्तु उसके तुरन्त बाद तीन टुकड़ों पर ३–४" मोटी तह धान के पयाल की बिछा दी गयी और शेष तीन टुकड़े यों ही छोड़ दिये गये। जिन टुकड़ों पर पयाल बिछाया गया था उनमें

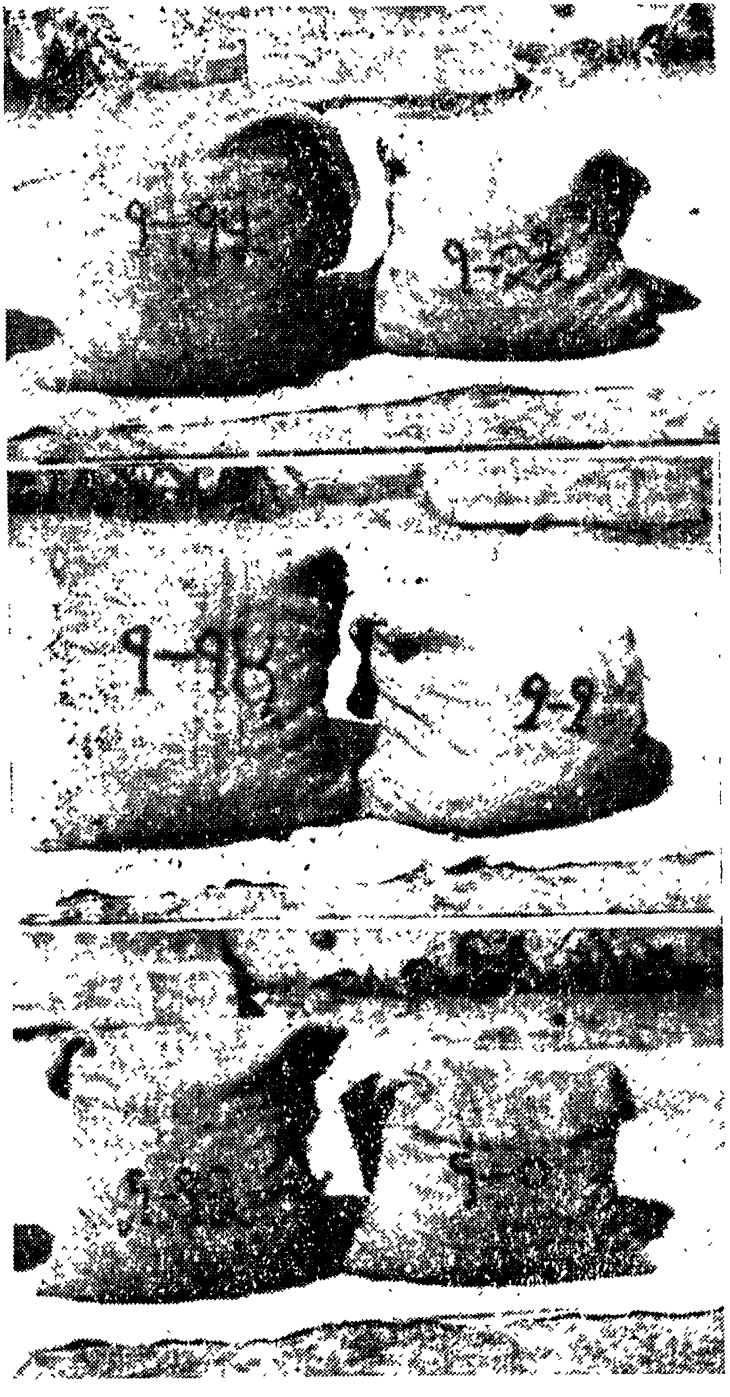

चित्र ३४—मल्चिंग किये और बिना मल्चिंग किये खेत में आलू की पैदावार।

कोई निकाई-गुडाई या मिट्टी चढ़ाई की क्रिया नही की गयी, जब कि अन्य तीन टुकड़ों के आलुओं की निकाई की गयी और उन पर मिट्टी चढ़ायी गयी। पयाल वाले तीन टुकड़ों पर हाथे से पानी का हलका छिड़काव किया गया, (देखिए चित्र संख्या १०), जब कि दूसरे तीन टुकड़ों की नालियों के बीच-बीच मामूली ढंग से सिचाई की गयी। अंत मे जो पैदावार मिली वह निम्नलिखित है--

पयाल वाले टुकड़ों की औसत पैदावार प्रति एकड़ २६५ मन
साधारण ढंग से बोये हुए टुकड़ों की ,, ,, ,, २०२·२५ ,,

इस ढंग से आलू पैदा करने में न केवल अधिक पैदावार मिलती है, बल्कि अन्य कई लाभ भी होते है--

(१) निकाई-गुड़ाई और मिट्टी-चढ़ाई का परिश्रम बच जाता है।

(२) सिंचाई के लिए पानी की आवश्यकता कम पड़ती है।

(३) पयाल भूमि पर कम्बल का काम करता है, अतः पाले से आलू नष्ट होने की सम्भावना कम रहती है।

(४) आलू के पौधे पयाल वाले टुकड़ों में अधिक समय तक हरे बने रहते हैं और सम्भवतः यही उनकी अधिक पैदावार का कारण है।

आलू पैदा करने में उपर्युक्त ढंग का प्रयोग करने के लिए निम्नलिखित बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

(१) बोआई के तुरन्त बाद खेत में पयाल बिछा देना चाहिए। उगने पर आलू के कल्ले आसानी से पयाल में से निकल आते हैं। केवल पानी की नालियों को पयाल से साफ रखना चाहिए।

(२) पयाल को दबा देना चाहिए, कम-से-कम ३" मोटी तह होनी चाहिए।

(३) हाथे से छिड़काव द्वारा हलकी सिंचाई करनी चाहिए।

(४) पहली सिंचाई के समय अमोनियम सल्फेट या यूरिया पयाल पर ही छिड़ककर सिंचाई कर दी जाती है। खादें पानी के साथ घुलकर नीचे चली जाती हैं।

(५) खुदाई के पहले पयाल को समेटकर एक स्थान पर इकट्ठा कर देना

चाहिए, नहीं तो खोदते समय आलू ढूँढ़ने में कठिनाई होती है। यदि पयाल को सुरक्षित रखा जाय तो वह अगले साल पुनः प्रयोग में लाया जा सकता है।

अरवी या घुइयाँ

अरवी की खेती इसके कंद तथा हरे पत्तों के लिए की जाती है। इसके पत्ते चिकने और बहुत बड़े होते हैं। पत्तों की डंडी भी लम्बी होती है। इसकी कई जातियाँ होती है। हमारे प्रान्त में दो जातियाँ मुख्य हैं--

(१) खैराबादी,

(२) जोकिया।

पहले नम्बर की जाति अच्छी होती है। इसका कद मोटा और लम्बा होता है तथा पैदावार भी अधिक होती है। इसके डंठल हरे रंग के होते हैं। दूसरी जाति की अरवी पतली होती है। इसकी पैदावार नम्बर १ की तुलना में कम होती है तथा इसके डंठल हलके बैंगनी रंग के होते है। खाने मे भी इसका स्वाद पहले से अच्छा नहीं होता। इसके ही जैसी एक जंगली अरवी भी होती है जो खाने के काम में नही आती।

जमीन और जुताई--हलकी और भारी दोमट जमीनें इसके लिए अच्छी होती हैं। खेत ऐसा होना चाहिए जिसमें बरसात का पानी बिलकुल न रुके, नहीं तो फसल खराब होने का डर रहता है। अधिक पानी खेत में रुक जाने पर कभी-कभी पौधे सूख जाते हैं। यदि पौधे हरे बने भी रहें तो भी पकाने पर इनकी तरकारी सख्त रह जाती है और ग्राहक इन्हें पसन्द नहीं करते। खेत को दो बार मिट्टी पलटनेवाले हल से और पाँच बार देशी हल से जोतना चाहिए और हर जुताई के बाद पटेला (हेंगा) फेरना चाहिए, ताकि मिट्टी भुरभुरी और बारीक हो जाय।

खाद--लगभग २०० मन (१५-२० गाड़ी) प्रति एकड़ गोबर या कम्पोस्ट की खाद खेत की तैयारी के समय डालनी चाहिए और एक मन सुपरफास्फेट अंतिम जुताई के समय कूँड़ों में ३ इंच की गहराई पर डालनी चाहिए। बोते समय अंडी (रेंड़ी) या नीम की खली दो मन और अमोनियम सल्फेट एक मन मिलाकर नाली में या बीजों के साथ-साथ डाल देना चाहिए। राख भी

लाभदाक है। यदि अमोनियम सल्फेट का अभाव हो तो दूसरी कोई नत्रजनीय खाद, जैसे यूरिया, अमोनियम नाइट्रेट या अमोनियम क्लोराइड आदि काम में लायी जा सकती है।

बोआई––अरवी दो ढंग से बोयी जाती है—(१) नालियों में और (२) क्यारियों में। दोनों विधियों में कतार से कतार की दूरी २ फुट और बीज से बीज की दूरी १ फुट रखनी चाहिए। यदि नालियों में बोना हो तो नालियाँ ६" गहरी बनानी चाहिए। बीज ३" की गहराई पर बोना चाहिए। ज्यों-ज्यों पौधे बढ़ते जायँ, नालियाँ भी भरते जाना चाहिए और आखिर में खेत को बराबर करके पौधों पर मिट्टी चढ़ा देनी चाहिए। क्यारियों में बोने के ढंग में भी पौधों पर मिट्टी चढ़ाना आवश्यक है। बीज प्रति एकड़ १२ मन से २० मन तक लगता है। प्रायः लोग खर्च कम करने के लिए छोटे बीज बोते है। परन्तु यदि मोटे बीज बोये जायँ, तो पौधे जल्द निकलते है और पैदावार भी अधिक होती है। एक और ध्यान देने योग्य बात यह है कि अरवी मे जो बंडा (मूड़ा) निकलता है, वह बाजार में बहुत सस्ते दामों पर बिकता है। यदि वह इकट्ठा करके रखा जाय और बोते समय उसके नीचे का थोड़ा भाग काटकर फेंक दिया जाय और शेष को बो दिया जाय तो पैदावार अधिक होती है।

बोने के दो समय हैं—पहला फरवरी, और दूसरा जून का महीना। जहाँ सिंचाई की सुविधा हो वहाँ फरवरी में बोना अच्छा होता है। फरवरी में बोयी हुई फसल जुलाई में तैयार हो जाती है और अच्छे दामों पर बिकती है। जून में बोयी गयी फसल अक्टूबर में तैयार होती है।

सिंचाई, निकाई और गुड़ाई––खेत को कभी सूखने नहीं देना चाहिए, नमी बराबर बनाये रखनी चाहिए। मौसम के अनुसार सिचाई करते रहना चाहिए। जून में बोयी गयी फसल को विशेष सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती। हर सिचाई या बरसात के बाद गुड़ाई करना और खेत में घास दिखाई देने पर निकाई करना आवश्यक है।

फसल की तैयारी और पैदावार––अरवी बोने के दो-तीन महीने बाद ही उसके हरे पत्ते खाने के योग्य हो जाते हैं। चार-पाँच महीने बाद अरवी भी

तैयार हो जाती है। इसकी पैदावार प्रति एकड़ २०० मन से ३०० मन तक होती है।

उपयोग और गुण——इसके पत्ते तरकारी और पकौड़ी आदि बनाने के काम में आते हैं। बहुत से लोग पत्तों के डंठलों की भी तरकारी बनाते हैं। कंद की तरकारी सब लोग खाते हैं। यह लाभदायक, चिकनी और भारी होती है। पत्तों के डंठल का रस लगाने से बहता हुआ खून बंद हो जाता है। घाव भी इससे जल्द अच्छा होता है। अरवी का रस दस्तावर होता है। बर्रे, हड्डा आदि के डंक मारने पर इसको लगाने से फ़ायदा होता है। सूखे और हवादार स्थान पर यह काफी समय तक सुरक्षित रह सकता है। इसे उबाल कर और आटे में मिला-कर बनायी हुई पूड़ी स्वादिष्ठ होती है।

बण्डा

बण्डा सफेद और लाल दो किस्म का होता है। उसकी लम्बाई करीब ८ इंच से एक फुट तक होती है। बण्डा अरवी जाति की तरकारी है। इसकी खेती करीब-करीब अरवी की ही तरह की जाती है। बन्डे और अरवी की खेती का अन्तर नीचे दिया जाता है।

(१) इसके लिए नालियाँ बनाना आवश्यक है। नालियाँ भूमि की सतह से एक फुट गहरी बनानी चाहिए। पंक्ति से पंक्ति की दूरी ढाई फुट और बीज से बीज की दूरी ९-१० इंच होनी चाहिए।

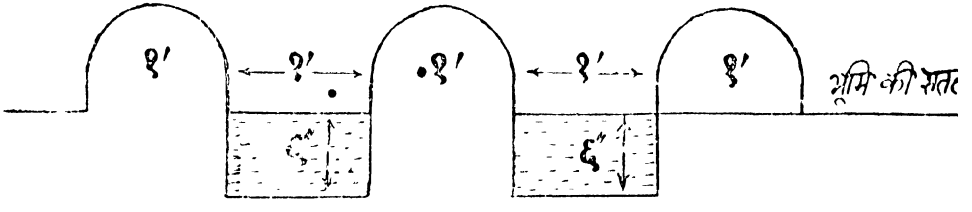

चित्र ३५——बंडे की खेती में नालियाँ बनाने का तरीका

(२) इसके बोने का ढंग भी भिन्न है। बण्डे को काट-काटकर बोया जाता है। काटते समय इसका ध्यान रखना चाहिए कि हर टुकड़े में कम से कम एक आँख अवश्य हो।

(३) इसे फरवरी-मार्च में बोया जाता है। ज्यों-ज्यों पौधे बढ़ते हैं नालियों मे मिट्टी भरते जाते हैं। जून के अन्त तक भूमि बराबर हो जाती है। उसके बाद पौधों पर मिट्टी चढ़ायी जाती है। मिट्टी दो बार में काफी चढ़ाना चाहिए। पहली बार शुरू जुलाई में और दूसरी बार जुलाई के अन्त में। अगस्त-सितम्बर मे फसल तैयार हो जाती है।

इसकी औसत पैदावार लगभग ३०० मन होती है।

प्याज

प्याज एक ऐसी तरकारी है, जिसे देश के अमीर-गरीब सभी खाते है। इसकी पैदावार काफी होती है और थोड़े समय में किसान को अधिक आमदनी दे सकती है।

भूमि और जलवायु——प्याज ऐसी फसल है जो देश के सभी भागों में पैदा की जा सकती है। यह साल के किसी मौसम में बो या बैठाकर पैदा की जा सकती है। जिन स्थानों पर वर्षा ३०" से कम होती है वहाँ एक फसल वर्षा-ऋतु में भी ली जा सकती है। परन्तु अच्छी पैदावार लेने के लिए आवश्यक है कि प्रारम्भिक अवस्था में गाँठ पड़ने के पहले इसको कुछ आर्द्र और ठंडा मौसम मिले और बाद में तेज धूप और सूखा मौसम मिले। इसलिए जनवरी से मई तक की फसल में सबसे अधिक पैदावार होती है। उत्तर भारत में इसी मौसम में इसकी खेती मुख्यतः होती है।

प्याज के लिए सबसे उपयुक्त भूमि दोमट मिट्टी है जिसमें वानस्पतिक अंश या ह्यूमस की मात्रा अधिक हो।

पैदा करने के ढंग——प्याज पैदा करने के निम्नलिखित तीन ढंग है।

(१) बियाड़ मे बीज बोकर खेत में रोपना,

(२) खेत में छोटी-छोटी गाँठ बोना,

(३) बीज को सीधे खेत में बोना।

इन तीनों ढंगों मे सबसे अधिक पैदावार बीज को बियाड़ मे बोकर खेत मे बैठाने से मिलती है। बीज को सीधे खेत में बोने से पैदावार अच्छी नहीं होती, परन्तु मेहनत कम लगती है। अतः जिन स्थानों पर बड़े पैमाने पर प्याज की खेती की जाती है, और जहाँ मजदूरों की कमी होती है, वहाँ इस ढंग का प्रयोग किया जाता है। गाँठों को बैठाकर प्याज शीघ्र तैयार की जा सकती है। इसका प्रयोग हरी पत्तियों तथा छोटी-छोटी गाँठों के रूप में विशेषतः किया जाता है। मुख्य फसल तैयार होने के पहले ही यह तैयार हो जाती है और बाजार में इसकी अच्छी कीमत मिलती है।

बेरन तैयार करना––जिस भूमि में प्याज की बेरन तैयार करनी हो वह हलकी दोमट, अधिक उपजाऊ और खर-पतवारों से मुक्त होनी चाहिए। मिट्टी को गोड़-जोतकर खूब भुरभुरी बना लेना चाहिए और उसमें से सभी घासें मय जड़ों इत्यादि के निकाल देना चाहिए। दस गाड़ी प्रति एकड़ के हिसाब से गोबर की खाद खेत में मिला देनी चाहिए। फिर भूमि को क्यारियों में बाँट लेना चाहिए। क्यारियाँ १० फुट लम्बी, ४ फुट चौड़ी और तीन इंच ऊँची होनी चाहिए। क्यारियों के बीच में एक-एक फुट स्थान छूटा रहना चाहिए। यहाँ की मिट्टी उठाकर क्यारियों को ऊँचा किया जाता है और वह नाली का काम भी देती है। इन्हीं नालियों में बैठकर आवश्यकता पड़ने पर निकाई इत्यादि हो सकती है। बोने के पहले प्रत्येक क्यारी में एक सेर राख और सवा मन गोबर की खाद पुनः मिलानी चाहिए। खाद मिला लेने के बाद बीज बोना चाहिए। बीज चूँकि हलका और छोटा होता है, इसलिए इसको थोड़ी मिट्टी में मिलाकर बोने से बीज क्यारी में बराबर पड़ेगा। बीज को हाथ से मिट्टी में मिला देना चाहिए और फिर रोलर इत्यादि चलाकर मिट्टी को दबा देना चाहिए। उसके बाद सावधानी से हजारे से पानी देना चाहिए। परन्तु यदि यह सम्भव न हो तो क्यारी को पुआल या अन्य सूखी पत्तियो से ढँककर पानी देना चाहिए। खेत में बराबर नमी बनाये रखना आवश्यक है, परन्तु यह भी आवश्यक है कि क्यारियों में पानी बिलकुल इकट्ठा न होने पाये, नहीं तो बीज मर जायेंगे। घास उग आने पर खेत में एक या दो बार निकाई कर देना लाभप्रद होगा। बोने के छः सप्ताह बाद पौधे बैठाने के योग्य हो जायँगे।

१/६ एकड़ बियाड़ मे २ सेर बीज बोकर एक एकड़ खेत बैठाया जा सकता है।

पौधों की रोपाई––जिस खेत में प्याज लगानी हो उसकी ४–५ जुताई करके मिट्टी को खूब भुरभुरी बना लेना चाहिए और उसमे २५ गाड़ी प्रति-एकड़ के हिसाब से गोबर की खाद या कम्पोस्ट मिला देना चाहिए। खाद के साथ ही ४–५ गाड़ी राख मिलाना भी लाभप्रद होगा। यदि वानस्पतिक खादों की कमी हो तो उसको ५ मन प्रति एकड़ अमोनियम सल्फेट देकर पूरा किया जा सकता है। खेत में खादें मिला लेने के बाद उसमें छोटी-छोटी क्यारियाँ बना लेनी चाहिए। पौधों को बियाड़ से उखाड़ कर पहले ही तैयार कर लेना चाहिए। यदि पौधे अधिक बढ़ गये हों तो उनको ऊपर से काट देना चाहिए। पौधों को एक-एक करके ही लगाना चाहिए और उनकी एक दूसरे से दूरी ४" रखनी चाहिए। बैठाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि पौधों की जड़ें भूमि में बहुत नीचे न जाने पायें क्योंकि जड़ें नीचे होने से गाँठें अच्छी नहीं पड़तीं। गाँठें पड़ने के पहले सिंचाई सातवें आठवें दिन होनी चाहिए। गाँठें जब पड़ जायँ और पत्तियाँ पीली पड़ने लगें, तब सिंचाई कम कर देनी चाहिए। यदि कुछ पौधों में फूल निकलने लगें, तो उन्हें तोड़ देना चाहिए।

पैदावार––पौधे जब बिलकुल सूख जायँ, तब उनको सावधानी से खोदकर निकाल लेना चाहिए। उन्हें किसी सूखी हवादार जगह में फैलाकर रखना चाहिए। कच्ची और कटी-पिटी गाँठों को अलग कर देना चाहिए, नहीं तो इनके कारण सड़ाँद पैदा हो सकती है। प्याज की औसत पैदावार २०० मन प्रति एकड़ होती है।

किस्में––प्याज की मुख्य दो किस्में हैं, एक सफेद और दूसरी लाल। लाल किस्म का बाजार में अच्छा मूल्य मिलता है और वह टिकाऊ भी अधिक होती है।

लहसुन

लहसुन की खेती सरल और बहुत ही लाभप्रद है। लहसुन की खेती प्याज की ही खेती की तरह होती है। उसके लिए खाद, भूमि और जलवायु के लिए आवश्यकता उसी तरह होती है जैसी प्याज के लिए।

लहसुन पैदा करने के लिए उसकी गाँठ के जवे बोये जाते हैं। बोने के लिए स्वस्थ और मोटे जवे छाँटने चाहिए। इस प्रकार ४ मन बीज से एक एकड़ भूमि बोयी जा सकती है। जिस प्रकार प्याज छोटी-छोटी क्यारियों में बैठायी जाती है उसी प्रकार लहसुन के जवे भी ४"–४" की दूरी पर छोटी क्यारियों में बोये जाते हैं। यदि खेत में पहले से नमी न हो तो पलेवा करके उसमें नमी पैदा करके बोना चाहिए। बोने के सातवें-आठवें दिन लहसुन उग आता है। लहसुन की निकाई-गुड़ाई, सिंचाई उसी प्रकार से होनी चाहिए जैसे प्याज की होती है। बोने के ५ महीने बाद फसल तैयार हो जाती है। जब पत्तियाँ सूख जायँ तो सावधानी से खोदकर गाँठों को निकाल लेना चाहिए और दो-तीन दिन तक सूखे हवादार कमरे या बरामदे में रखना चाहिए। उसके बाद या तो मंडी में भेजकर बेच लेना चाहिए या किसी हवादार सूखे ठंडे स्थान पर सुरक्षित रखना चाहिए। यह लगभग ७०-८० मन प्रति एकड़ पैदा होता है।

टमाटर

टमाटर सभी प्रकार की खेती-योग्य भूमि पर पैदा किया जा सकता है। परन्तु अगाही फसल पैदा करने के लिए हल्की दोमट मिट्टी का खेत चुनना चाहिए। इसके लिए बहुत खाद की आवश्यकता नहीं होती। गोबर की १० गाड़ी खाद प्रति एकड़ काफी होती है। इसके अतिरिक्त भूमि की सतह के नीचे चार मन प्रति एकड़ सुपर फास्फेट देना लाभदायक होगा। यदि नत्रजनीय खाद अधिक दी जायगी तो पत्तियाँ और शाखाएँ बहुत निकलेंगी, परन्तु फल की पैदावार कम होगी।

बोवाई––इसे जून के अन्त से अक्टूबर के अंत तक किसी भी समय बोया जा सकता है। वर्षाऋतु में बेरन तैयार करने के लिए विशेष सावधानी की आवश्यकता होती है क्योंकि पानी लगने से पौधों के मर जाने का डर रहता है। जिस प्रकार से जापानी ढंग से धान का बीज बोने के लिए उभरी हुई क्यारियाँ बनायी जाती हैं, उसी प्रकार से वर्षाऋतु में टमाटर का बीज तैयार करने के लिए भी क्यारियाँ बनानी चाहिए। बोने के पहले १,००० भाग बीज में ३ भाग एग्रोसेन जी० एन० दवा मिलाकर बोने से पौधों में फफूंदी की बीमारियाँ लगने

का डर कम हो जाता है। फफूँदी की बीमारियाँ लगने पर पौधे बड़ी तेजी से नष्ट हो जाते है। वर्षाऋतु में कई दिनों तक लगातार वर्षा होने पर या वाइरस की बीमारियाँ लग जाने पर खेत में बैठाये हुए पौधे भी मर जाते है। अतः किसान को चाहिए कि वह टमाटर का बीज दो-तीन बार बोये और इसकी दो-तीन फसले लेने की कोशिश करे। मुख्य फसल के लिए जुलाई के अन्तिम सप्ताह में बीज बोना चाहिए।

एक एकड़ के लिए डेढ़ छटाक बीज की आवश्यकता होती है। टमाटर के पौधे जब ४–५" के हो जायँ तब उन्हें बैठाया जाता है। लाइन से लाइन और पौधों से पौधों की दूरी डेढ़ फुट रखनी चाहिए। वर्षा ऋतु में उभरी हुई पट्टियों पर पौधों को बैठाना चाहिए। पट्टियों के बीच-बीच में पानी निकलने के लिए नालियाँ होती हैं, इन्हीं नालियों में होकर वर्षा का पानी आसानी से निकल जाता है और पौधों को नुकसान नहीं पहुँचता।

निकाई, गुड़ाई और सिंचाई––पौधों के लग जाने के बाद निकाई-गुड़ाई करके उन्हें घासों से मुक्त रखना चाहिए। जब पौधे भूमि पर फैल जायँ तब गुड़ाई बन्द कर देनी चाहिए। सिंचाई जाड़ों में १०–१२ दिनों का अन्तर देकर और वसंत में ५–६ दिनों का अंतर देकर करनी चाहिए। यदि सिंचाई अधिक दिनों का अन्तर देकर की जायगी तो फलों के फट जाने का डर रहेगा।

टमाटर की साधारण खेती में पौधों को भूमि पर फैलने दिया जाता है। परन्तु ऐसा करने से बहुत से फल सड़ जाते है। इस नुकसान से बचने के लिए पौधों को लकड़ी या बाँस के टेक पर चढ़ाया जाता है। ऐसा करने के लिए पौधों की शाखाएँ काटकर उन्हें लता की तरह लम्बा बढ़ने दिया जाता है। इस तरह से वे चौड़ाई में कम जगह घेरती हैं और उनकी प्रति एकड़ संख्या बढ़ाकर अधिक पैदावार ली जा सकती है। टेक लगाकर टमाटर पैदा करने का ढंग बहुत अच्छा है, परन्तु यह बड़े पैमाने पर खेती करनेवालों के लिए व्यवहारिक नहीं है। तीसरा ढंग मल्चिग का है। 'संयुक्त राज्य अमेरिका में मल्चिग का एक प्रयोग टमाटर पर किया गया था। तीन प्रकार से टमाटर की खेती की गयी––(१) साधारण––पौधों को किसी प्रकार सहारा दिये बिना, (२) पौधों को टेक पर चढ़ाकर, और (३) पौधों के नीचे मल्च बिछाकर।

तीनों मे अन्य सभी क्रियाएँ एक-सी की गयी। तीनों में जो पैदावार हुई वह निम्नलिखित है--

	अच्छे फलों की उपज		सड़े फलों की उपज		टोटल	सड़ने का प्रतिशत
	पौ०	औ०	पौ०	औ०	पौ० औ०	पौ० औ०
साधारण	१५७	१४	३४	७	१९२/५	२०%
टेक चढ़ाने कर	१९७	५	१५	७	२१२/१२	७.९%
मल्चिग से	२५३	१४	४४	४	२९८/२	१७.५%

इन आँकड़ों से पता चलता है कि साधारण विधि से टमाटर बोने की अपेक्षा मल्चिग की विधि से अच्छे फलों की पैदावार लगभग ६०% तक बढ़ गयी। टेक पर चढ़ाने की विधि में सड़े फल सबसे कम निकले, फिर भी मल्चिग विधि की तुलना मे अच्छे फलों की पैदावार कम हुई।

लेखक के फार्म पर भी मल्चिग विधि का ही प्रयोग होता है। इस ढंग मे पौधों की रोपाई के बाद, उनके जड़ पकड़ लेने पर खेत भर में पौधों को बचा-बचाकर पुआल की ३ इच मोटी तह बिछा दी जाती है। इसके बाद निकाई-गुड़ाई भी नहीं करनी पड़ती। सिचाई भी केवल एक या दो बार करनी पड़ती है। फल पुआल पर रखे रहते है, इसलिए कम सड़ते हैं। पैदावार भी अन्य ढंगों की तुलना में सबसे अधिक होती है। अतः जिन किसानों के पास पुआल या अन्य सूखा खरपतवार काफी मात्रा मे हो, उनके लिए टमाटर की अच्छी फसलें लेने के लिए सबसे व्यावहारिक ढंग मल्चिग का है।

तुड़ाई और पैदावार--टमाटर पकने पर भी तोड़ा जा सकता है और हरा रहते हुए भी जब थोड़ा रग बदलने लगे, तब तोड़कर पकाया जा सकता है। बाहर भेजने के लिए कुछ कच्चा ही तोड़ना ठीक होगा। अच्छी खेती करने पर टमाटर २५०-३०० मन प्रति एकड़ पैदा हो सकता है। वैसे एक ही पौधे से यह सम्भव है कि ५ सेर तक टमाटर प्राप्त किया जा सके।

बैंगन

धनोपार्जन की दृष्टि से बैंगन की खेती भी महत्त्वपूर्ण है। यह तरकारी शीघ्र खराब नहीं होती और इसकी पैदावार किसी तरकारी से कम नहीं होती। इसकी खेती टमाटर की ही तरह होती है। भूमि और जलवायु की आवश्यकता भी इसे टमाटर के ही समान होती है। टमाटर की ही तरह इसकी भी कई फसलें साल में उगायी जाती हैं, परन्तु सबसे अधिक पैदावार उस फसल की होती है, जो जून-जुलाई में बोकर अगस्त में बैठायी जाती है। इसके लिए २०–२५ गाड़ी गोबर की खाद या कम्पोस्ट देना चाहिए। राख भी इसके लिए उपयोगी है। यदि वह मिल सके तो उसे अवश्य खेत मे डालना चाहिए। पौधे तीन-तीन फुट की दूरी पर बैठाने चाहिए। एक एकड़ में बैंगन बैठाने के लिए तीन छटाक बीज की आवश्यकता होती है। जून-जुलाई में बोयी हुई फसल अक्टूबर से फलना शुरू होती है और फरवरी तक फलती रहती है। फरवरी में जब इसका फलना बन्द हो जाय, तब यदि इसकी डालें काट-छाँट दी जायँ, तो गर्मियों में एक और फसल मिल जायगी। इसकी औसत पैदावार लगभग २०० मन प्रति एकड़ होती है।

बैंगन की कई किस्में होती हैं। बैंगन सफेद, हरे, बैंगनी, लम्बे और गोल सभी प्रकार के होते हैं। देशी किस्मों के अतिरिक्त कुछ उन्नतिशील किस्में कानपुर तरकारी-अनुसंधान-केन्द्र पर पैदा की गयी हैं। इनमे से टाइप १ जल्द तैयार होता है और लम्बे बैंगनी फलवाला होता है। टाइप २ देर में तैयार होनेवाला लम्बे बैंगनी फल का होता है। इसी प्रकार से टाइप ३ जल्दी तैयार होनेवाला गोल बैंगनी रंग का होता है और टाइप ४ देर में तैयार होनेवाला गोल बैंगनी रंग का होता है। इन सबकी पैदावार देशी किस्मों से अधिक होती है।

मिरच

मिरच महँगी बिकती है और अच्छी आमदनी की फसल है। मिरच की खेती भी टमाटर और बैंगन की ही तरह की जाती है। इसकी भूमि और जलवायु की आवश्यकताएँ टमाटर और बैंगन के ही समान हैं।

मिरच कई उद्देश्य से पैदा की जाती है, कुछ तो मसाले के लिए और कुछ अचार बनाने और तरकारी के लिए। मसाले के लिए पतला लाल या पीला, अचार के लिए कुछ मोटा और लाल, तरकारी के लिए बहुत मोटा और हरा मिरचा पसंद किया जाता है। इन सबको पैदा करने के लिए पहले बियाड़ में बेरन तैयार करनी पड़ती है। बेरन उभरी हुई क्यारियों में खूब खाद-पाँस देकर बोयी जाती है। एक एकड़ खेत बैठाने के लिए एक सेर बीज बोना चाहिए। जब पौधे ५–६" ऊँचे हो जायँ, तब उन्हें ऐसे खेत में जिसमें पहले २०–२५ गाड़ी गोबर की खाद मिलायी जा चुकी हो, डेढ़-डेढ़ फुट की दूरी पर बैठा देना चाहिए। बैठाने के बाद निकाई-गुड़ाई करने के अतिरिक्त वर्षा ऋतु में और कुछ नहीं करना होता। वर्षा ऋतु के बाद हर १५ दिन पर सिचाई करनी चाहिए। इसकी प्रति एकड़ औसत पैदावार लगभग १०० मन होती है जो सुखाने पर १०–१२ मन रह जाती है। मिरच एक ही बार मे पककर तैयार नहीं होती। इसको कई बार तोड़ना और सुखाना पड़ता है।

गोभी

यदि ठीक से खेती की जाय और इसकी बिक्री में कोई कठिनाई न हो, तो गोभी की फसल से अच्छी आमदनी प्राप्त की जा सकती है। एक एकड़ में लगभग १५–१६ हजार गोभी के फूल तैयार किये जा सकते है जो यदि १० रु० प्रति सैकड़ा भी बिकें तो आमदनी १५०० रुपया प्रति एकड़ हो सकती है। परन्तु कठिनाई यह है कि गोभी पैदा करना सरल नही और पैदा करने पर यदि कोई बड़ी मंडी निकट न हो तो बेचना कठिन हो जाता है। लगभग एक ही साथ सब फूल निकलते है और यदि एक या दो सप्ताह के अन्दर उनकी बिक्री न हो सके तो सब खराब हो जाते है। अतः गोभी की बड़े पैमाने पर खेती केवल शहरों के निकट और वह भी केवल अनुभवी किसानों द्वारा ही की जानी चाहिए।

गोभी की कई किस्मे होती हैं, जिन्हे उनके तैयार होने के समय के अनुसार अगाही, मध्य और पछेता कहा जा सकता है। इनके अलावा विलायती गोभी भी होती है जो विदेशों से मँगाये गये बीजों से पैदा होती है। गोभी की भिन्न-

भिन्न किस्मों को ठीक समय पर बोने से ही सफलता मिल सकती है। जो बीज जिस समय के लिए उपयुक्त है, यदि उसे उस समय न बोकर दूसरे समय बोया जाय तो फूल बहुत ही छोटे लगेंगे। प्रायः किसान गोभी में छोटे फूल लगने पर बीज को ही दोषी ठहराते हैं। शुद्ध प्रमाणित बीज तैयार करने की देश में कोई व्यवस्था न होने के कारण सम्भव है कि बीज-विक्रेता घटिया किस्म का बीज दें, परन्तु यह भी संभव है कि बीज बोने का समय ठीक न होने के कारण अच्छे बीज भी छोटे फूल दें।

अगाही गोभी का बीज मई मास के अन्त से मध्य जून तक बोया जाता है। मध्य फसल के लिए जुलाई के प्रथम और द्वितीय सप्ताह में बीज बोया जाता है। इस किस्म के बीज को यदि जुलाई के बाद बोया जाय तो फूल बहुत ही छोटे लगेंगे। पछेता फसल को अगस्त के प्रथम और द्वितीय सप्ताहों में बोना चाहिए। विलायती गोभी का बीज बहुत मँहगा होता है और गर्मी तथा अधिक वर्षा सहन नहीं कर सकता। देशी गोभी की किस्में दिसम्बर के अन्त तक प्रायः समाप्त हो जाती है, इसलिए विलायती गोभी के बीज को यदि पिछड़कर बोया जाय तो वह गर्मी, वर्षा से भी बच जायगा और ऐसे समय से तैयार होगा, जब देशी गोभियाँ समाप्त हो जायँगी और उसकी कीमत अच्छी मिलेगी। इस उद्देश्य से विदेशी गोभी के बीज को सितम्बर के अंतिम सप्ताह या अक्टूबर के प्रथम सप्ताह में बोना चाहिए।

वर्षा ऋतु में गोभी की बेहन (बेरन) तैयार करना बड़ा कठिन है। इसे पानी लगने से बचाने के लिए ऊँची क्यारियों में बोया जाता है। फिर भी यदि कई दिन लगातार वर्षा होती रहे तो नुकसान हो जाने का डर रहता है। इस नुकसान से बचने के लिए प्रायः सिरकी या छप्पर से वर्षा के समय क्यारियों को ढँक देते हैं। परन्तु ऐसा करने से सूर्य का प्रकाश पूरा नहीं पहुँचता और बेहन कमजोर हो जाती है। लेखक के फार्म पर पारदर्शी प्लास्टिक लकड़ी के एक फ्रेम में जड़कर (जैसा अगले पृष्ठ के चित्र संख्या ३६ में दिखाया गया है) बेहन को अधिक वर्षा से बचाने के काम में लाया जाता है। इसके प्रयोग से सूर्य का प्रकाश भी पहुँचता रहता है और बेहन भी वर्षा से बची रहती है।

गोभी की फसल को उसके जीवनकाल में यदि थोड़ा भी कष्ट हो या पोषण की कमी हो जाय तो परिणाम बहुत ही बुरा होता है। अतः बीज बोने के समय से फूल लगने तक इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि पौधों को पोषक तत्त्वों की तथा नमी की कमी न पड़ने पाये। बेहन (बेरन) दूर-दूर बोनी चाहिए और उसमें खाद अधिक नहीं डालनी चाहिए, तभी पौधे मजबूत होंगे। पौधे जब ४–५" ऊँचे हो जाते है तब बैठाये जाते है। बदली के समय या शाम को इन्हें बैठाना चाहिए और बैठाने के तुरन्त बाद पानी देना चाहिए। वर्षा ऋतु में बैठाने के लिए खेत में मेंड़ बनाकर उसी पर गोभी बैठाना चाहिए, जिससे

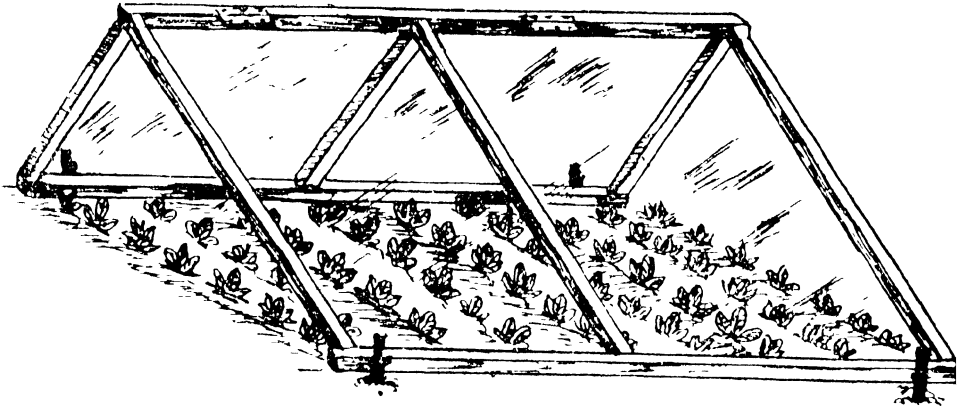

चित्र ३६—वर्षा ऋतु में गोभी की बेहन उगाने का ढंग।

पौधों के पास पानी बिलकुल न रुके। देशी गोभी के पौधे डेढ़-डेढ़ फुट पर और विलायती गोभी के पौधे दो-दो फुट पर बैठाने चाहिए। गोभी में खाद अधिक देनी चाहिए। ४०–५० गाड़ी प्रति एकड़ अच्छी सड़ी हुई गोबर या मैले की खाद खेत की तैयारी के समय देनी चाहिए। इसके अलावा जब पौधे कुछ बड़े हो जायँ, यानी बैठाने के एक मास बाद, ढाई मन प्रति एकड़ अमोनियम सल्फेट देना चाहिए। निकाई, छिछली गुड़ाई तथा सिचाई करते रहना चाहिए। गहरी गुड़ाई से जड़ें कट जाती हैं और फसल को नुकसान पहुँचता है, इसलिए गुड़ाई छिछली होनी चाहिए। अमोनियम सल्फेट खाद देने के बाद जड़ों के पास मिट्टी चढ़ा देनी चाहिए, जिससे पौधे के फूल भारी होने पर गिर न जायँ।

फूलों को सूरज की तेज रोशनी से भी बचाना चाहिए, नहीं तो वे पीले पड़ जाते हैं और उनकी शकल और स्वाद बिगड़ जाता है। सूरज की रोशनी से बचाने के लिए पौधों की पत्तियों को इस तरह मरोड़ दिया जाता है कि वे फूल के ऊपर छाया किये रहें।

परवल

परवल एक महँगी तरकारी है और इसे दूर-दूर तक भेजा जा सकता है। अतः किसान इसको पैदा करके काफी लाभ उठा सकते हैं।

परवल नम और गर्म जलवायु की फसल है, अतः इसे मुख्यतः उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों में पैदा किया जाता है। यह आर्द्र जलवायु तो चाहता है, परन्तु यदि इसकी जड़ों के पास तनिक भी पानी इकट्ठा हो, तो यह फूल-फल नहीं सकता। अतः इसको हमेशा ऐसी भूमि पर बैठाना चाहिए, जो चारों तरफ की निकटवर्ती भूमि से ऊँची हो, ताकि इसकी जड़ों के पास पानी बिलकुल न रुक सके। मिट्टी इसके लिए बलुई या दोमट बलुई चाहिए, मटियार मिट्टी में परवल सफल नहीं हो सकता। नदियों के कछारों से, जहाँ स्वभावतः गर्मियों में नमी बनी रहती है, परवल की अच्छी फसल ली जा सकती है, परन्तु केवल उसी समय तक, जब तक खेतों में नदी का पानी न भर जाय।

जिस खेत में परवल लगाना हो, कई बार जुताई-गुड़ाई करके उसकी मिट्टी बारीक बना लेनी चाहिए। खेत तैयार हो जाने पर ५–५ फुट की दूरी पर थाले तैयार कर लिये जाते हैं, इन्हीं थालों में ७ सेर फी थाला के हिसाब से गोबर की खाद या कम्पोस्ट खाद मिला दी जाती है। पौधों के अच्छी तरह लग जाने के बाद दो छटाक अमोनियम सल्फेट प्रति थाला देना चाहिए। अमोनियम सल्फेट के स्थान पर कहीं-कही नीम की खली का भी प्रयोग करते हैं।

परवल की खेती के लिए इसकी लतरें और जड़ें लगायी जाती हैं। लतरें ऐसे पौधों से ली जानी चाहिए, जिनकी अवस्था एक वर्ष से तो अधिक हो, परन्तु चार वर्ष से अधिक न हो। क्योंकि बिलकुल नयी और पुरानी शाखाएँ ठीक से नहीं लगतीं। लतरें ३–३ फुट की लम्बाई में काट ली जाती हैं और

उनमें से प्रत्येक को नम मिट्टी के एक लोंदे के चारों ओर बार-बार लपेटा जाता है। फिर उस मिट्टी के लोंदे को मिट्टी में इस प्रकार से गाड़ दिया जाता है कि लोंदा तो भूमि की सतह के ४" नीचे रहे, परन्तु लतर के दोनों सिरे भूमि के ऊपर निकले रहें। इसी प्रकार से सभी थालों मे परवल बैठा देना चाहिए। एक एकड़ में लगभग १७५० थाले बनते हैं, अतः इतने ही लतर के टुकड़ों की आवश्यकता पड़ती है। बैठाने के बाद तुरन्त सिंचाई कर देनी चाहिए। परवल लगाने के लिए सबसे उपयुक्त समय १५ सितम्बर से १५ अक्टूबर तक है, परन्तु फरवरी-मार्च में भी यह लगाया जा सकता है।

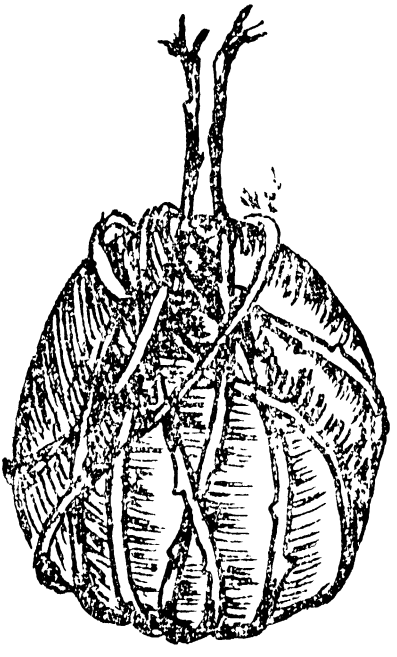

चित्र ३७—**बोने के लिए मिट्टी के लोंदे पर लिपटी हुई परवल की लतर।**

परवल एक ऐसी फसल है जिसके नर और मादा पौधे अलग-अलग होते हैं। नर पौधों में फूल ही लगते हैं, फल नहीं लगते। परन्तु यदि १५–२० मादा पौधों के बीच में एक नर पौधा न हो तो फल या तो बिलकुल नहीं लगते या बहुत कम लगते हैं। चूंकि पौधों तथा उसकी लता को देखकर यह नहीं बतलाया जा सकता कि कौन-सा नर है और कौन-सा मादा, प्रायः यह गलती हो जाती है कि या तो कुल पौधे मादा ही मादा लगा दिये जाते हैं या नरों की संख्या आवश्यकता से अधिक हो जाती है। दोनों ही दशाओं में पैदावार कम होती है। अतः जब परवल फूलने लगे तब सभी थालों को घूम-घूम-कर देखना चाहिए और प्रत्येक नर फूलवाले पौधे पर निशान लगा देना चाहिए। यदि इनकी संख्या ५–६% से अधिक हो तो इनको निकालकर नये मादा पौधों को बैठा देना चाहिए। नर और मादा पौधों की पहचान फूल द्वारा ही हो

सकती है । नर पौधों के फूल कुछ बड़े होते हैं और इनका आधार लम्बा पतला होता है, जब कि मादा पौधों के फूल कुछ छोटे होते हैं और उनके आधार पर छोटा सफेद रोयेदार परवल का बच्चा होता है ।

परवल बीज से भी पैदा किया जा सकता है, परन्तु ऐसे पौधों में नर अधिक होते हैं और इनमे कडुए परवल भी होते है । अतः बीज से इसे पैदा करने की कोशिश नहीं करनी चाहिए । जहाँ लतरें आसानी से जड़ न पकड़ती हों, वहाँ परवल की जड़ें खोदकर लगानी चाहिए ।

परवल के खेत में खर-पतवार लगने पर यह बिलकुल नहीं फलता । अतः निकाई-गुड़ाई करके इसके खेत को हमेशा साफ रखना चाहिए। सिचाई फरवरी-मार्च से शुरू करके वर्षा प्रारम्भ होने तक आवश्यकतानुसार करते रहना चाहिए, परन्तु जड़ों के पास पानी अधिक समय तक के लिए नही रुकने देना चाहिए।

परवल एक बार लग जाने पर कई वर्ष तक फल देता रहता है । प्रथम वर्ष ५०–६० मन फल मिलता है । दूसरे वर्ष २५०–३०० मन, परन्तु तीसरे वर्ष से पैदावार घटने लगती है । अतः इसे हर तीसरे वर्ष नये खेत में लगाना चाहिए ।

परवल की दो मुख्य किस्मे है । एक छोटा कुछ गोलाकार होता है । यह प्रायः पान के साथ पैदा किया जाता है और बाँस इत्यादि के झमड़े पर चढ़ाया जाता हैं । इसको परवल कहते हैं । यह खाने में अधिक स्वादिष्ठ और पौष्टिक माना जाता है । दूसरी किस्म के फल बड़े और लम्बे आकार के होते है, जिन्हें 'पटर' कहते हैं, इनकी लतरें भूमि पर ही फैलने दी जाती है ।

केला

केला स्वादिष्ठ, पौष्टिक और गुणकारी फल है । एक एकड़ केले की खेती से मनुष्य के लिए जितना अधिक खाद्य पदार्थ प्राप्त किया जा सकता है, उतना किसी अन्न, तरकारी या दूसरे फल की खेती से सम्भव नही । केले की एक एकड़ औसत उपज से डेढ़ करोड़ कैलोरी ऊष्मा प्राप्त की जा सकती है, जब कि

एक एकड़ गेहूँ की फसल से केवल १० लाख कैलोरी ही प्राप्त की जा सकती है । ऊष्मा के अतिरिक्त केले में ए, बी और सी विटामिन भी काफी मात्रा में पाये जाते हैं ।

जलवायु––केले के लिए गर्म और नम जलवायु की आवश्यकता होती है । जिन स्थानों पर तेज लू चलती है या पाला पड़ता है, वहाँ केले की व्यावसायिक खेती सभव नही । केले के लिए खेत में नमी का बना रहना अत्यंत आवश्यक है । जिन स्थानों पर स्वाभाविक वर्षा से नमी बनी रहती है, वहाँ केले की खेती बड़ी आसानी से हो सकती है । परन्तु जिन स्थानों पर वर्षा कम होती हैं या साल के कुछ ही महीनों मे वर्षा होती है, वहाँ इसे सिंचाई द्वारा पैदा किया जा सकता है । जाड़ों मे हर दसवें-पंद्रहवे दिन और गर्मियों मे हर पाँचवें-छठे दिन सिंचाई करने की आवश्यकता पड़ती है । वर्षा ऋतु में भी यदि कई दिनो तक लगातार वर्षा न हो तो सिचाई करनी पड़ती है । इस प्रकार से साल भर में ३०–४० सिंचाइयों की आवश्यकता पड़ती है। अतः केले की खेती उन्हीं किसानों को करनी चाहिए जिन्हें सिचाई के लिए पानी की कमी न हो ।

उत्तर प्रदेश के तराई के इलाकों में और पूर्वी जिलों में, जहाँ सिचाई का प्रबंध हो सकता है, केले की खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है ।

भूमि––केला नमी तो चाहता है, परन्तु जड़ों के निकट पानी का रुकना सहन नहीं कर सकता । इसलिए केले के लिए ऐसी भूमि छाँटनी चाहिए जिसमें पानी न रुकता हो । भूमि में भी नमी रोकने की शक्ति होनी चाहिए, अर्थात् उसमें ह्यूमस या वानस्पतिक अंश अधिक होना चाहिए । भुर-भुरी दोमट मिट्टी इसके लिए सबसे अच्छी होती है ।

किस्में––केले की सैकड़ों किस्में है । इनमें से कुछ का फल के रूप में और कुछ का तरकारी के रूप मे• प्रयोग होता है । व्यावसायिक दृष्टि से फल के लिए केला हरी छाल (बसराई वामन) और तरकारी के लिए हजारा केला उत्तर प्रदेश के लिए उपयुक्त समझा गया है ।

बसराई वामन––इसका पेड़ छोटे कद का ५–६ फुट ऊँचा होता है । छोटा कद होने के कारण तेज हवा से इसको कम नकसान पहुँचता है। इसके

फल कुछ बड़े, कुछ टेढ़े, भद्दे पीले या पीलापन लिये हुए हरे रंग के होते हैं। छिलका मोटा और गूदा नरम तथा स्वादिष्ठ होता है। एक अच्छी गहर का वजन लगभग ३० सेर होता है और इसमें १०–११ दर्जन केले होते हैं।

हजारा––इसके पौधे ऊँचे और गहर भी साढ़े तीन चार फुट तक लम्बी होती है। फल लम्बा तथा निचला भाग मोटा और सिरे पर पतला होता है। छिलका मोटा, गूदा चिपचिपेदार होता है। पका हुआ फल खाने में स्वाद-रहित होता है, केवल तरकारी बनाने के काम आता है। इसकी पैदावार अधिक होती है।

उपर्युक्त दो किस्मों के अलावा उत्तर प्रदेश में फल के लिए मर्तबान, माल-भोग, रजली, अमृतसागर, अनुपान इत्यादि और तरकारी के लिए रामकेला, भोस कालीवो, भूठिया इत्यादि की खेती की जाती है।

पौधे लगाना––केले का प्रसारण केले की पुत्तियों से निकले हुए कल्लों द्वारा, जिन्हें सकर (Sucker) कहते है, होता है। सकर दो प्रकार के होते हैं—

(१) पतले पत्तेवाले, जिन्हें 'तलवार सकर' (Sword-Sucker) कहते हैं।

(२) चौड़े पत्तेवाले, जिन्हें 'पानीवाले सकर' (Water-Sucker) कहते हैं।

पतले पत्तेवाले सकर का आधार मोटा होता है और लगने के बाद यह तेजी से बढ़ता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि पतले पत्तेवाला सकर लगाने से फसल जल्द तैयार होती है और पैदावार भी अधिक होती है।

जिस खेत में केला लगाना हो उसकी मार्च-अप्रैल में दो-तीन जुताई करके भूमि को घासों से मुक्त कर लेना चाहिए। मई के महीने में केला लगाने के लिए गड्ढे तैयार कर लेने चाहिए। गड्ढे से गड्ढे की दूरी केले की किस्म पर निर्भर करेगी। छोटे कद का केला लगाने के लिए ६–६ फुट की दूरी पर गड्ढे बनाने चाहिए। लम्बे कद के केलों के लिए लम्बाई के अनुसार एक-दूसरे से दूरी बढ़ा देनी चाहिए। हजारा केला १०–१० या १२–१२ फुट पर लगाना ठीक होगा। गड्ढे डेढ़ फुट गहरे और इतने ही गोलाई के बनाने चाहिए। एक महीने तक खुले पड़े रहने के बाद प्रत्येक गड्ढे की मिट्टी में २० सेर गोबर की खाद या कम्पोस्ट मिलाकर, इस प्रकार से भर देना चाहिए

कि गड्ढों की ऊँचाई भूमि की सतह से ६" ऊँची हो जाय । वर्षा प्रारम्भ होने के बाद जब गड्ढों की मिट्टी अच्छी तरह से बैठ जाय, तब केले की पुत्तियों (पौधों) को लगा देना चाहिए। लगाने के बाद उन्हे तुरन्त सींच देना चाहिए।

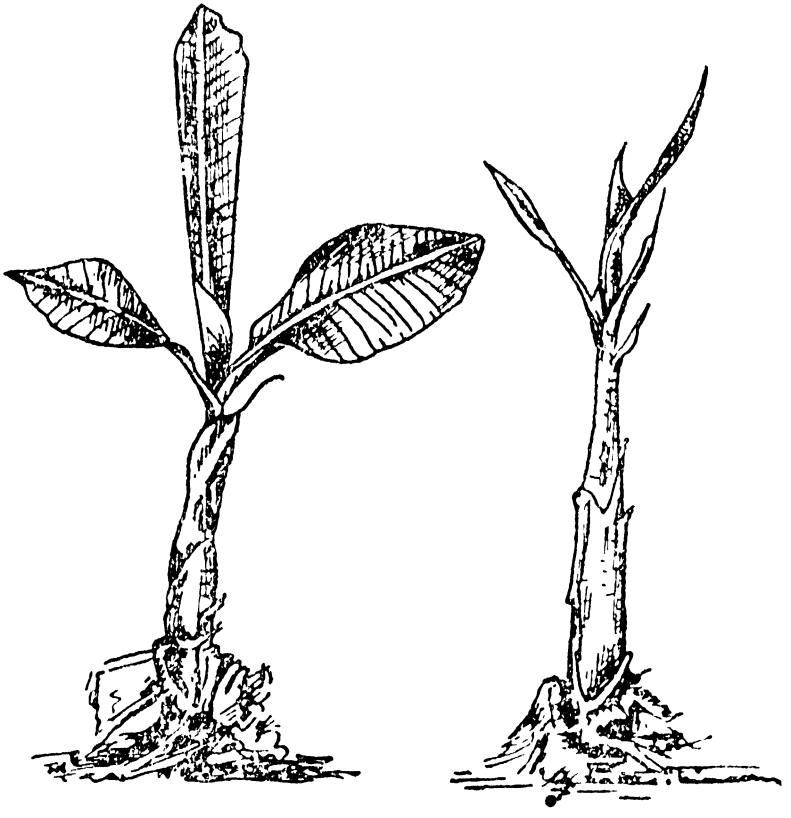

चित्र ३८—**केले की दो प्रकार की पुत्तियाँ ।**

केले का बढ़ाव प्रथम चार मास में जितना होता है उसी के अनुसार उसकी पैदावार होती है । अतः आरम्भ के चार महीनों में इसकी बहुत सेवा करनी चाहिए । खेत में घास-फूस नहीं उगने देना चाहिए । कई दिनों तक लगातार वर्षा न होने पर सिंचाई करनी चाहिए। लगाने के बाद दूसरे, तीसरे और चौथे महीने में प्रत्येक पौधे को क्रमशः डेढ़, डेढ़ और दो पौंड रेंड़ी की खली की खाद देनी चाहिए । रेंड़ी की खली के स्थान पर रासायनिक उर्वरकों का

प्रयोग भी किया जा सकता है। यदि अमोनियम सल्फेट देना हो तो दूसरे, तीसरे और चौथे महीने मे क्रमशः ३, ३ और ४ छटाक प्रति पौधा देना चाहिए। इन खादों को मिट्टी में खूब अच्छी तरह मिलाकर पानी दे देना चाहिए ।

ज्यों-ज्यों पौधे बढ़ें, उनकी जड़ों पर मिट्टी चढ़ाते रहना चाहिए, नहीं तो हवा चलने पर उनके उखड़कर गिर जाने का डर रहता है। प्रत्येक ७–८ सिचाई के बाद एक बार खेत की गुड़ाई करते रहना चाहिए, जिससे भूमि के अंदर हवा का प्रवेश होता रहे ।

केले के बीच-बीच में वर्षा ऋतु मे सनई की फसल हरी खाद के लिए बो दी जाय तो भूमि की उर्वरा शक्ति बनाये रखने में सहायता मिलेगी । सनई जब ६ सप्ताह की हो जाय, तब इसे उखाड़कर यों ही खेतों में छोड़ देना चाहिए। यह धीरे-धीरे सड़कर मिट्टी में मिल जायगी ।

पुत्तियाँ निकालना––केले के पौधों के नीचे से पुत्तियाँ निकलती रहती ह। यदि इन्हें अलग न किया जाय और बढ़ने दिया जाय तो पौधों की ताकत यही खींच लेती हैं और फल की पैदावार कम हो जाती है । अतः यह अत्यंत आवश्यक है कि पौधों में फूल लगने तक इनकी बगल में पुत्तियाँ न निकलने दी जायँ। फूल निकलने के बाद भी एक पौधे मे अधिक से अधिक दो पुत्तियाँ छोड़नी चाहिए। पुत्तियों को निकालने के लिए तने के पास की मिट्टी हटाकर पुत्ती को खुरपी से खोदकर निकाल लेना चाहिए ।

केले के तने की सुरक्षा––गर्मी के दिनों में यदि केले के तनों पर सीधे सूर्य का प्रकाश पड़ेगा तो उन पर जलने का-सा काला दाग पड़ जायगा और पौधों को क्षति भी पहुँचेगी। इस हानि से बचाने के लिए केले की दो-तीन पुरानी पत्तियों को मोड़कर पौधे की दक्षिण दिशा में इस प्रकार से लटका देना चाहिए कि सूर्य का प्रकाश तनों पर सीधे न पड़े,। पुराने पत्तों को कभी तनों पर से छीलकर निकालना नही चाहिए, बल्कि आवश्यकता पड़ने पर ऊपर से काट-कर अलग कर देना चाहिए।

पैदावार––लगाने के लगभग १२ महीने बाद केला फलने लगता है और उसके ४ या ६ महीने बाद वह पककर तैयार होता है । केले की गहर का विकास जब आधा हो चुके तब नीचे लटकते हुए लाल फूल के गुच्छे को

काटकर फेंक देना चाहिए। पैदावार कई बातों पर निर्भर करती है, जैसे जलवायु, केले की किस्म, खाद की मात्रा और सिचाई का समुचित प्रबंध इत्यादि। मामूली अच्छी खेती से ३०० मन फल प्रति एकड़ की आशा की जा सकती है।

फलों को पकाना––यदि फलों को पौधों पर ही पकने दिया जाय तो वे शीघ्र ही घुलकर सड़ना शुरू हो जाते है और उन्हें दूर स्थानों तक नही भेजा जा सकता। व्यवसाय में, केले की गहर जब पकने के लगभग हो जाती है, परन्तु पकना शुरू नहीं होता, उसी समय काट ली जाती है और जहाँ भेजना होता है, वहाँ कच्ची ही दशा में भेज दी जाती है। केले के सौदागर फिर इसे पकाकर तैयार करते हैं। पकाने का ढंग यह है––किसी कमरे का तीन चौथाई भाग केले से भर दिया जाता है और उसे पयाल या अन्य पत्तियों से ढँक दिया जाता है। फिर कमरे के एक कोने में गोबर के उपले और कुछ घास-फूस एक लोहे के बड़े बर्तन में जलाये जाते है। कमरा पूरी तरह से बंद कर दिया जाता है जिससे उसमें हवा आ-जा न सके। यह धुआँ देने की क्रिया २४ घंटे से ४८ घंटे तक चलती है, इसके प्रभाव से केला पक जाता है। इस प्रकार पकाने से पूरी गहर एक साथ पक जाती है। धुआँ देकर पकाये हुए केले उतने मीठे नही होते, जितने स्वाभाविक ढंग से पकाये हुए, या ६० से ७० फा० पर नियंत्रित तापक्रम पर कोल्ड स्टोर में रखकर पकाये गये केले।

केले की खेती में एक हजार रुपया प्रति एकड़ प्रति वर्ष लाभ प्राप्त करना कठिन नहीं है। परन्तु यह तभी सम्भव है जब अनुकूल जलवायु मिले और इसकी खाद-पानी की सभी आवश्यकताएँ पूरी की जायँ।

पपीता

पपीता उन फलों मे से है जो पौधे लगाने के बाद १२ महीनों के अन्दर फल खिला देते हैं। इसकी पैदावार भी बहुत अच्छी होती है। स्वास्थ्यप्रद गुणों के लिए यह प्रसिद्ध है। शहरों के निकट जहाँ इसकी खपत हो सकती है, इसकी खेती करके डेढ़ दो हजार रुपया प्रति एकड़ की आमदनी प्राप्त की जा सकती है। इसमें दोष इतना ही है कि इसका फल टिकाऊ नहीं होता और दूर-दूर तक आसानी से भेजा नहीं जा सकता। इसलिए इसकी खेती बड़े

शहरों के निकट ही होती है । परन्तु यह ऐसा फल है जिसकी खेती हर किसान को, यदि बेचने के लिए नहीं, तो अपने खाने के लिए अवश्य करनी चाहिए। अन्य फलों की तुलना में पपीता पैदा करना बहुत ही सरल है । यदि किसान अपने मकान के आगे-पीछे इसके १०–२० पेड़ भी लगा दे तो उसे काफी फल खाने को मिलते रहेंगे । यदि गाँव में इसका प्रचार हो जाय, तो न केवल अन्न पर से कुछ भार हलका हो जाय, बल्कि ग्रामवासियों का स्वास्थ्य भी कुछ अच्छा हो जाय।

पपीते की खेती इसके फलों के लिए अधिकतर की जाती है। परन्तु इससे एक दवा, जिसे 'पपेन' कहते हैं, तैयार की जा सकती है। पपेन हरे पपीते के फलों को खुरचने पर जो दूध निकलता है, उसको सुखाकर तैयार किया जाता है। पपेन एक मँहगी वस्तु है जिसको तैयार करने का सफल उद्योग भारत में चलाया जा सकता है।

जलवायु––पपीता ऐसा फल है जो उन स्थानों को छोड़कर, जहाँ पाला पड़ता है, सभी प्रकार के जलवायु में पैदा किया जा सकता है । गर्म और नम जलवायु इसके लिए सबसे अधिक उपयुक्त है। पपीता नमी तो चाहता है, परन्तु पौधों की जड़ों के पास पानी का लगना बिलकुल सहन नहीं कर सकता। अतः इसके लिए ऐसी दोमट भूमि छाँटनी चाहिए जिसमें पानी बिलकुल न रुकता हो। मटियार भूमि या ऐसी भूमि, जिसके दो-तीन फुट नीचे कंकड़ की तह हो, पपीते के लिए अच्छी नहीं होती।

किस्में––पपीते की प्रमुख किस्मों के नाम सीलोन, हनीड्यू, राँची, वाशिंगटन इत्यादि हैं। परन्तु पपीता ऐसे पौधों में से है, जिनमें अपर परागण (Cross pollination) होता है, इसलिए इन किस्मों को स्थायी रखना कठिन है। पपीते के नर और मादा पौधे अलग-अलग होते हैं, इसलिए परागण अनिश्चित रहता है। एक ही वृक्ष से प्राप्त किये हुए भिन्न-भिन्न फलों के बीज से उत्पन्न पौधों के गुण भी भिन्न हो सकते हैं । इस विषय में किसान यही कर सकता है कि वह ऐसे विश्वसनीय बीजविक्रेताओं के यहाँ से बीज मँगाये, जिनके यहाँ नियंत्रित परागण द्वारा शुद्ध बीज तैयार किये जाते हैं

और बाद में अपने लिए सबसे स्वस्थ एवं स्वादिष्ठ फलों से बीज एकत्रित करता रहे। बीज शुद्ध रखने के लिए यह भी आवश्यक है कि एक स्थान पर एक ही किस्म के पपीते की खेती की जाय। बीज इकट्ठा करने का ढंग यह है कि फल काटकर बीज को निकाल लें और उसे राख के ऊपर छाया में एक सप्ताह तक सुखायें। छाया में सुखाने के बाद दो-एक दिन धूप में सुखाकर बीज को किसी बंद बरतन में सुरक्षित रख देना चाहिए। यदि गीले बीज ही धूप में सुखाये जायेंगे तो उनमें से अधिकांश मर जायेंगे और बोने पर नहीं उगेंगे।

पौधे तैयार करना—पपीते का बीज पहले गमलों या क्यारियों में उगाया जाता है। क्यारियों में उगाना हो तो गुड़ाई करके मिट्टी को खूब भुरभुरी बनाने के बाद उसमें काफी गोबर की खाद या कम्पोस्ट मिलाकर ४ फुट चौड़ी और ६" ऊँची एवं आवश्यकतानुसार लम्बी क्यारियाँ बना लेनी चाहिए। इन्हीं क्यारियों में ६–६" की दूरी पर बीज बोना चाहिए। बीज सवा इंच से ज्यादा गहराई पर नही डालना चाहिए। बीज बोने के बाद थोड़ी खाद-मिश्रित मिट्टी ऊपर से डालकर किसी रोलर इत्यादि से भूमि को दबा देना चाहिए। यदि बीज वर्षा ऋतु प्रारम्भ होने के बाद बोया जाता है, तो क्यारियों की सिंचाई करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। परन्तु गर्मियों में बीज बोने पर क्यारियों की सिंचाई करते रहना अति आवश्यक है। सिंचाई दिन में दो बार हजारे से करनी चाहिए।

यद्यपि गर्मियों में बीज पैदा करने में सिंचाई की मेहनत करनी पड़ती है, फिर भी फल शीघ्र लेने के उद्देश्य से ऐसा करना आवश्यक है। गर्मियों में बोये गये बीज से पौधे वर्षा प्रारम्भ होने तक उद्यान में लगाने के लिए तैयार हो जाते हैं और उन्हें वर्षा-काल का पूरा समय तेजी से बढ़ने के लिए मिल जाता है। ऐसे पौधे शीघ्र फल दे देते हैं। परन्तु जो बीज वर्षा ऋतु प्रारम्भ होने पर बोये जाते हैं, वे उद्यान में पिछड़कर बैठाये जाने के कारण फल देर से देते हैं। बोने के तीन सप्ताह के अंदर बीज उग आता है और उसके महीने-डेढ़ महीने बाद खेत में बैठाने योग्य हो जाता है। जो पौधे गमले में बोये जाते हैं उनके दो इंच ऊँचे होने पर गमले से निकालकर एक बार पहले रोपणी में

लगाना चाहिए । रोपणी में जब यह पौधे ९" से १ फुट ऊँचे हो जायँ तब इन्हें उद्यान में लगाना चाहिए । जो बीज क्यारियों में ६–६" की दूरी पर बोये जायँ उनको वहीं बढ़ने देना चाहिए और उनके ९ से १२" होने पर उन्हें सावधानी से निकालकर उद्यान में लगाना चाहिए ।

पौधे लगाना—जिस भूमि में पपीता लगाना हो उसको गुड़ाई-जुताई करके घासों से मुक्त कर लेना चाहिए । उसके बाद पौधों को जिस स्थान पर लगाना हो वहाँ दो फुट गोलाई के दो फुट गहरे गड्ढे खोदने चाहिए । इन गड्ढों को एक मास तक धूप लगने के लिए खुला छोड़ देना चाहिए । इसके बाद प्रत्येक गड्ढे में १० सेर सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट और राख मिट्टी के साथ मिलाकर भर देनी चाहिए । वर्षा आरम्भ होने पर एक-दो पानी पड़ने के बाद गड्ढों की मिट्टी बैठ जायगी । यह जब पूरी तरह से बैठ जाय तब दूसरी मिट्टी खाद और राख मिलाकर गड्ढों में पूरी तरह भरकर उनके ऊपर तीन इंच ऊँचे गोल चबूतरे बना देने चाहिए । इन्हीं चबूतरों पर पौधों की रोपाई करनी चाहिए । अच्छी उपजाऊ भूमि में जहाँ खाद और सिंचाई का अच्छा प्रबंध हो वहाँ पौधों की एक-दूसरे से दूरी ८ फुट होनी चाहिए । पूर्ण विकसित पौधों के लिए ८ फुट की दूरी कम है । परन्तु चूँकि लगाये जानेवाले पौधों में से लगभग आधे नर निकल जायेंगे, जिनमें कोई फल नहीं लगेगा और उनमें से अधिकांश की पहचान होने के बाद काटकर फेक देना पड़ेगा, इसलिए प्रारम्भ में पौधों को नजदीक-नजदीक लगाना ठीक होगा । यदि भूमि कम उपजाऊ हो और खाद-पानी का भी ठीक से प्रबंध न हो, तो पौधों को और भी निकट-निकट ५–५ फुट की दूरी पर लगाना चाहिए ।

देख-रेख—उद्यान में जब पौधे लग जायँ और वे बढने लगें, उस समय एक छटाँक अमोनियम सल्फेट प्रति वृक्ष प्रति, मास तीन महीने तक देना चाहिए। वर्षा ऋतु में सिंचाई की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती, बल्कि इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि पौधों की जड़ों के पास पानी न रुकने पाये । जो चबूतरा पहले पौधा लगाने के समय बनाया गया था, उसकी मरम्मत करते रहना चाहिए, जिससे वह भूमि की सतह से कुछ ऊँचा बना रहे । वर्षा ऋतु के बाद सिंचाई

इस चबूतरे के चारों तरफ पानी भरकर रिंग पद्धति द्वारा की जानी चाहिए। जाड़ों में हर पंद्रहवें दिन और गर्मियों में सप्ताह में एक बार सिंचाई करते रहना चाहिए। पपीता लगा देने के बाद उनके बीच-बीच में तरकारियों की खेती करते रहना चाहिए। ऐसा करने से भूमि का तो पूरा उपयोग होता ही है,

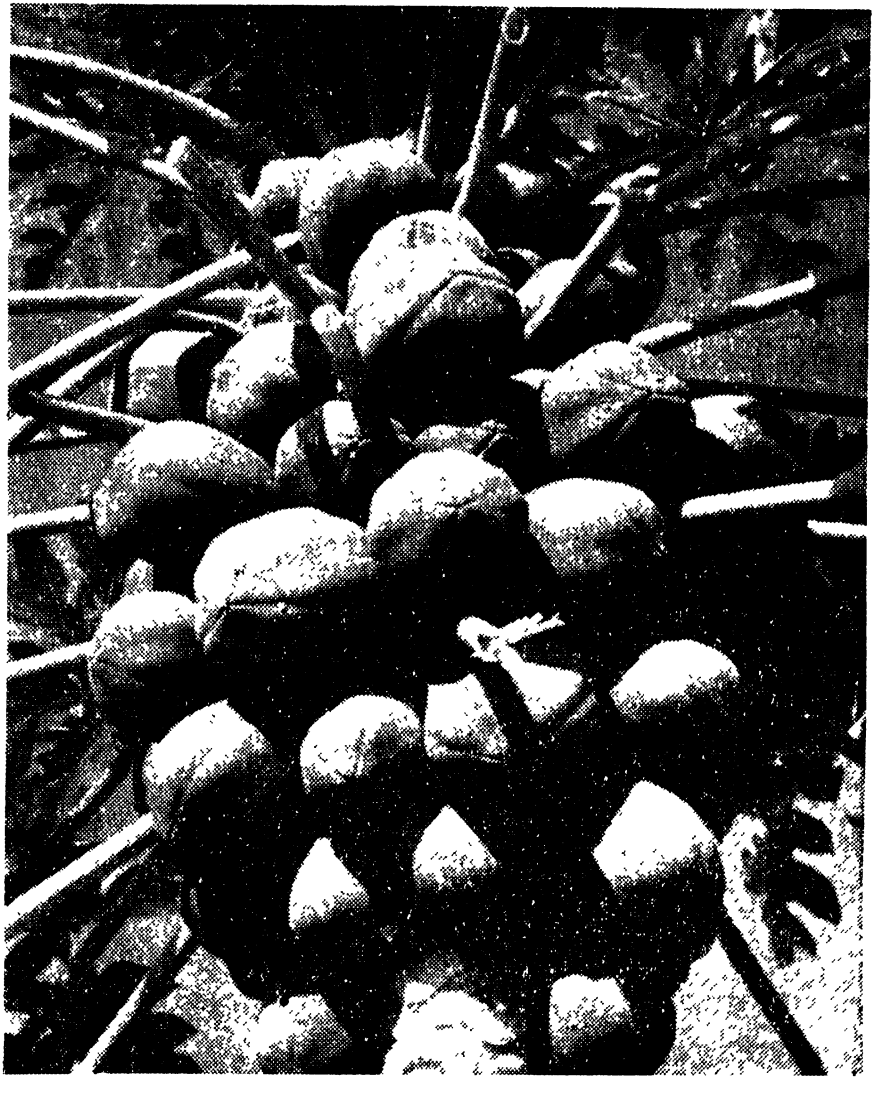

चित्र ३९—पपीतों के फलों की कौओं से रक्षा करने के लिए फलों के बीच-बीच और ऊपर की कुछ पत्तियाँ तोड़ देनी चाहिए

पपीते के पौधे भी तरकारी की फसलों के साथ निकाई-गुड़ाई और सिंचाई पाते रहते हैं जिससे उन्हें लाभ होता है । इस प्रकार से तरकारी की खेती करने से किसान को उस वर्ष भी लगभग पूरी आमदनी होती है जिस वर्ष पपीता लगाया जाता है। जब पपीते के पौधे बड़े हो जायँ तब बीच की खेती बंद कर देनी चाहिए । पपीते के खेत को हमेशा घास-फूस से साफ रखना चाहिए, नहीं तो फल अच्छे नहीं लगते । कौओं से रक्षा करने के लिए फलों के बीच की तथा ऊपर की कुछ पत्तियाँ तोड़ देना चाहिए (चित्र ३९)।

जैसा पहले कहा जा चुका है, पपीते के पौधों में से लगभग आधे नर निकल जाते हैं, जिनसे कोई आमदनी नहीं होती। अतः इन्हें उद्यान से निकाल देना ही उचित है । परन्तु ५% नर पौधों को छोड़ देना चाहिए, जिससे मादा फूलों का परागण होता रहे।

पैदावार––प्रत्येक पौधे से २० से ४० सेर तक फल की आशा की जा सकती है। कोई-कोई बहुत अच्छे पौधे डेढ़ मन तक भी फल दे सकते हैं । पपीता केवल दो साल तक अच्छा फल देता है, इसलिए इसके नये पौधे प्रति वर्ष लगाते रहना चाहिए, जिससे पौधे पुराने हो जायँ तो उनकी जगह नये पौधे फल देने लगें।

अनन्नास

अनन्नास संसार के महत्त्वपूर्ण व्यावसायिक फलों में से एक है । यह खाने में स्वादिष्ठ और पौष्टिक होता है और इसकी प्रति एकड़ पैदावार भी अधिक होती है । इसके अतिरिक्त इसमें एक गुण यह भी होता है कि इसका फल शीघ्र खराब नहीं होता और दूर-दूर तक आसानी से भेजा जा सकता है। यद्यपि भारत में अनन्नास की खेती कई क्षेत्रों में सफल हो सकती है, फिर भी इसकी खेती अभी वैज्ञानिक ढंग से बड़े पैमाने पर नहीं की जाती। उत्तर प्रदेश में तराई के जिलों में इसकी खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है।

जलवायु और भूमि––अनन्नास के लिए ऐसा जलवायु चाहिए जो न तो बहुत ठंडा हो और न बहुत गर्म। जहाँ तक नमी का सम्बन्ध है, यह नम

और सूखे दोनों प्रकार के जलवायु में पैदा हो सकता है । नम जलवायु में बिना सिंचाई के पैदा हो जाता है, परन्तु सूखे जलवायु में सिंचाई करना आवश्यक है । भूमि के सम्बन्ध में भी यह बहुत ही सहिष्णु है । केवल भारी मटियार जमीनों को छोड़कर और उन स्थानों को छोड़कर जहाँ पानी एकत्रित होता हो, यह सभी प्रकार की भूमि में पैदा किया जा सकता है । इसकी जड़ें भूमि में बहुत नीचे तक नहीं जातीं । अतः इसे ऐसे स्थानों पर भी पैदा किया जा सकता है, जहाँ भूमि की तह बहुत मोटी न हो ।

गर्म स्थानों में जहाँ सूर्य का प्रकाश बहुत तेज पड़ता है, वहाँ इसे कुछ हानि पहुँचती है । अतः ऐसे स्थानों पर इसे कुछ छाया में लगाना चाहिए । परन्तु छाया अधिक हो जाने पर फल का स्वाद अच्छा नहीं होता, इसलिए छाया घनी नहीं होनी चाहिए ।

किस्में––भारतवर्ष में अनन्नास की तीन मुख्य किस्में उगायी जाती हैं–– (१) जायन्ट क्यू, (२) क्वीन और (३) मारिशेस ।

(१) जायन्ट क्यू––इसके फल बड़े होते हैं । ३ से ८ सेर तक का फल साधारणतया मिलता है । इसका फल मौसम मे पिछड़कर अगस्त और सितम्बर में तैयार होता है । फल का आकार लम्बाकार गोल होता है । अँखुए कम गहरे और चौड़े होते हैं । इसलिए इसको काटकर खाने और कैनिंग के लिए डब्बे में बंद करने में आसानी होती है । पककर तैयार फल पीले रंग का होता है । उस पर कुछ हरे धब्बे भी होते हैं । गूदे का रंग हलका पीला होता है और उसमें रेशा नहीं होता । स्वाद अच्छा और खुशबूदार होता है । इसकी पत्तियाँ लम्बी होती हैं और उनके किनारों पर दाँते नहीं होते । बीच की दो-तीन पत्तियों को छोड़कर, जिनका रंग भूरा लाल होता है, शेष पत्तियाँ गहरे हरे रंग की होती है । इस किस्म के अनन्नास में 'सकर' याने पुत्तियाँ कम निकलतीं है ।

(२) क्वीन––इसके फल छोटे–डेढ़ से ढाई सेर तक होते है, परन्तु खाने में सबसे अधिक स्वादिष्ठ होते है । ये मौसम मे जल्दी तैयार भी होते हैं । छिलके पर आँखें गहराई तक होती हैं, इसलिए इसको छीलकर डब्बे

में भरना कठिन होता है। इसका फल जून-जुलाई तक तैयार हो जाता है। गूदे का रंग गहरा पीला और कुछ-कुछ पारदर्शी तथा साधारण रेशेदार होता है। इसकी महक बहुत ही अच्छी होती है। ताजा फल खाने के लिए लोग इसी किस्म को पसंद करते हैं। क्यू किस्म के पौधों की तुलना में इसकी पत्तियाँ छोटी होती हैं और उनका रंग लाल भूरा होता है तथा किनारे दाँतेदार होते हैं। इस किस्म के पौधों से पुत्तियाँ काफी निकलती है।

(३) **मोरिशेस**––यह मौसम के मध्य में फल देनेवाली किस्म है। फल भी इसके न बहुत छोटे और न बहुत बड़े होते हैं। इसकी दो उपजातियाँ हैं। एक का छिलका पूरी तरह पकने पर लाल होता है और दूसरी का पीला। इसकी पत्तियाँ दाँतेदार होती है और इसके दाँते बहुत पास-पास होते है। खाने में यह बहुत स्वादिष्ठ होता है। लाल रंग का फल अधिक मीठा होता है।

प्रसारण––अनन्नास का प्रसारण वानस्पतिक होता है। पौधों के चार भाग, जिन्हें सकर, स्लिप, क्राउन और डिस्क कहते हैं, प्रसारण के काम आते है। जड़ के पास जो पुत्तियाँ निकलती हैं उन्हें 'सकर' कहते हैं। फल के तने पर फलों के ठीक नीचे से जो पुत्तियाँ निकलती हैं उन्हें 'स्लिप' कहते हैं। फल के सिरे पर जो पत्तियों का गुच्छा होता है उसे 'क्राउन' कहते हैं। प्रमुख तने को कई टुकड़ों में काटने से जो टुकड़े तैयार होते हैं और जिनमें हर एक में दो-एक आँखें होती है उनको 'डिस्क' कहते हैं।

शीघ्र फल प्राप्त करने के लिए सकर का ही प्रयोग करना चाहिए। सकर बैठाने के लगभग १८–२० महीने बाद फल मिल जाते हैं। परन्तु पौधों के अन्य भागों के बैठाने से फल प्राप्त होने में लगभग ढाई साल लग जाते हैं। सकर को सीधे खेत में बैठाना चाहिए, जब कि स्लिप, क्राउन और डिस्क को पहले रोपणी (नर्सरी) में बैठाकर बड़ा करना चाहिए। डिस्क से पौधे तैयार करने के लिए स्वस्थ पौधे छाँटना चाहिए जिनमें पहले फूल न लगा हो इसके डंठल से पत्तियों को काटकर अलग कर देना चाहिए। फिर यह ध्यान रखते हुए कि प्रत्येक टुकड़े में दो-तीन आँखें हों, तने को कई टुकड़ों में काट लेना चाहिए। इन टुकड़ों को पोटैशियम परमैंगनेट के पतले घोल में लगभग

५ मिनट तक डुबोना चाहिए और इसके बाद रोपणी मे बैठा देना चाहिए। कुछ दिनों बाद टुकड़ो से कल्ले और जड़े फूट निकलेगी। जब यह कल्ले ६ से १२ इंच ऊँचे हो जायँ तब इन्हे रोपणी से उखाड़कर उद्यान मे लगा देना चाहिए।

पौधे लगाना—अनन्नास को अधिक खाद की आवश्यकता होती है, विशेष कर वानस्पतिक खाद की। पौधे लगाने के पहले खेत को अच्छी तरह से जोतकर उसे घासों से मुक्त कर लेना चाहिए। फिर गोबर की खाद या कम्पोस्ट ४०० से ५०० मन प्रति एकड़ के हिसाब से खेत में उन्हीं लाइनों में देना चाहिए, जिनमें अनन्नास बैठाना हो। अनन्नास की जड़ें बहुत गहराई तक नहीं जातीं और न दूर-दूर फैलती है। इसलिए खाद इनकी जड़ों के पास ही देना ठीक होता है। रोपाई के बाद जब पौधा लग जाय, तब दो बार मे रासायनिक खादों का मिश्रण, जिसमें ५० पौड अमोनियम सल्फेट, २२० पौंड सुपरफास्फेट और ४० पौंड पोटैशियम सल्फेट मिला हो, दो बार में देना चाहिए—पहली बार वर्षा आरम्भ होने पर और दूसरी बार मार्च महीने में।

पौधों के लगाने की दूरी इस हिसाव से रखनी चाहिए कि बाद में उनके बीच-बीच फल तोड़ने तथा गुडाई इत्यादि करने के लिए घुसने में आसानी हो। चूँकि पौधों की पत्तियाँ प्रायः दाँतेदार होती हैं, इसलिए यदि पौधे नजदीक-नजदीक रहेंगे और उनमें आने-जाने का रास्ता न रहेगा तो फल तोड़नेवाले और गुडाई इत्यादि करनेवाले के हाथ-पाँव छिल जायँगे। इसलिए अनन्नास को दोहरी या तेहरी लाइनों में घना लगाकर बीच-बीच में आने-जाने का रास्ता छोड़ देना चाहिए। भिन्न-भिन्न स्थानों पर रोपाई का भिन्न-भिन्न ढंग अपनाया गया है। परन्तु सबसे अच्छा यह मालूम होता है कि ५–५ फुट की दूरी पर दोहरी कतारें लगायी जायँ। दोनों कतारें एक दूसरे से दो फुट की दूरी पर होनी चाहिए और पौधे कतारों में १८–२० इंच की दूरी पर लगाये जायँ। पौधों को लगाते समय सकरों की नीचे की चार-पाँच पत्तियाँ काटकर नीचे का एक इंच तना साफ कर लेना चाहिए। पौधों के लगाने का सबसे अच्छा मौसम वर्षा ऋतु का प्रारम्भ है।

देख-भाल——अनन्नास की खेती में सफलता के लिए जल-निकासकी उचित व्यवस्था होनी चाहिए। खेत को घास से मुक्त रखना और पर्याप्त मात्रा में खाद का प्रयोग अति आवश्यक है। जिन स्थानों पर तापक्रम १०० डिग्री से अधिक हो, वहाँ छाया और अधिक सिंचाई की व्यवस्था करनी पड़ती है। नये उद्यानों में, जिनमे पौधे बहुत बड़े न हुए हों, बीच-बीच में अनन्नास लगाना बहुत ही लाभप्रद सिद्ध होगा। जैसा पहले कहा जा चुका है, अनन्नास की जड़े बहुत नीचे तक नही जातीं, इसलिए इसे खर-पतवार से मुक्त रखना अति आवश्यक है। इस उद्देश्य से हवाई द्वीप में, जहाँ अनन्नास की खेती सबसे अधिक होती है, पौधों की एक प्रकार के कागज से मल्चिग की जाती है। अपने देश में भी यदि पयाल अथवा अन्य किसी सूखे खर-पतवार से मल्चिग की जाय तो खेत में घासें भी कम उगेंगी और नमी बनाये रखने में भी आसानी होगी। यह भी देखा गया है कि मल्चिंग करने से फल बड़े और अधिक स्वादिष्ठ होते हैं। पौधे जब बड़े हो जायँ, तो उनकी जड़ों के पास मिट्टी चढ़ा देनी चाहिए, नहीं तो उनके एक ओर झुक जाने या उखड़ जाने का डर रहता है।

पैदावार——अनन्नास में फरवरी से अप्रैल तक फूल लगते हैं और फल जुलाई से सितम्बर तक पककर तैयार हो जाते है। कभी-कभी जाड़ों में बे-मौसम् फल लगते है परन्तु यह फल मीठे नहीं होते। अनन्नास के फूलने का समय बहुत हद तक कुछ रासायनिक पदार्थो तथा न्यासर्गो (हरमोन्स) के प्रयोग से बदला जा सकता है। बम्बई राज्य में किये गये एक प्रयोग में यह देखा गया कि जिन पौधें की पत्तियों के बीच में उनकी धुरी के पास थोड़ा कैलसियम कारबाइड रखकर दो-चार बूँद पानी डाल दिया गया, उनमें ६५% में दो महीने के अंदर फल लग गये, जब कि दूसरे पौधों में जिनमें कैल्-सियम कारबाइड नहीं डाला गया था, केवल २५%में फल लगे। बस्ती के फल अनुसंधान केन्द्र पर भी इस प्रयोग द्वारा शीघ्र फल प्राप्त करने में सफलता मिली है। यदि ठीक से खेती की जाय तो अपने देश में क्यू किस्म के अनन्नास से २५० मन से ३५० मन तक फल प्राप्त करना कठिन नहीं है। अनन्नास बैठाने के बाद ३-४ वर्ष अच्छे फल देता है, बाद में छोटे फल देने लगता है। इसलिए हर चार-पाँच साल पर खेत बदल देना चाहिए।

निम्बू-जाति के फलों की खेती

मैदानों में पैदा होनेवाले फलों में निम्बू-जाति के फलों की खेती सबसे अधिक लाभप्रद पायी गयी है। यदि इस जाति के फलों की खेती ठीक से की जाय तो ढाई-तीन हजार रुपये प्रति एकड़ की आमदनी प्राप्त करना कठिन नहीं है। इन फलों में यह भी गुण है कि ये अधिक दिनों तक सुरक्षित रखे जा सकते हैं और दूर-दूर तक भेजे जा सकते हैं।

इन फलों की इतनी अधिक जातियाँ हैं और ये एक-दूसरी से इतनी मिलती-जुलती है कि इनका वर्गीकरण करना कठिन है। परन्तु व्यावसायिक दृष्टि से पाँच जातियाँ प्रमुख है--

(१) माल्टा,
(२) संतरा,
(३) महानिम्बू या ग्रेप फ्रूट,
(४) नीबू या लाइम,
(५) लेमन

माल्टा--इसके फलों का रंग गहरा या हलका नारंगी होता है और ये दिसम्बर या जनवरी तक तैयार होते है। छिलके के ऊपर सूक्ष्म छिद्र होते है और वह चमकदार होता है। फल का आधार गोल और वजन औसतन सवा तीन छटाँक होता है। छिलका गूदे से चिपका हुआ होता है और फाँकें एक-दूसरी से अलग नहीं की जा सकती। गूदे का रंग हलका पीला होता है। केवल ब्लडरेड किस्म के माल्टा का गूदा गुलाबी लाल रंग का होता है। फल का रस खुशबूदार और मीठा होता है।

माल्टा की ही एक उपजाति मोसम्बी है। मोसम्बी का छिलका खुरदुरा होता है और इसमें पतली-पतली नालियाँ--जैसी बनी होती हैं। इसमें रस अधिक होता है परन्तु मिठास और तुर्शी कम होती है।

मुसम्बी माल्टा की खेती उन स्थानों पर सफलतापूर्वक हो सकती है जहाँ औसत वर्षा साल भर में ३० इंच से कम होती है तथा जहाँ गर्मी और ठंडी दोनों अधिक होती हैं और जहाँ दिन रात के तापक्रम में काफी अतर होता है। ब्लड-

रेड माल्टा के गूदे में लाल रंग लाने के लिए लम्बे अरसे तक निम्न तापक्रम की आवश्यकता पड़ती है।

संतरा——इसका फल नारंगी या गहरे नारंगी रंग का होता है। छिलका पतला होता है और इसके ऊपर छोटे-छोटे छिद्र होते है। छिलका गूदे से आसानी से अलग हो जाता है और फाँकें भी एक-दूसरी से आसानी से अलग हो जाती है। फल का आकार चपटा गोलाकार होता है। रस नारंगी रंग का कुछ तुर्शी लिये हुए मीठा और स्वादिष्ठ होता है। संतरा मोसम्बी और माल्टा दोनों से अधिक नम जलवायु सहन कर सकता है। यह अत्यधिक गर्मी और ठंड बर्दाश्त नहीं कर सकता।

महानिम्बू——(ग्रेप फ्रूट)——इसका फल पीले रंग का, काफी बड़ा, वजन में लगभग १० छटाँक होता है। छिलका चमकदार होता है, जिसके ऊपर सूक्ष्म छिद्र होते हैं। फल लगभग पिण्डाकार होता है। छिलका मोटा और गूदे से चिपका हुआ रहता है। गूदे का रंग हलका पीला होता है। स्वाद में मिठास, खटास और थोड़ा कड़ुवापन मिला रहता है। नमक के साथ खाने में यह अच्छा लगता है। इसकी मुख्य किस्में मार्श, मार्श बेदाना और सहारनपुर स्पेशल आदि हैं। महानिम्बू सभी प्रकार के जलवायु में हो सकता है, परन्तु अधिक उत्पत्ति के लिए सूखा जलवायु ही अच्छा रहता है।

नीबू (लाइम)——इसकी कई किस्में होती है, परन्तु सबसे अधिक लोकप्रिय कागजी नीबू है। नीबू का पौधा घनी झाड़ी की तरह होता है। इसकी पत्तियाँ पखनेदार और फूल बिलकुल सफ़ेद होता है, फल छोटा गोल या अंडाकार एक से डेढ़ इंच व्यास का होता है। छिलका बहुत पतला, रस हलके पीले हरे रंग का और बहुत खट्टा होता है। लाइम के लिए कुछ गर्म पाला-रहित और सूखा जलवायु अधिक अच्छा होता है।

लेमन (खट्टा)——यह भी नीबू की भाँति अपने खट्टे रस के लिए प्रयोग में लाया जाता है। इसके फल नीबू से दो या तीन गुने बड़े होते हैं और उनमें रस भी अधिक होता है। पेड़ जल्दी तैयार होते हैं और प्रतिकूल जलवायु को यह कागज़ी नीबू की तुलना मे अधिक सहन कर सकता है। लेमन बेदाना, यूरिका

और लिसबन इसकी मुख्य किस्में हैं। यूरिका और लेमन बेदाना साल में दो बार फलते हैं।

लेमन का पौधा बड़ा और फैला हुआ होता है। इसकी पत्तियाँ बड़ी और बिना पखने की होती हैं। फूल बड़ा और कुछ बैंगनी रंग लिये हुए होता है। फल लम्बे और भारी तथा नोकदार होते हैं। गूदे का रंग पीला होता है, छिलका कुछ मोटा होता है। इसका रस स्वाद में नीबू की अपेक्षा कम खट्टा होता है। लेमन सूखे और नम दोनों प्रकार के जलवायु में पैदा किया जा सकता है।

यद्यपि यह माना जाता है कि निम्बू जाति के फल विशेष प्रकार के जलवायु में ही सफल हो सकते हैं, परन्तु अनुकूल जलवायु का दायरा उतना सीमित नहीं, जितना आम तौर पर लोग समझते है। डा० हेज ने अपनी पुस्तक "फ्रूट ग्रोइंग इन इंडिया" में लिखा है कि इलाहाबाद में किन्नू फल, जो एक प्रकार का संतरा है, सफलतापूर्वक पैदा किया गया है। लेखक ने अपने बस्ती जिले के फार्म पर मोसम्बी सफलतापूर्वक पैदा की है, यद्यपि बस्ती जिले का जलवायु उसके लिए सर्वथा अनुपयुक्त समझा जाता है। ऐसा मालूम होता है कि निम्बू जाति के फलों की खेती में भूमि की बनावट और पानी का निकास (drainage) जलवायु से अधिक महत्त्वपूर्ण है। इस जाति के वृक्षों की जड़ों के पास पानी ठहरने या एकत्रित होने पर वे स्वस्थ नहीं रह सकते। अतः इनकी खेती के लिए ऐसी भूमि छाँटनी चाहिए जिसमें पानी बिलकुल न रुकता हो, जिसके नीचे मिट्टी, चट्टान या कंकड की ऐसी तह न हो जो पानी को नीचे जाने से रोक ले।

जिन स्थानों में भूमि के नीचे पानी की सतह पाँच फुट के अंदर होती है वहाँ भी ये फल सफल नहीं हो सकते। सारांश में, न तो भूमि की सतह पर और न सतह के पाँच फुट के अंदर पानी रुकना चाहिए। जिन स्थानों में स्वाभाविक ढंग से पानी का निकास ठीक से न होता हो, वहाँ कृत्रिम उपायों से पानी के निकास का प्रबंध यदि कर लिया जाय तो पौधों को स्वस्थ रखा जा सकता है। कुछ उद्यानों में देखा गया है कि यदि पौधों की लाइनों के

बीच-बीच लम्बी गहरी खाइयाँ खोद दी जायँ, तो पानी का निकास अच्छा हो जाता है और पौधे स्वस्थ हो जाते है। जिन स्थानों पर भूमि के अंदर पानी की सतह ऊपर होती है, वहाँ निम्बू जाति के फलों की जड़ों को भूमि की सतह के निकट ही फैलने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। यह उद्यान की सतह पर पयाल अथवा अन्य वानस्पतिक पदार्थ बिछाकर किया जा सकता है। ऐसा करने से, पौधों की जड़ें भूमि के अंदर बहुत नीचे तक न जाकर सतह के पास ही फैलती रहती है और इस प्रकार से वे नीचे के पानी से बच जाती है।

पौधे लगाना––किसान को किसी विश्वसनीय पौधशाला से अपने लिए पौधे प्राप्त करने चाहिए। वह स्वयं भी पौधे तैयार कर सकता है, परन्तु इसमें समय लगेगा और अनुभव न होने के कारण कठिनाई भी हो सकती है। अतः जिन किसानों को छोटे पैमाने पर उद्यान लगाना हो उनके लिए यही आसान है कि वे किसी विश्वसनीय पौधशाला से पौधे खरीद लें। पौधे मँगाने से पहले उनके लिए गड्ढे तैयार कर लेना चाहिए। जिन स्थानों पर पौधे लगाने हों वहाँ ३' गोलाई के ३' गहरे गड्ढे खोद लेने चाहिए। गड्ढा खोदते समय ऊपर की एक फुट मिट्टी को अलग रख लेना चाहिए और बाद में इसी मिट्टी में एक मन सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट मिलाकर भर देना चाहिए।

गड्ढा बरसात से एक दो सप्ताह पहले इस प्रकार भरना चाहिए कि वह भूमि की सतह से ६" ऊपर उठ जाय। वर्षा प्रारम्भ होने पर जब मिट्टी में पानी काफ़ी सोख जाय और उसको जितना बैठना हो बैठ जाय, तब पौधे लगाने चाहिए। पौधे फ़रवरी में भी लगाये जा सकते है, परन्तु ऐसा करने पर उन्हें लू से बचाने का प्रबंध करना पड़ेगा और सिंचाई भी अधिक करनी पड़ेगी। पौधे लगाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जमीन के अंदर उनकी गहराई उतनी ही रहे, जितनी नर्सरी में थी। जड़ के चारों तरफ मिट्टी खूब दबा देनी चाहिए और तुरंत पानी दे देना चाहिए। यदि जड़ के पास मिट्टी के दब जाने के कारण कुछ गहरा स्थान बन जाय, तो उसे पास की मिट्टी से भर देना चाहिए जिससे जड़ के पास पानी न रुके। माल्टा और मोसम्बी १६–१६ फुट की दूरी पर, संतरा और महानिम्बू २०–२० फुट की दूरी पर और नीबू, लेमन १५–१५ फुट की दूरी पर लगाना चाहिए।

सिंचाई——नीबू जाति के पौधों को जहाँ पानी की कमी से नुकसान पहुँचता है, वहाँ अधिक पानी से भी नुकसान पहुँचता है, अतः जब तक आवश्यकता न हो पानी नहीं देना चाहिए। पानी रिंग पद्धति से देना चाहिए अर्थात् पौधों की जड़ों के चारों ओर मिट्टी ऊँची करके उससे कुछ दूरी पर थाले बनाकर पानी भरा जाय। पौधों के तने में पानी लगने से तने के छिलके को नुकसान पहुँच सकता है। इसलिए पानी देते समय और वर्षा ऋतु में भी प्रयत्न यह होना चाहिए कि पौधों के तने सूखे बने रहें। ज्यों-ज्यों पौधे बढ़ें त्यों-त्यों तने के पास ऊँची पाटी हुई मिट्टी की परिधि भी बढ़ाते जाना चाहिए। सिंचाई की संख्या किसी स्थान की वर्षा पर निर्भर होती है। पानी सिर्फ उतना ही देना चाहिए, जितने से पत्तियाँ हरी रह सकें। गर्मी के दिनों में जब पत्तियाँ कुम्हलाकर गिरने लगें तब पानी देना चाहिए।

खाद——निम्बू जाति के फलों की खेती में असफलता का सबसे बड़ा कारण पौधों के पोषण की ओर पूरा ध्यान न दिया जाना है। जब कि अन्य पौधे खादों की कमी में किसी प्रकार अच्छी या बुरी दशा में जीवित रह सकते हैं, निम्बू जाति के पौधों को यदि पोषण ठीक से न पहुँचे, तो इनमें अनेक बीमारियाँ लग जाती हैं और ये मर जाते हैं। अतः इस जाति की खेती में सफलता प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि इसमें नियमित ढंग से खाद दी जाय। प्रत्येक पूरे बढ़े हुए पौधे में दो मन गोबर की खाद या कम्पोस्ट, डेढ़ सेर अमोनियम सल्फेट, डेढ़ सेर हड्डी का चूरा और पाँच सेर राख प्रति वर्ष देनी चाहिए। यदि पौधे छोटे हैं तो उसी अनुपात से खाद की मात्रा कम कर देनी चाहिए। नीबू और लेमन के लिए उपर्युक्त मात्रा की आधी ही खाद देना काफी होगा। कम्पोस्ट या गोबर की खाद दिसम्बर के महीने में देनी चाहिए और उर्वरकों को फरवरी के प्रारम्भ में। खाद पौधों के तनों से कुछ दूर फैलाकर मिट्टी मे अच्छी तरह मिला देनी चाहिए और उसके बाद तुरन्त पानी दे देना चाहिए।

काट-छाँट——निम्बू जाति के पौधों को बहुत काट-छाँट की आवश्यकता नहीं होती। पौधे लगान पर शुरू-शुरू में इस प्रकार से काट-छाँट करते रहना चाहिए कि भूमि से दो-तीन फुट तक एक ही तना विकसित हो, जिसमे से चार-पाँच प्रमुख शाखाएँ निकलें। जल-प्ररोह को भी, जिसे अंग्रेजी में 'वाटर शट' कहते

हैं, काटते रहना चाहिए। इनकी पहचान यह है कि ये अन्य शाखाओं से अधिक स्वस्थ दिखलाई देते है, बहुत तेजी से बढ़ते है और मुख्य शाखाओं पर से लगभग समकोण बनाते हुए ऊपर निकलते हैं। इनको यदि बढ़ने दिया जाय, तो आगे अन्य शाखाओं को बढ़ने का मौका नहीं मिलता। नीचे तने के पास से जो शाखाएँ निकलती हैं, उन्हें भी काटकर अलग कर देना चाहिए। सूखी और रोगग्रस्त डालों को भी काट कर अलग कर देना चाहिए।

गुड़ाई––निम्बू जाति के बागों की साल में कम-से-कम दो बार गुड़ाई होनी चाहिए। गुड़ाई छिछली होनी चाहिए जिससे पौधों की फैली हुई जड़ें न कटें।

पैदावार––नीबू और लेमन के फल वर्षाऋतु में तैयार होते हैं। संतरा, माल्टा, मोसम्बी, महानिम्बू इत्यादि के फल नवम्बर से जनवरी तक तैयार होते हैं। निम्बू जाति के फल पकने पर भी काफी समय तक पेड़ पर छोड़े जा सकते हैं।

फलों की पैदावार उन के स्वास्थ्य पर निर्भर रहती है। संतरा और माल्टा की पैदावार औसतन १०० से १२५ मन प्रति एकड़ तक होती है। नीबू प्रति पेड़ लगभग ६००, लेमन ३५० और महानिम्बू ३०० फल देते हैं। निम्बू जाति के फल साधारण तापक्रम पर भी काफी समय तक रखे जा सकते हैं और शीत भंडार में तो कई महीनों तक रखे जा सकते है।

बीमारियाँ––पौधों की देख-रेख ठीक से न होने के कारण तथा प्रतिकूल जलवायु होने के कारण निम्बू जाति के फलों में बीमारियाँ जल्दी लग जाती हैं। इनमें से दो मुख्य है, एक का नाम 'निम्बू कैंकर' और दूसरी 'निम्बू डाईबैक'।

निम्बू कैंकर––यह जीवाणुओं से उत्पन्न होनेवाली बीमारी है। इससे वृक्ष के सभी भाग; पत्ते, टहनियाँ तथा फल प्रभावित होते हैं। इस बीमारी का प्रथम लक्षण पहले पत्तियों पर हलके पीले दाग का दिखाई देना है, जो बाद में खुरदरा और भूरे रंग का हो जाता है। यह बीमारी नीबू और महानिम्बू में अधिक लगती है। लेमन और संतरा में यह बीमारी कम लगती है। इस बीमारी की रोकथाम के लिए सर्वप्रथम जितनी रोगग्रस्त डालियाँ और पत्ते

हों उन्हें काटकर अलग कर देना चाहिए। काटने के बाद पूरे पेड़ पर ५:५:५० शक्ति का बोर्डो मिक्सचर छिड़कना चाहिए (बोर्डो मिक्सचर बनाने के ढंग के लिए देखिए पृष्ठ १६५)

निम्बू डाईबैक—इस बीमारी से टहनियों के सिरों की पत्तियाँ पीली पड़कर गिर जाती है और पौधे का सिरे से सूखना शुरू हो जाता है। पौधे का बढ़ना और फलों का लगना कम हो जाता है। संतरा और माल्टा मे यह बीमारी अधिकतर लगती है। नीबू-लेमन में यह बीमारी कम लगती है। पानी का ठीक निकास न होने के कारण भी इसी किस्म के लक्षण दिखाई देते हैं।

इस बीमारी की रोकथाम के लिए पहले तो पानी के निकास का ठीक प्रबंध करना चाहिए, फिर सूखी टहनियों को पेड़ से काटकर अलग कर देना चाहिए। पेड़ों के नीचे गोबर की खूब सड़ी हुई खाद मिलानी चाहिए। ताँबे और जस्ते का घोल पेड़ पर छिड़कना चाहिए।

ताँबे की कमी—भूमि में ताँबे की कमी होने पर नयी शाखाओं में बहुत हरी और औसत से बड़ी पत्तियाँ निकलती हैं, जिनसे भ्रम होता है कि पौधा बहुत ही स्वस्थ है। परन्तु थोड़े समय बाद डालें और पत्तियाँ टेढी-मेढी हो जाती हैं। आगे चलकर बहुत छोटी पत्तियाँ निकलती हैं जो शीघ्र ही गिर जाती हैं और डालें सूखना शुरू हो जाती हैं। फल यदि कुछ लगते भी हैं तो उनके छिलके के ऊपर टेढी-मेढी शक्ल के दाग पड़ जाते हैं जो शुरू में हलके रंग के होते हैं, फिर लाल बादामी और अंत में काले हो जाते हैं। फल जल्दी सूख जाते हैं और स्वादरहित होते हैं। ताँबे की कमी बोर्डो मिक्सचर के छिड़काव से दूर हो जाती है। चूँकि निम्बू कैंकर की रोकथाम भी बोर्डो मिक्सचर से ही होती है, अतः बोर्डो मिक्सचर का छिड़काव साल में दो बार करना निम्बू जाति के पौधों को स्वस्थ बनाये रखने के लिए आवश्यक है।

जस्ते की कमी—इसका चिह्न यह है कि नयी पत्तियाँ बहुत पतली, छोटी और नजदीक-नजदीक निकलती है और वे लटकने के बजाय खड़ी दिखलाई देती हैं। पत्तियों की नसें गहरे हरे रंग की होती हैं, परन्तु उनके बीच-बीच का शेष भाग हलके पीले रंग का होता है। आगे चलकर पत्तियाँ गिर जाती हैं और पौधे झाड़ी की तरह दिखाई देने लगते हैं जिनके सिरों पर सूखी लकड़ी निकली

रहती है। कुछ शाखाएँ स्वस्थ भी निकलती हैं, परन्तु आगे चलकर वे भी रोग-ग्रस्त हो जाती हैं। इस बीमारी की रोकथाम केवल जिंक सल्फेट के छिड़काव से ही हो सकती है। एक सेर जिंक सल्फेट और आधा सेर चूने को १०० गैलन पानी में घोलकर इस प्रकार से छिड़कना चाहिए कि पौधा बिलकुल तर हो जाय। छिड़काव नयी पत्तियाँ निकलने के बाद साल में दो बार करना चाहिए। छिड़-काव बहुत सख्त धूप में नहीं करना चाहिए।

ताँबा और जस्ता के अतिरिक्त कभी-कभी अन्य गौण तत्त्वों, जैसे लोहा, बोरान, मैंगनीज़ और मैंगनीशियम इत्यादि की कमी से भी निम्बू जाति के पौधे रोग-ग्रस्त हो सकते हैं। किसी विशेषज्ञ से इनकी पहचान कराने पर इन तत्त्वों के लवण के छिड़काव से पौधे स्वस्थ किये जा सकते हैं।

अध्याय ११

फसलों के कुछ लाभदायक हेर-फेर

किसान किस भूमि पर कौन सी फसलें बोयें कि उनको अधिक-से-अधिक लाभ हो, यह भूमि की स्थिति, उसकी बनावट, जलवायु तथा उपज की बिक्री की सुविधाओं पर निर्भर करता है। कोई एक ही कार्यक्रम सभी किसानों के लिए उपयुक्त नही हो सकता। उदाहरण के लिए चीनी मिल के नज़दीक का किसान गन्ने की अच्छी फसल पैदा करके लाभ उठा सकता है। परन्तु जहाँ चीनी मिल की सुविधा नहीं है वहाँ गन्ने की खेती पर विशेष जोर देना ठीक नही, क्योंकि गुड़ बनाकर गन्ने की अधिक खपत करना सम्भव नही है। बड़े-बड़े शहरों के निकट के किसान फल, दूध, तरकारी इत्यादि पैदा करके शहरों में बेचकर अधिक धन कमा सकते हैं। परन्तु यदि शहर से दूर का किसान गोभी या अन्य ऐसी ही शीघ्र नष्ट होनेवाली दूसरी फसले उगाता है, तो बाजार की सुविधा न होने के कारण उसे लाभ के बजाय हानि होने की सम्भावना रहेगी। अतः फसलों के हेर-फेर का निर्णय करने से पहले काफ़ी सोच-विचार कर लेना चाहिए कि पैदावार को लाभप्रद मूल्यों पर बेचा जा सकेगा या नहीं।

फल और तरकारी की खेती द्वारा सबसे अधिक आय होती है, अतः यदि इनकी खपत की सुविधा हो तो गहन खेती करनेवाले किसानों को इस प्रकार की खेती पर अधिक जोर देना चाहिए। परन्तु यदि इनकी खपत की सम्भावना न हो, तो भी गहन खेती करनेवाले किसानों को निराश होने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि उत्तम ढंग से यदि अनाजों की भी खेती की जाय तो काफ़ी आमदनी हो सकती है। गन्ने को प्रायः अधिक आयवाली फसल माना जाता है। मामूली तौर से अच्छी मानी जानेवाली गन्ने की फसल ८०० मन प्रति एकड़ तक पैदा होती है, जिससे ढुलाई का खर्चा निकालकर लगभग ११०० रुपये की आमदनी हो सकती है। परन्तु जितनी मेहनत और पूँजी गन्ने की फसल उगाने पर लगायी

जाती है, यदि उतनी ही गेहूँ और मूँग पर लगायी जाय, तो सम्भव है कि ४० मन गेहूँ और दो फसलें मूँग की मिलाकर १५ मन प्रति एकड़ मूँग प्राप्त की जा सके, जिसकी कीमत कुल मिलाकर मौजूदा बाजार भाव पर ११०० रुपये से कम न होगी। वास्तव में, उगायी जानेवाली फसल का निर्णय करना उतना महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं, जितना उसको अच्छे ढंग पर उगाना। अनाज की खेती करनेवाला किसान भी अच्छी आमदनी प्राप्त कर सकता है, यदि वह उसे ढंग से कर सके।

किसान को अपनी परिस्थिति के अनुसार स्वयं यह निर्णय करना चाहिए कि उसके लिए सबसे अधिक लाभप्रद फसलों का हेर-फेर कौन-सा हो सकता है। यहाँ केवल उदाहरण के लिए कुछ फसलों के हेर-फेर का वर्णन किया जाता है, जो साधारण स्थिति में लाभप्रद पाया गया है। फसलों का इससे भी अधिक लाभप्रद हेर-फेर सोचा जा सकता है, परन्तु यह न भूलना चाहिए कि भूमि से हम उतना ही लेने के अधिकारी हैं जितना हम उसे दें। एक साल या दो-तीन साल तक यह सम्भव है कि हम भूमि से ऐसी फसलें लेते रहें, जो भूमि को कुछ देती नहीं और बराबर उसका शोषण करती रहती है। परन्तु यह क्रम अधिक समय तक नहीं चल सकता। कुछ समय बाद खेत कमज़ोर हो जायगा और पैदावार कम हो जायगी। अतः फसलों का हेर-फेर निश्चित करते समय ध्यान रखना चाहिए कि खेतों की उर्वरा शक्ति कम न होने पाये।

यह भी ध्यान रखना चाहिए कि भूमि की उर्वरा शक्ति केवल रासायनिक उर्वरकों से बनाये रखना संभव नहीं। कम्पोस्ट, हरी खाद और दलहन की फसलों का प्रयोग आवश्यक है। केवल आमदनी की दृष्टि से आलू, आलू के बाद प्याज और प्याज के बाद अरवी की फसल लेना अत्यधिक लाभप्रद होगा। परन्तु साधारणतया फसलों के ऐसे हेर-फेर से भूमि शीघ्र ही अनुपजाऊ हो जायगी और यह क्रम अधिक दिनों तक न चल सकेगा। परन्तु यदि किसी स्थान पर शहर का गन्दा पानी आता हो या कम्पोस्ट खाद बड़ी मात्रा में प्राप्त हो, तो इस प्रकार के फसल-चक्र सम्भव हैं और उन किसानों को, जिन्हें ये सुविधाएँ उपलब्ध हैं, इनसे पूरा-पूरा लाभ उठाना चाहिए। आगे जिन फसलों के हेर-फेर का वर्णन किया जा रहा है, वह साधारण भूमियों के लिए है, जिसका उपयोग करके अधिकांश किसान लाभ उठा सकते हैं।

(१) अरहर-मूँगफली-गन्ना

प्रायः गन्ने की खेती करनेवाले किसान गन्ना बोने के पहले या तो खेत को खाली रखकर उसकी जुताई करते रहते हैं, या वर्षा ऋतु में हरी खाद बोकर उसको सड़ाने के लिए खेत को जोतते रहते हैं। दोनों ही दशाओं में खेत ८ महीने बेकार पड़ा रहता है। छोटे किसान, जिनके पास भूमि कम होती है, अधिक समय तक भूमि खाली नहीं रख सकते। वे प्रायः मक्का, धान, रुई और कभी-कभी रबी की भी फसल उगाकर तब गन्ना बोते हैं। परन्तु ऐसा करने से गन्ने की फसल अच्छी नहीं होती, और उसकी पैदावार बहुत ही घट जाती है। गन्ने की फसल भी अच्छी हो और खेत भी खाली न रहे, इस उद्देश्य से एक सस्यचक्र का प्रयोग किया जा सकता है। इस सस्यक्रम के अनुसार वर्षाऋतु आरम्भ होते ही खेत में अरहर और मूँगफली बो दी जाती है। दोनों फसलों की बोआई लाइन से की जाती है और इस बात का ध्यान रखा जाता है कि मूँगफली की हर ५ लाइनों के बाद, जो एक-दूसरी से डेढ़ फुट की दूरी पर होती हैं, एक लाइन अरहर की पड़े। इस प्रकार अरहर की लाइनें एक-दूसरी से ९ फुट की दूरी पर पड़ती हैं, जैसा कि चित्र संख्या ४० में दिखाया गया है।

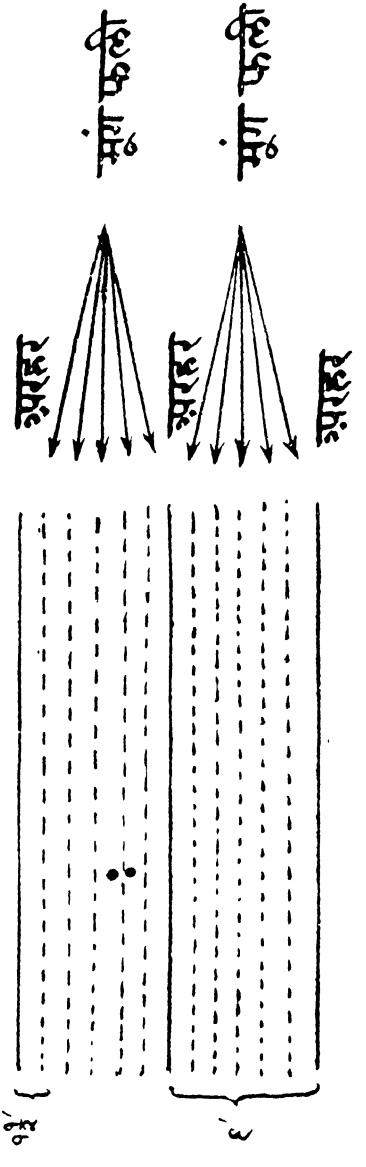

चित्र ४०—मूँगफली की हर पाँच लाइनों के बाद अरहर की एक लाइन

शुरू-शुरू में अरहर लाइनों में काफी घनी बोयी जाती है, परन्तु बाद में उसमें से कमजोर पौधों को निकालते रहते हैं, यहाँ तक कि अगस्त तक अरहर के पौधे लाइनों में डेढ़ फुट से तीन फुट की दूरी पर रह जाते हैं। मूँगफली की निकाई-गुड़ाई के साथ-साथ अरहर की भी निकाई-गुड़ाई दो बार की जाती है। मूँगफली के लिए निकाई-गुड़ाई आवश्यक है, अरहर को भी इससे बहुत लाभ पहुँचता है।

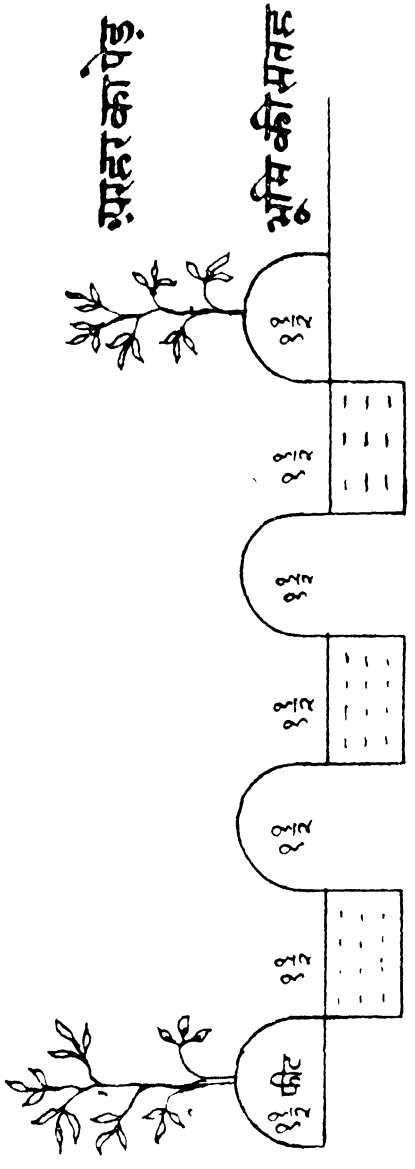
अरहर का पौधा
भूमि की सतह
१½'
१½'
१½'

से गन्ना बो दिया जाता है। जब तक गन्ना उगता है तब-तक अरहर तैयार हो जाती है और काट ली जाती है। यद्यपि अरहर के पौधों की लाइन दूसरी लाइनों से ९ फुट की और एक पौधा दूसरे पौधे से ढाई तीन फुट की दूरी पर होता है, परन्तु निकाई-गुड़ाई तथा बाद में मिट्टी चढ़ जाने तथा नालियों में खाद इत्यादि पड़ जाने से अरहर के पौधों का विकास बहुत अधिक होता है और उसी हिसाब से पैदावार भी बढ़ जाती है। ऐसे कुछ पौधों से पूरा एक सेर दाना प्राप्त किया गया। इस ढंग से उपजाये हुए गन्ने की पैदावार बड़ी अच्छी होती है, क्योंकि मूँगफली और अरहर दोनों दलहन की फसलें हैं, उनकी जड़ों और गिरी हुई पत्तियों से खेत की ताकत बहुत बढ़ जाती है।

सर्वप्रथम इस ढंग का प्रयोग सोहना कृषिफार्म, जिला बस्ती मे हुआ था। उसके बाद ईख-अनुसंधान केन्द्र, शाहजहाँपुर में इस सस्य-चक्र का परीक्षण हुआ। दोनों स्थानों में अरहर, मूँगफली और गन्ने की जो पैदावार मिली वह निम्नलिखित तालिका में दी हुई है।

अरहर, मूंगफली और गन्ने की पैदावार-तालिका

वर्ष	स्थान	फसले	पैदावार मनों में
१९३९–४१	सोहना कृषिफार्म, जिला बस्ती	मूँगफली	१६–०–०
		अरहर	१९–०–०
		गन्ना	१०५०–०–०
१९४४–४६	ईख अनुसंधान केन्द्र, शाहजहाँपुर	मूँगफली	१४–६–०
		अरहर	१५–९–०
		गन्ना	८८३–८–०

विशेष लाभ—इस सस्य-चक्र के प्रयोग का विशेष लाभ यह है कि गन्ना बोने से पहले खेत को खाली नहीं रखना पड़ता और गन्ने की फसल भी औसत से अच्छी होती है। किसान को खरीफ़ और रबी दोनों फसलें मिल जाती हैं और खेत की उर्वरा शक्ति भी कम-से-कम उतनी बढ़ जाती है जितनी वह हरी खाद के प्रयोग से बढ़ती है।

सावधानी—उपर्युक्त सस्यचक्र का प्रयोग उन्ही खेतों में सम्भव है, जिनकी मिट्टी बलई दोमट हो और जिनमें पानी न रुकता हो।

(२) गेहूं + बरसीम--धान

सभी किसान जानते हैं कि बरसीम बोने से खेत की उपजाऊ शक्ति बढ़ती है। जिस खेत में बरसीम वोयी जाती है, उसके बाद खरीफ की फसल में यदि कोई खाद न भी दी जाय तो भी अच्छी फसल पैदा हो जाती है। बरसीम के इस गुण का किसानों को अधिक-से-अधिक लाभ उठाना चाहिए। परन्तु यदि बरसीम के हरे चारे की लाभप्रद खपत का कोई प्रबंध न हो, तो किसान को बरसीम बोने से नकद आमदनी बहुत कम होती है। यही कारण है कि खेतों की उपज-शक्ति बढ़ाने के लिए सबसे उत्तम फसल होते हुए भी बरसीम की खेती अधिक बढ़ नहीं रही है।

लेखक का अपना फार्म ऐसे स्थान पर है जहाँ दूध की अधिक बिक्री सम्भव नहीं, इसलिए केवल बरसीम बोना लाभप्रद सिद्ध नहीं हो सका। अतः उस फार्म पर बरसीम और गेहूँ मिलाकर बोने का ढंग अपनाया गया। यदि बरसीम और गेहूँ एक साथ छिटकवा बो दिया जाता है, तो गेहूँ शीघ्र बढ़कर बरसीम को दबा लेता है और सूरज की रोशनी बरसीम तक न पहुँचने के कारण बरसीम प्रायः नष्ट हो जाती है। परन्तु यदि गेहूँ और बरसीम को पट्टियों में बोया जाय, तो गेहूँ की पट्टियों के बीच-बीच खुली जगह होने के कारण थोड़ा-थोड़ा प्रकाश बरसीम तक पहुँचता रहता है और इस प्रकार बरसीम जीवित बनी रहती रहती है।

बरसीम और गेहूँ को पट्टियों में बोने का ढंग--सर्वप्रथम खेत में पलेवा करके खूब नमी कर ली जाती है। पलेवा के बाद ज्यों ही खेत जोतने के लायक तैयार हो शीघ्र दो जुताई करके १२ सेर बरसीम का बीज प्रति एकड़ के हिसाब से बोकर मिला दिया जाता है। बरसीम का बीज मिट्टी में मिलाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बीज मिट्टी में चौथाई इंच से ज्यादा नीचे न जाय। इसको मिट्टी में मिलाने का सबसे उत्तम उपाय यह है कि बीज बोने के बाद अरहर या किसी दूसरी चीज के झाँखर से खेत में झाड़ू लगा दी जाय। बीज को मिलाने का यह ढंग इसलिए प्रयोग में लाया जाता है जिससे बीज तो मिट्टी में मिल जाय, परन्तु वह बहुत नीचे न जाय। बरसीम का बीज बहुत छोटा

होता है और यदि वह जमीन में दब जायगा तो उगने में कठिनाई होगी। उपर्युक्त तरह पर झाड़ू लगाने के बाद खेत में पाटा लगा दिया जाता है। पाटा लगाने के बाद खेत में बारी-बारी से ढाई-ढाई और डेढ़-डेढ़ फुट की दूरी पर डोरी से लाइनें लगा दी जाती हैं। इस प्रकार पूरा खेत डेढ़ और ढाई फुट चौड़ी पट्टियों में बँट जाता है। ढाई फुट की पट्टियों में हल चलाकर कूँड़ों में गेहूँ बो दिया जाता है। इस प्रकार बोने से गेहूँ ढाई फुट की चौड़ी पट्टियों में उगता है और बरसीम पूरे खेत में उग आती है।

गेहूँ और बरसीम उग आने के बाद कोई विशेष क्रिया करने के लिए शेष नहीं रह जाती। जैसे दो या तीन बार गेहूँ की सिंचाई की जाती है, वैसे ही समय-समय पर इन खेतों में भी की जाती है। प्रायः सोचा जाता है कि बरसीम के लिए अधिक सिंचाई की आवश्यकता होगी, परन्तु पूर्वी उत्तर प्रदेश के जलवायु में, जहाँ लेखक का फार्म है, यह पाया गया है कि गेहूँ के साथ बरसीम बोने से बरसीम की पानी की आवश्यकता दो-तीन सिंचाइयों से पूरी हो जाती है। गेहूँ के बीच-बीच डेढ़ फुट की पट्टियों में उगी हुई बरसीम को सावधानी से काटकर किसान अपने जानवरों को खिला सकता है। यदि बरसीम खिलाने के लिए जानवर न हों तो वह काटकर उसी स्थान पर खाद बनाने के लिए छोड़ दी जा सकती है। गेहूँ की ढाई फुट चौड़ी पट्टी में उगी बरसीम को काटने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए।

बरसीम और गेहूँ एक साथ मिलाकर बोने का उपर्युक्त ढंग छोटे किसानों के लिए, जिनके पास भूमि की कमी है, दो प्रकार से लाभदायक सिद्ध हो सकता है। प्रथम तो यह कि किसान एक ही खेत में साल-दर-साल धान और गेहूँ दोनों ले सकता है। मामूली ढंग से धान के बाद गेहूँ और गेहूँ के बाद धान लगातार एक ही खेत में लेने से खेत की उर्वरा शक्ति नष्ट हो जाती है। परन्तु यदि गेहूँ के साथ उपर्युक्त ढंग से बरसीम मिलाकर बोयी जाय तो खेत की ताकत बनी रहती है। गेहूँ बोने से जितनी ताकत निकल जाती है लगभग उतनी ही बरसीम बोने से पूरी हो जाती है। बरसीम के साथ गेहूँ बोने से गेहूँ की फसल भी अच्छी लगती है। यद्यपि गेहूँ केवल ढाई फुटवाली पट्टियों में ही पैदा होता है, फिर भी लेखक को पिछले दो वर्षों में पूरे खेत पर औसतन २५ मन

प्रति एकड़ गेहूँ मिला। गेहूँ के बाद धान भी लगभग २५ मन प्रति एकड़ पैदा हो जाता है। इस प्रकार यह सम्भव है कि कई वर्षों तक एक ही खेत से ५० मन प्रति एकड़ अन्न पैदा करते हुए भी उस खेत की उपज-शक्ति बनाये रखी जाय। जब गेहूँ तैयार हो जाता है, तब नीचे एक बालिश्त डंठल छोड़कर उसे काट लिया जाता है और उस के बाद तुरन्त उसकी सिचाई कर दी जाती है। खेत कटने के एक महीने बाद, बरसीम बढ़कर पूरे खेत पर फैल जाती है। यदि किसान चाहे तो बरसीम का बीज तोड़ ले। और इस प्रकार वह डेढ़-पौने दो सौ रुपये की अतिरिक्त आमदनी प्राप्त कर सकता है। परन्तु खेत की उपज-शक्ति बनाये रखने की दृष्टि से यह अच्छा होगा कि जब बरसीम खूब बढ़ जाय और उसमें फूल आने लगें तब उसे खेत मे ही जोतकर मिला दिया जाय।

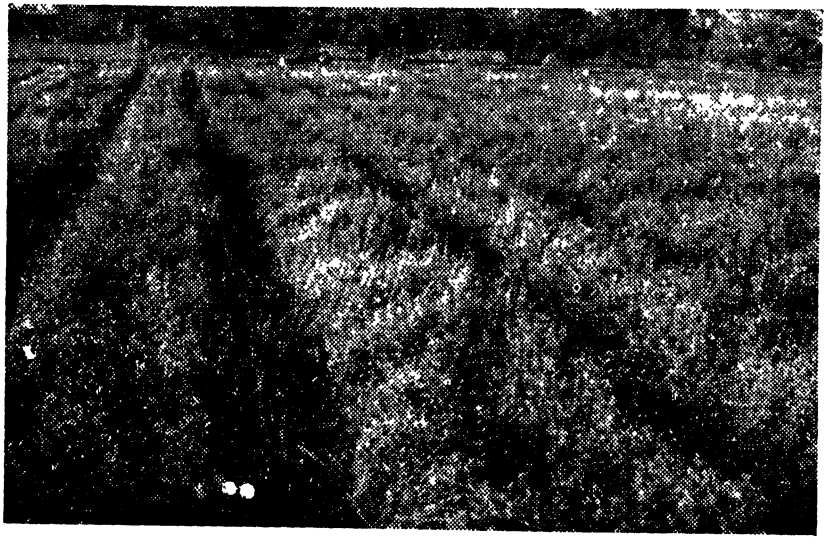

चित्र ४२—गेहूँ—बरसीम का खेत, गेहूँ कटने के बाद

उपर्युक्त ढंग को अपनाकर दूसरे प्रकार से किसान जो लाभ उठा सकते हैं, वह यह है कि फरवरी के दूसरे सप्ताह में गेहूँ के बीच-बीच की डेढ़ फुटवाली पट्टियों मे उगी बरसीम को दो-तीन गुड़ाई करके खेत में मिला दिया जाय और मिट्टी को भुरभुरी बनाकर उसमें गन्ना बो दिया जाय। जब तक गन्ना उगेगा तब तक गेहूँ तैयार हो जायगा। पूर्वी उत्तर प्रदेश में प्रायः किसान गेहूँ काटकर

गन्ना बोते हैं। परन्तु ऐसा करने से गन्ना पिछड़ जाता है और उसकी पैदावार अच्छी नही होती। परन्तु उपर्युक्त ढंग से यदि गन्ने की बोआई की जाय, तो सम्भव है कि एक ही खेत से गेहूँ और गन्ना दोनों लिये जा सकें। चूँकि गन्ना अपने समय पर बोया जाता है, उसकी पैदावार पूरी होती है। पिछले वर्ष लेखक को ९०० मन गन्ने की उपज प्रति एकड़ प्राप्त हुई थी। गेहूँ कटने के बाद गन्ने

चित्र ४३—गेहूँ बरसीम वाले खेत में उत्पन्न गन्ना

को सूर्य का प्रकाश पूरा-पूरा मिलता है, क्योंकि बरसीम तो नीचे ही फैली रहती है। गेहूँ कटने के बाद पूरे खेत की सिचाई कर देनी चाहिए और एक महीने बाद जब बरसीम में फूल निकल आये, उस समय बरसीम को गोड़कर खेत में मिला देना चाहिए।

उपर्युक्त सस्य-क्रम में सफलता प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है।

(१) यह ढंग केवल छोटे किसानों को ही, जिनके पास भूमि कम और श्रम करने की क्षमता अधिक है, अपनाना चाहिए, क्योंकि गहन खेती का यह ढंग बड़े पैमाने पर सफल होना कठिन है।

(२) इस विधि का प्रयोग केवल ऐसे खेतों में करना चाहिए जिनमें बरसीम की खेती पहले से सफलतापूर्वक की जा रही हो। जिन खेतों में बरसीम की खेती पहले न हुई हो, या जिनके विषय में यह संदेह हो कि उनमें बरसीम की फसल अच्छी नहीं होगी, उनमें इस ढंग का प्रयोग न किया जाय। ऐसे खेतों में पहले बरसीम को सफल बनाकर तब अगले वर्ष इस ढंग का प्रयोग करना चाहिए।

(३) बरसीम के उगने के लिए यह आवश्यक है कि खेत में नमी काफी हो, इसलिए पलेवा करके ही बरसीम बोयी जाय।

उपर्युक्त ढंग का परीक्षण अभी केवल पूर्वी उत्तर प्रदेश में किया गया है, सम्भव है कि भूमि और जलवायु भिन्न होने के कारण अन्यत्र यह सफल न हो। अतः किसानों को चाहिए कि छोटे पैमाने पर इस विधि का प्रयोग करके देखें और सफलता मिलने पर ही दूसरे वर्ष इसे बड़े पैमाने पर अपनायें।

(३) हरी खाद—आलू—गन्ना

यह फसलों का हेर-फेर उन किसानों के लिए सबसे ज्यादा लाभप्रद है जिनके निकट गन्ना मिल तथा आलू रखने के लिए शीत भंडार दोनों ही सुविधाएँ प्राप्त हों और जिनकी भूमि बलुई दोमट हो तथा जिनके पास सिंचाई का पूरा प्रबंध हो। किसान के पास जितनी इस प्रकार की भूमि हो, उसे दो बराबर हिस्सों में बाँट लेना चाहिए। एक में गन्ने की फसल खड़ी रहेगी और दूसरी में गन्ना बोने की तैयारी होगी। जिस प्रकार गन्ने की फसल लेने के लिए हरी खाद बोकर खेत की तैयारी की जाती है, उसी प्रकार सितंबर के अंत तक सभी क्रियाएँ करनी चाहिए। सितम्बर के अंतिम सप्ताह में २० गाड़ी प्रति एकड़ के हिसाब से गोबर की खाद मिलाकर खेत को आलू बोने के लिए तैयार कर लेना चाहिए। यदि आलू मध्य फरवरी तक खुद जाने की आशा हो, तो मामूली ढंग से, जैसे आलू बोया जाता है, अक्टूबर मास के प्रथम पखवाड़े में बो देना

चाहिए। आलू खुद जाने के बाद फरवरी के तृतीय सप्ताह में गन्ना बो देना चाहिए। परन्तु यदि आलू की किस्म पिछड़कर तैयार होनेवाली है या इसकी सम्भावना है कि १५ फरवरी तक आलू से खेत खाली न हो सकेगा, तब आलू इस प्रकार बोना चाहिए, जिससे आलू की फसल खेत में रहते हुए भी गन्ना अपने समय से बोया जा सके। इसके लिए आलू नीचे दिखाये गये ढंग से दोहरी कतारों में बोया जाना चाहिए।

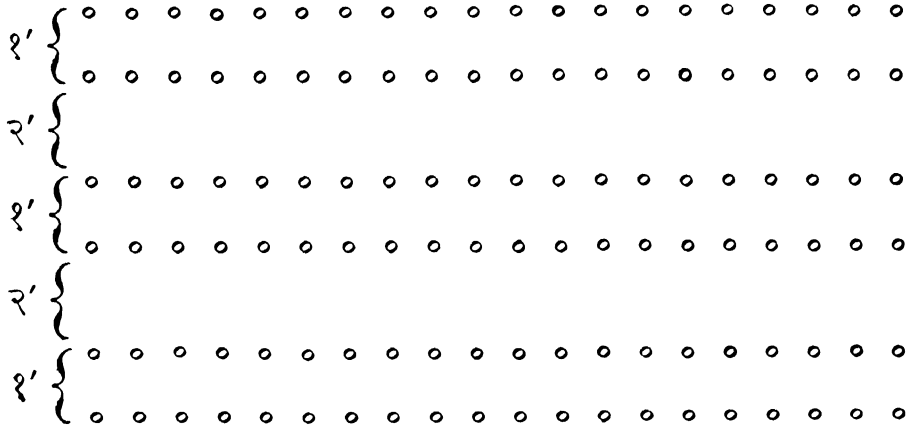

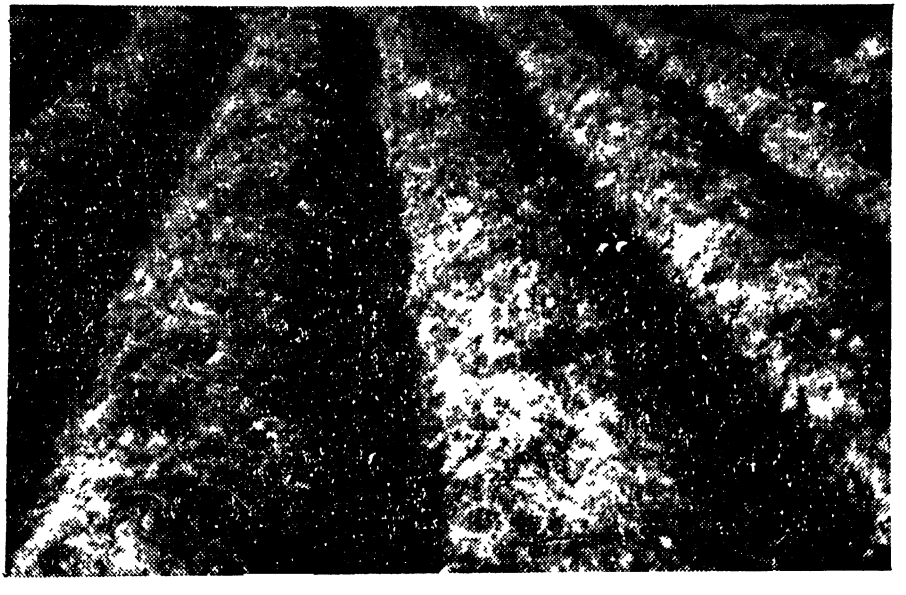

चित्र ४४—आलू की दुहरी पंक्तियाँ मिट्टी चढ़ाने के बाद

बोआई के बाद आलू की दोनों कतारों को एक में ही मिलाकर मिट्टी चढ़ा दी जाती है, मिट्टी चढ़ जाने के बाद खेत वैसा ही दीखने लगता है जैसा गन्ना बोने के लिए घोहे या नालियाँ बनाने से दिखाई देता है।

आलू की मेंड़ों के बीच में जो नालियाँ बन जाती हैं, उन्हीं में जनवरी मास के अन्त या फरवरी के प्रथम सप्ताह में कुदाली से गुड़ाई करके गन्ना बो दिया जाता है। जब तक गन्ना उगता है, तब तक आलू खुद जाता है। इस ढंग को अपनाने के कई लाभ है--(१) आलू खोदने की कोई जल्दी नहीं रहती, (२) गन्ना समय से बोया जाता है, (३) आलू की मेड़ें काफी मोटी और ऊँची होने के कारण उन पर सिंचाई के समय पानी चढ़ने का डर नहीं रहता। सिंचाई नालियों में की जाती है जिससे मेंड़ें तो तर रहती हैं, परन्तु पानी अधिक नहीं होने पाता। इसका पैदावार पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। लेखक ने इस ढंग का प्रयोग अपने फार्म पर करके देखा कि साधारण ढंग की तुलना में पैदावार कुछ अधिक ही होती है, कम नहीं।

इस सस्य-चक्र को प्रयोग मे लाकर किसान अपनी भूमि से लगभग १२५०) प्रति एकड़ प्रति वर्ष की आमदनी प्राप्त कर सकते हैं। २५० मन प्रति एकड़ आलू और उसके बाद १००० मन प्रति एकड़ गन्ना इस ढंग से प्राप्त करना कठिन नही। चूँकि आलू और गन्ना दोनों ही भूमि से काफी मात्रा में पोषक तत्त्व ले लेते हैं, इसलिए यदि सिंचाई का पूरा प्रबंध हो तो यह अच्छा होगा कि गन्ने की फसल कट जाने के बाद सिचाई द्वारा गर्मियों में भी हरी खाद की एक फसल ले ली जाय। वर्षा प्रारम्भ होने पर पहली हरी खाद की फसल जोतकर तुरन्त दूसरी हरी खाद की फसल बो दी जाय। दो हरी खाद की फसलें मिल जाने पर भूमि की उर्वरा शक्ति कम होने का डर नहीं रहेगा।

इस ढंग का प्रयोग करने में निम्नलिखित दो बातों का ध्यान रखना चाहिए।

(१) गन्ने की बोआई आलू की अन्तिम सिचाई के बाद कर देनी चाहिए। आलू तैयार हो जाने पर खेत की सिंचाई आलू के लिए हानिकर हो सकती है। गन्ने की बोआई के समय खेत में नमी पैदा करने के लिए सिचाई करने की आवश्यकता पड़ती है। यह क्रिया तब तक समाप्त हो जानी चाहिए जब तक आलू की सिंचाई से हानि न हो, अर्थात् जनवरी के अन्त तक।

(२) आलू की मेड़ें दोहरी होने के कारण मोटी होती हैं। यदि बीच की नालियों मे से पानी तेजी से नीचे उतर जायगा तो ऊपर के हिस्से में नमी की कमी पड़ सकती है। अतः जिस खेत में इस ढंग का प्रयोग करना हो उसकी सतह बोआई के पहले बराबर कर लेनी चाहिए।

(४) माइलो-चना-मूँग

फसलों का यह हेर-फेर उन किसानों के लिए अधिक लाभदायक है, जिनको अन्न की अधिक आवश्यकता होती है। इसका प्रयोग करके २५–३० मन माइलो, १५–२० मन चना और ५–७ मन मूँग अर्थात् कुल मिलाकर साल भर में लगभग ५० मन अन्न प्रति एकड़ प्राप्त किया जा सकता है। चना और मूँग दलहन की फसलें हैं, इनको पैदा करने के लिए खाद की भी अधिक आवश्यकता नहीं पड़ती, बोआई के समय कूँड़ों मे केवल सुपर-फास्फेट खाद देने की आवश्यकता होती है। दो दलहन की फसलों के बाद माइलो की भी फसल अच्छी उगती है। माइलो-चना-मूँग का क्रम ऐसा है कि खेत पूरे साल भर कभी खाली नही रहता। माइलो मध्य जुलाई मे बोयी जाती है और अक्टूबर के अंत तक कटती है। उसके बाद तुरन्त जुताई करके तथा माइलो की जड़ों को खेत से निकालकर चना, १०–१०" की दूरी पर लाइनों में बो देना चाहिए। बोते समय कूँड़ों में सुपरफास्फेट खाद देना लाभप्रद पाया गया है। लाइनों से बोआई करने पर उनके बीच-बीच गुड़ाई करने का अवसर मिलता है। गुड़ाई पाने से चना खूब फैलता है और पैदावार अधिक होती है। चना काटकर खेत को दो-तीन बार जोतकर तुरन्त ही मूँग नं० १ बो देनी चाहिए। गर्मियों में तीन चार सिंचाई करके ७–८ मन प्रति एकड़ मूँग के दाने प्राप्त किये जा सकते हैं। मूँग को भी लाइन से बोना चाहिए और उसमें भी सुपरफास्फेट खाद देनी चाहिए। लाइनों के बीच-बीच में गुड़ाई करते रहना चाहिए। मूँग की फसल बोने से ७–८ मन अन्न भी मिलता है। इसके अलावा, सिंचाई-गुड़ाई होते रहने के कारण और दलहन की फसल होने के कारण खेत की उपज-शक्ति भी बढ़ती है।

(५) मक्का-बरसीम या मेथा-पछेता आलू

यह एक ऐसा सस्यचक्र है, जिसका प्रयोग करके आलू जैसी कीमती फसल के साथ एक अन्न की फसल भी ली जा सकती है। दोनों फसलों के बीच बरसीम या मेथा की हरी खाद की फसल आ जाने के कारण खेत की ताकत भी बनी रहती है। संकर (Hybrid) मक्का बोकर ४०–५० मन प्रति एकड़ मक्का का दाना और फिर उसी खेत से २००–२५० मन आलू प्राप्त किया जा सकता है। मक्का कट जाने के बाद खेत तैयार करके अक्टूबर मास के प्रथम सप्ताह में बरसीम या मेथा बो दिया जाता है। १५–२० नवम्बर तक बरसीम पहली कटाई के लिए तैयार हो जायगी। पहली कटाई के तीन सप्ताह बाद अर्थात् दिसम्बर के प्रथम सप्ताह में जब बरसीम दुबारा काटने के योग्य हो जाय तब उसे खेत में जोतकर मिला देना चाहिए। जल्दी-जल्दी तीन-चार जुताई करके दिसम्बर के चौथे सप्ताह में पहाड़ी आलू बो देना चाहिए। मार्च के अंत तक यह आलू पककर तैयार हो जायगा।

(६) मूँग-गेहूँ-मूँग

गेहूँ को प्रायः लोग अच्छी आमदनी देनेवाली फसल नहीं मानते। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि पुराने ढंग से गेहूँ की खेती करने के लिए पलिहर या चौमस छोड़ना आवश्यक माना जाता था। इस प्रकार भूमि से पूरे साल भर में एक ही फसल मिलती थी। परन्तु अब यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि चौमस या पलिहर रखकर गेहूँ बोने की प्रथा अलाभकर है। गेहूँ की फसल लेने का सबसे अच्छा ढंग मूँग नं० १ के बाद गेहूँ बोने का है।

मूँग नं० १ की उपयोगिता का अनुमान लगाने के लिए उत्तर प्रदेश के कई सरकारी फार्मों पर कई वर्षों तक मूँग नं० १, सनई की खाद और चौमासे के बाद गेहूँ बोकर परीक्षण किया गया। जो नतीजे निकले उनका सारांश पृष्ठ संख्या १२५ की तालिका में दिया गया है।

उपर्युक्त परीक्षण से यह स्पष्ट हो गया है कि गेहूँ की फसल प्राप्त करने का सबसे लाभप्रद ढंग मूँग के बाद गेहूँ की फसल बोने का है।

कभी-कभी किसान यह शिकायत करते है कि मूँग नं० १ के बाद गेहूँ की फसल अच्छी नहीं लगी। इसका कारण यह नहीं है कि मूँग में कोई दोष है, बल्कि यह है कि मूँग की निकाई-गुड़ाई ठीक से नही की गयी और खेत में अधिक घासें उग जाने दी गयीं। ये घासें खेत में प्राप्त पोषक तत्त्वों को अपने प्रयोग मे ले आती है और आनेवाली गेहूँ की फसल को ठीक से पोषण न मिलने के कारण उसकी पैदावार कम होती है। यदि मूँग नं० १ की निकाई-गुड़ाई के लिए किसान के पास समय न हो तो उसे मूँग नहीं बोनी चाहिए। ऐसी दशा में सनई या ढेंचा की हरी खाद का प्रयोग करना ही लाभप्रद होगा। मूँग की सफलता के लिए यह भी आवश्यक है कि उसे ऐसे ही खेतों मे बोया जाय, जिनमें पानी न लगता हो। हरी खाद वाली फसल या मूँग की जुताई के बाद सितम्बर महीने मे, यदि वर्षा कम हो या न हो, तो हरी फसलें जोतने के बाद, खेत की सिचाई अवश्य कर देनी चाहिए।

यद्यपि गेहूँ की साधारण पैदावार के लिए मूँग की दो फसलें बोकर हरी खाद के लिए उसके डंठलों और पत्ती को खेत मे जोत देना ही काफ़ी है, परन्तु यदि ४०–४५ मन प्रति एकड़ पैदावार लेनी है, तब २०–२५ पौंड नाइट्रोजन प्रति एकड़ रासायनिक उर्वरक के रूप में देना चाहिए। इसके अलावा प्रति एकड़ २॥ मन सुपरफास्फेट और ५ मन राख भी खेत में डालनी चाहिए जिससे गेहूँ के पौधों को संतुलित भोजन मिले।

पुराने ढंग की खेती में गेहूँ बहुत घना बोया जाता था। ज्यादा घने होने पर गेहूँ के पौधे लम्बे बढ़ते है और थोड़ी भी खाद अधिक होने पर लेट कर गिर जाते है। परन्तु डिबलिग पद्धति या कूँड़ में कम बीज बोने से और लाइनों के बीच-बीच निकाई-गुडाई करने से गेहूँ के पौधों में कल्ले अधिक निकलते है और उनका बढ़ाव कुछ कम होता है। इसलिए उनमें अधिक खाद देकर अधिक पैदावार भी ली जा सकती है। गेहूँ की खेती पर यदि पूरा-पूरा ध्यान दिया जाय, तो ४०–४५ मन तक प्रति एकड़ पैदावार लेना असम्भव नहीं। इसके अलावा यदि मूँग नं० १ की दो फसलें, एक गर्मी मे और एक वर्षाऋतु में, ले ली जायँ, तो गेहूँ की खेती किसी अन्य खेती से कम लाभप्रद न रहेगी।

(५) मक्का-बरसीम या मेथा-पछेता आलू

यह एक ऐसा सस्यचक्र है, जिसका प्रयोग करके आलू जैसी कीमती फसल के साथ एक अन्न की फसल भी ली जा सकती है। दोनों फसलों के बीच बरसीम या मेथा की हरी खाद की फसल आ जाने के कारण खेत की ताकत भी बनी रहती है। संकर (Hybrid) मक्का बोकर ४०–५० मन प्रति एकड़ मक्का का दाना और फिर उसी खेत से २००–२५० मन आलू प्राप्त किया जा सकता है। मक्का कट जाने के बाद खेत तैयार करके अक्टूबर मास के प्रथम सप्ताह में बरसीम या मेथा बो दिया जाता है। १५–२० नवम्बर तक बरसीम पहली कटाई के लिए तैयार हो जायगी। पहली कटाई के तीन सप्ताह बाद अर्थात् दिसम्बर के प्रथम सप्ताह में जब बरसीम दुबारा काटने के योग्य हो जाय तब उसे खेत में जोतकर मिला देना चाहिए। जल्दी-जल्दी तीन-चार जुताई करके दिसम्बर के चौथे सप्ताह में पहाड़ी आलू बो देना चाहिए। मार्च के अंत तक यह आलू पककर तैयार हो जायगा।

(६) मूँग-गेहूँ-मूँग

गेहूँ को प्रायः लोग अच्छी आमदनी देनेवाली फसल नहीं मानते। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि पुराने ढंग से गेहूँ की खेती करने के लिए पलिहर या चौमस छोड़ना आवश्यक माना जाता था। इस प्रकार भूमि से पूरे साल भर में एक ही फसल मिलती थी। परन्तु अब यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि चौमस या पलिहर रखकर गेहूँ बोने की प्रथा अलाभकर है। गेहूँ की फसल लेने का सबसे अच्छा ढंग मूँग नं० १ के बाद गेहूँ बोने का है।

मूँग नं० १ की उपयोगिता का अनुमान लगाने के लिए उत्तर प्रदेश के कई सरकारी फार्मों पर कई वर्षों तक मूँग नं० १, सनई की खाद और चौमासे के बाद गेहूँ बोकर परीक्षण किया गया। जो नतीजे निकले उनका सारांश पृष्ठ संख्या १२५ की तालिका में दिया गया है।

उपर्युक्त परीक्षण से यह स्पष्ट हो गया है कि गेहूँ की फसल प्राप्त करने का सबसे लाभप्रद ढंग मूँग के बाद गेहूँ की फसल बोने का है।

कभी-कभी किसान यह शिकायत करते हैं कि मूँग नं० १ के बाद गेहूँ की फसल अच्छी नही लगी। इसका कारण यह नहीं है कि मूँग में कोई दोष है, बल्कि यह है कि मूँग की निकाई-गुड़ाई ठीक से नहीं की गयी और खेत में अधिक घासे उग जाने दी गयीं। ये घासें खेत में प्राप्त पोषक तत्त्वों को अपने प्रयोग मे ले आती है और आनेवाली गेहूँ की फसल को ठीक से पोषण न मिलने के कारण उसकी पैदावार कम होती है। यदि मूँग नं० १ की निकाई-गुड़ाई के लिए किसान के पास समय न हो तो उसे मूँग नहीं बोनी चाहिए। ऐसी दशा में सनई या ढेंचा की हरी खाद का प्रयोग करना ही लाभप्रद होगा। मूँग की सफलता के लिए यह भी आवश्यक है कि उसे ऐसे ही खेतों में बोया जाय, जिनमें पानी न लगता हो। हरी खाद वाली फसल या मूँग की जुताई के बाद सितम्बर महीने मे, यदि वर्षा कम हो या न हो, तो हरी फसलें जोतने के बाद, खेत की सिचाई अवश्य कर देनी चाहिए।

यद्यपि गेहूँ की साधारण पैदावार के लिए मूँग की दो फसलें बोकर हरी खाद के लिए उसके डंठलों और पत्ती को खेत में जोत देना ही काफ़ी है, परन्तु यदि ४०–४५ मन प्रति एकड़ पैदावार लेनी है, तब २०–२५ पौंड नाइट्रोजन प्रति एकड़ रासायनिक उर्वरक के रूप में देना चाहिए। इसके अलावा प्रति एकड़ २॥ मन सुपरफास्फेट और ५ मन राख भी खेत में डालनी चाहिए जिससे गेहूँ के पौधों को संतुलित भोजन मिले।

पुराने ढंग की खेती में गेहूँ बहुत घना बोया जाता था। ज्यादा घने होने पर गेहूँ के पौधे लम्बे बढ़ते है और थोड़ी भी खाद अधिक होने पर लेट कर गिर जाते है। परन्तु डिबलिग पद्धति या कूँड़ में कम बीज बोने से और लाइनों के बीच-बीच निकाई-गुडाई करने से गेहूँ के पौधों में कल्ले अधिक निकलते हैं और उनका बढ़ाव कुछ कम होता है। इसलिए उनमें अधिक खाद देकर अधिक पैदावार भी ली जा सकती है। गेहूँ की खेती पर यदि पूरा-पूरा ध्यान दिया जाय, तो ४०–४५ मन तक प्रति एकड़ पैदावार लेना असम्भव नहीं। इसके अलावा यदि मूँग नं० १ की दो फसलें, एक गर्मी में और एक वर्षाऋतु में, ले ली जायँ, तो गेहूँ की खेती किसी अन्य खेती से कम लाभप्रद न रहेगी।

(७) कुआरी धान–बरसीम–कुआरी धान–गेहूँ

कुआरी धान और गेहूँ दोनों ही फसलें एक ही खेत में साल भर के अंदर पैदा की जा सकती हैं। परन्तु चूँकि दोनों ही फसलें खेत को कमजोर बनाती हैं, यह क्रम कई वर्षों तक नहीं चल सकता। यदि खाद बाहर से मिलायी भी जाय, तो भी गेहूँ के साथ इतना खर-पतवार उपजने लगता है कि गेहूँ की पैदावार बहुत गिर जाती है। परन्तु खेत कमज़ोर होने तथा खर-पतवार उपजने की दोनों कठिनाइयों का मुकाबला हर तीसरे वर्ष खेत में बरसीम बोकर किया जा सकता है। यह अनुमान लगाया गया है कि बरसीम की एक फसल सफलतापूर्वक उगाने से खेत मे नाइट्रोजन की १०० से १२५ पौंड प्रति एकड़ वृद्धि हो जाती है और धान, गेहूँ दोनों की फसलों से जितना ह्रास होता है उसकी पूर्ति उससे हो सकती है। बीच-बीच में एक साल बरसीम आ जाने से यह भी लाभ है कि गेहूँ के साथ उपजनेवाले खर-पतवार का सिलसिला टूट जाता है और खेत साफ रहता है। जो रबी का खर-पतवार बरसीम के साथ उगता है, वह उसके साथ ही कट जाता हैं और उसका बीज तैयार नहीं होने पाता।

इस सस्य-चक्र में यदि थोड़ी बहुत खाद बाहर से दे दी जाय तो सम्भव है कि दो वर्षो में ६० मन कुआरी धान, २५ मन गेहूँ और ६०० मन बरसीम का हरा चारा प्राप्त किया जा सके। यदि बरसीम के हरे चारे को दूध देनेवाले जानवरों को खिलाकर दूध तैयार किया जाय, तो इस सस्य-चक्र से भी १०००) प्रति एकड़ प्रति वर्ष से कम आमदनी नहीं हो सकती।

(८) माइलो-हरा चारा-बरसीम

यह सस्य-चक्र उन किसानों के लिए उपयुक्त है जो पशुपालन का कार्य करते हैं और जिन्हें चारे की अधिक आवश्यकता रहती है। हमारे यहाँ खरीफ में चारे की मुख्य फसल चरी मानी जाती है, परन्तु इसमें दो अवगुण हैं—एक तो यह कि एक बार कट जाने के बाद वह पुनः नहीं बढ़ती और दूसरे, यदि काफ़ी बढ़ जाने दिया जाय तो वह जानवरों के लिए बहुत उपयोगी नहीं रह जाती। माइलो एक प्रकार की अमेरिकन चरी है। इसमें गुण यह है कि यह एक बार कटने पर पुनः बढ़कर लगभग उतना ही चारा दे देती है, जितना पहली कटाई

में मिलता है। यह बहुत ऊँची नहीं बढ़ती, परन्तु काफी खाद मिलने पर इसमें कल्ले बहुत निकलते हैं तथा इसके डंठल मोटे और सख्त नहीं होने पाते।

अप्रैल के अन्त में बरसीम की फसल समाप्त होने पर खेत की तीन चार जुताई करके नमी पैदा करने के लिए उसकी सिचाई कर देनी चाहिए। जब खेत जोतने योग्य हो जाय तब जल्दी-जल्दी उसकी दो जुताई करके माइलो का चारा लेने के लिए उसको डेढ़-डेढ़ फुट की दूरी पर लाइनों में घना बो देना चाहिए। अंतिम जुताई के पहले एक बोरा अमोनियम सल्फेट प्रति एकड़ के हिसाब से खेत में मिलाकर बोने से चारे की फसल बहुत ही अच्छी उगेगी। माइलो का बीज ८ से १० सेर प्रति एकड़ डालना चाहिए। लाइन में बोने से लाभ यह होगा कि गर्मी के दिनों में नमी बनाये रखने के लिए गुड़ाई करने में आसानी रहेगी।

१५ मई के लगभग बोया हुआ माइलो जुलाई के प्रथम सप्ताह में जानवरों को खिलाने के लिए तैयार हो जायगा। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि काफी वर्षा हो जाने के बाद ही इसे जानवरों को खिलाया जाय, क्योंकि चरी की भाँति इसके पौधों में भी वर्षा के पूर्व जहरीले तत्त्व होते हैं, अतः इसे जानवरों को खिलाना खतरनाक है। जुलाई के प्रथम सप्ताह की पहली कटाई में लगभग ३०० मन हरा चारा मिलेगा, और यदि इसकी एक गुड़ाई करके छोड़ दिया जाय तो ६–७ सप्ताह बाद दूसरी कटाई में भी लगभग उतना ही चारा मिलेगा। दूसरी कटाई के बाद खेत को जोत डालना चाहिए और माइलो की जड़ें खेत से निकालकर बरसीम बोने की तैयारी करनी चाहिए। बरसीम अक्टूबर के प्रथम या दूसरे सप्ताह में बो देनी चाहिए।

माइलो की दो कटाई और बरसीम की चार कटाई से लगभग १२०० मन हरा चारा प्रति एकड़ प्राप्त किया जा सकता है, जो चार जानवरों के लिए साल भर के लिए काफी होगा। यदि किसान इस प्रकार एक एकड़ चारा बोये और चार अच्छी नस्ल की गायें पाल ले, तो उसे दूध बेचने पर बड़ी अच्छी आमदनी हो सकती है। चार गायों में से कम-से-कम दो तो बराबर दूध देती ही रहेगी। यदि प्रति गाय ८–८ सेर दूध का उत्पादन हो तो १६ सेर प्रति दिन दूध मिलेगा। परन्तु इस १६ सेर दूध के लिए, जिसका मूल्य ८) होता है, गायों

को ६ सेर दाना देना पड़ेगा, जिसका मूल्य लगभग दो रुपया होता है। यदि एक रुपया रोज अन्य खर्चे के लिए निकाल दिया जाय, तो ८–३=५ रुपया प्रति दिन की शुद्ध आय हो सकती है, जिसका जोड़ साल भर में १८२५ रुपया होता है। अन्य किसी उपाय से इतनी अधिक शुद्ध आय प्रति एकड़ भूमि से प्राप्त करना कठिन है। परन्तु इसमें सफलता प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि दूध की बिक्री आसानी से हो जाया करे, और गायें जो पाली जायँ, वे अच्छी नस्ल की, दूध देनेवाली हों।

(९) मक्का-आलू-तम्बाकू

यह सस्य-चक्र फर्रुखाबाद में विशेष रूप से किसानों ने अपनाया है। इसके लिए बलुआ दोमट खेत, जिसमें पानी बिलकुल न रुकता हो, सबसे उपयुक्त सिद्ध हुआ है। वर्षा आरम्भ होते ही मक्का की फसल बो दी जाती है। यह फसल ढाई-तीन महीने के अंदर पककर कट जाती है। इसके उपरान्त खेत में खूब खाद डालकर और मिट्टी बारीक बना कर अक्टूबर मास में आलू बो दिया जाता है। आलू की फसल तैयार होने से एक महीना पहले ही देशी तम्बाकू की बेहन बो दी जाती है।

आलू के बाद देशी तम्बाकू की ही खेती सम्भव है। जैसे-जैसे आलू से खेत खाली होते जाते हैं, तम्बाकू की रोपाई होती रहती है। फरवरी से मार्च तक तम्बाकू के पौधों की रोपाई कर दी जाती है। तीन महीने बाद तम्बाकू की फसल भी तैयार हो जाती है। इस प्रकार से एक ही वर्ष में एक एकड़ भूमि से किसान २०–२५ मन मक्का, लगभग २०० मन आलू और १५–२० मन तम्बाकू पैदा कर लेते हैं। ऐसी गहन खेती के लिए खाद और पानी दोनों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग करना पड़ता है। किसान अपने कुओं से पानी देते हैं और खाद बहुत सी बाहर से खरीदकर डालते हैं। गोबर और मैले इत्यादि की खाद के अतिरिक्त रासायनिक उर्वरकों का भी बड़ी मात्रा में प्रयोग करना पड़ता है।

कभी-कभी शहरों के पास किसान मक्का व आलू के बजाय जल्दी तैयार होनेवाली गोभी की फसल बोते हैं। इसे कहीं-कहीं 'कतकी गोभी' और कहीं-

कहीं 'लकड़ा गोभी' कहते है। गोभी के बाद जाड़ोंवाली कलकतिया तम्बाकू बैठायी जाती है।

(१०) मूँग-लोबिया-आलू-कद्दू

यह सस्य-चक्र दोमट खेतों के लिए, जिनमें सिंचाई के पूरे साधन प्राप्त हों, परन्तु खेत में पानी न रुकता हो, काफी लाभदायक सिद्ध हुआ है। मूँग, लोबिया दोनों फलीदार होने के कारण खेत की उर्वरा शक्ति बनाये रखने में काफी सहायक होते हैं। मार्च के अंत में सिंचाई करके मूँग नं० १ की फसल पंक्तियों में बो दी जाती है। पंक्ति से पंक्ति का अंतर एक-एक फुट व दाने-से-दाने का अंतर ६" रखना चाहिए। इस फसल की पहली सिंचाई के बाद एक गुड़ाई कर देनी चाहिए। यह क्रिया बोने के बाद तीसरे सप्ताह में हो जानी चाहिए। गुड़ाई के बाद १५–१५ दिनों पर सिंचाई करते रहना चाहिए। मई के अंत तक मूँग की फसल तैयार हो जायगी। साधारण फसल से प्रति एकड़ ६ से ८ मन तक मूँग मिल जाती है।

वर्षा ऋतु का आरम्भ होते ही लोबिया नम्बर १ की फसल बो देनी चाहिए। इसकी पंक्तियों के बीच का अंतर दो फुट और दाने से दाने का अंतर एक फुट होना चाहिए। लोबिया की फसल भी ६० से ७० दिनों में पककर तैयार हो जाती है। १० से १२ मन प्रति एकड़ इसकी पैदावार होती है। यह ३० से ४० रुपये प्रति मन बिकती है।

लोबिया से खेत सितम्बर महीने में खाली हो जाता है। उसके बाद साधारण ढंग से खेत को तैयार करके उसमें आलू बो देना चाहिए। आलू की खड़ी फसल में जेठऊ कद्दू का बीज जरई करके नवम्बर के महीने में ही १०-१० फुट की दूरी पर बो दिया जाता है। यह कद्दू जाड़ों में छोटा ही रहता है, आलू को कोई हानि नहीं पहुँचाता। आलू जब फरवरी-मार्च में खुद जाता है तो कद्दू तेजी से बढ़कर पूरे खेत के ऊपर फैल जाता है। जेठ के महीने में लगभग ३०० मन प्रति एकड़ कद्दू तैयार हो जाता है। दूसरे वर्ष गर्मी में मूँग न लेकर बरसात में ही मूँग नं० १, या लोबिया नं० १ की फसलें लेकर आलू व कद्दू बोना चाहिए।

अध्याय १२

उत्तर प्रदेश का औसत किसान सुखी कैसे हो ?

हमारा देश छोटे-छोटे किसानों का देश है। उत्तर प्रदेश में ८६% कृषक ऐसे हैं, जिनकी जोत ६ एकड़ से कम है। देश के सामने आज सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि क्या छोटे-छोटे किसान वैज्ञानिक ढंग से खेती करके अपना जीवनस्तर ऊँचा उठा सकते हैं ? इस समय उत्तर प्रदेश के औसत ग्रामीण की आय १८०) प्रति वर्ष है। यदि औसत कृषक परिवार में ५ व्यक्ति मान लिये जायँ, तो उस परिवार की औसत सालाना आय ९००) होती है। उत्तर प्रदेश में औसत जोत का क्षेत्रफल ५.३ एकड़ है। क्या इस ५.३ एकड़ की खेती द्वारा कृषक-परिवार की औसत आमदनी में ऐसी वृद्धि सम्भव है, जिसे महत्त्वपूर्ण कहा जा सके ? यदि हम किसी भी उपाय से कृषकों की आय में वृद्धि कर सकें, तो निश्चय ही हमें शीघ्र-से-शीघ्र उसे अपनाना चाहिए।

भूमि से प्रति एकड़ कितनी आमदनी और उपज हो सकती है, इसकी कोई सीमा नहीं दिखाई देती। जहाँ अधिकांश किसानों को २००) प्रति एकड़ की भी आमदनी नहीं होती, वहाँ कुछ ऐसे किसान भी हैं, जिन्होंने फलों के उत्पादन द्वारा ४ से ५ हजार रुपया प्रति एकड़ तक की आमदनी कर दिखायी है। कृषि में आमदनी भूमि की स्थिति, कृषक की निपुणता, उसकी पूँजी लगा सकने की क्षमता तथा उसकी उपज की लाभप्रद बिक्री पर निर्भर करती है।

सबसे अधिक आय फल और तरकारियों की खेती से सम्भव है। परन्तु यह स्पष्ट है कि न तो सभी किसान अपने पूरे क्षेत्रफल पर फल और तरकारी की खेती कर ही सकते हैं, और यदि करें भी तो इतने अधिक फल और तरकारी की खपत न हो सकेगी। अतः हम छोटे किसानों के लिए जो भी कार्यक्रम बनायें, उसमें थोड़ी-बहुत फल और तरकारी की खेती को स्थान दिया जाय, परन्तु

पूरे क्षेत्रफल पर फल और तरकारी की खेती से आय का अनुमान लगाना व्यावहारिक न होगा।

छोटे पैमाने पर खेती का कार्यक्रम तैयार करने में दो बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए। प्रथम तो यह कि फसलों के हेर-फेर का क्रम ऐसा न हो कि जिससे कुछ ही वर्षों में भूमि की उत्पादन-शक्ति नष्ट हो जाय, और दूसरे यह कि किसान ऐसी वस्तुएँ पैदा करे, जिनकी उसे और उसके परिवार को सबसे अधिक आवश्यकता हो। अन्न के अतिरिक्त फल, दूध, मक्खन, तरकारी आदि पौष्टिक भोजन के आवश्यक अंग हैं, अतः किसान को इन्हें स्वयं पैदा करने का प्रयत्न करना चाहिए।

भूमि की उत्पादन-शक्ति और कृषक के लिए आवश्यक भोजन दोनों को ध्यान में रखते हुए, किस प्रकार से औसत कृषक की आय बढ़ायी जा सकती है, उसकी एक रूपरेखा यहाँ दी जा रही है। जैसा हम पहले भी कह चुके हैं, कृषक के साधनों में वृद्धि हुए बिना उत्पादन में वृद्धि सम्भव नहीं। यहाँ सर्वप्रथम उन साधनों का विवरण दिया जाता है, जिनके द्वारा औसत किसान अपनी पैदावार और आमदनी बढ़ा सकता है।

कुआँ	८००)
कुएँ में तीन इंच की बोरिंग	१०००)
एक रहट	४००)
बैल एक जोड़ी	८००)
गायें दो	६००)
मुर्गियाँ तथा मुर्गी पालन के लिए जाली इत्यादि	२००)
पशुशाला	४५०)
बैलगाड़ी	३००)
कीटनाशक दवाओं के छिड़कने की मशीन	२००)
खेती के अन्य सामान यानी	

हल, कुदाली, हगा इत्यादि १५०)
कुट्टी काटने की मशीन १००)

जोड़ ५०००) रुपया

उपर्युक्त साधन जिस किसान के पास होंगे, वह अपनी ५.३ एकड़ भूमि पर निम्नलिखित ढंग से यदि फसलें उपजाये, तो उसकी खेती गहन और संतुलित कही जा सकती है ।

(१) नया गन्ना	.८	एकड़ में
(२) पेड़ी गन्ना	.८	,,
(३) जायन्ट रशन लोबिया और गेहूँ	.८	,,
(४) जायन्ट रशन लोबिया और आलू या अन्य जाड़े की तरकारियाँ	.८	,,
(५) कुआरी धान या मक्का और बरसीम	.८	,,
(६) कुआरी धान या मक्का और गेहूँ	.८	,,
(७) फलवाटिका, मुर्गीघर, निवास और पशुशाला	.५	,,
जोड़	५.३	एकड़

जिन खेतों में गन्ना रहेगा उनकी फसलों का हेर-फेर निम्नलिखित होगा । गन्ना→गन्ने की पेड़ी→लोबिया का हरा चारा→गेहूँ→लोबिया का हरा चारा→आलू-गन्ना ।

जिन खेतों में धान, मक्का और गेहूँ रहेगा उनका हेर-फेर इस प्रकार रहेगा । धान या मक्का→बरसीम→धान या मक्का→गेहूँ→धान या मक्का ।

फसलों के उपर्युक्त हेर-फेर के फलस्वरूप साल भर में किसान के ४.८ एकड़ खेत में निम्नलिखित फसलें पैदा होंगी ।

फसल	क्षेत्रफल	उत्पादन प्रति एकड़	कुल उत्पादन	मूल्य	जानवरों के लिए चारा
गन्ना	१.६	९०० मन	१४४० मन	१८००)	—
गेहूँ	१.६	२५ मन	४० मन	८००)	६० मन भूसा
धान		२५ मन	२० मन	३००)	३० मन पयाल
आलू	.८	२०० मन	१६० मन	८००)	
रशन जायन्ट लोबिया का हरा चारा	१.६	३०० मन			४८० मन हरा चारा
बरसीम	.८	६०० मन			४८० मन हरा चारा

इनके अतिरिक्त गो-पालन, मुर्गी-पालन और फलों से भी किसान को आमदनी होगी।

गोपालन—दो गायों में से एक को बराबर दूध देना चाहिए। इस प्रकार कम से कम औसतन ५ सेर दूध प्रति दिन होना चाहिए। दो सेर दूध यदि पारिवारिक खर्च के लिए निकाल दिया जाय, तो तीन सेर दूध बेचने के लिए बच रहेगा। इस प्रकार डेढ़ रुपया प्रति दिन या ५५० रुपये प्रति वर्ष की आमदनी होगी।

यदि किसान ११ मुर्गियाँ और एक मुर्गा अच्छी नस्ल का पाले तो वह लगभग ६ अंडे प्रतिदिन पाने की आशा कर सकता है। यदि दो अंडे उसके परिवार के खर्च में आ जायँ, तो चार अंडे बेचने को बचेंगे, जिनका मूल्य ५० नये पैसे हुआ। इस प्रकार मुर्गी-पालन से साल भर में १८० रुपये की आमदनी होगी।

.५ एकड़ फल के बाग में साल भर में लगभग ५० मन फल होना चाहिए। पारिवारिक व्यय के लिए एक पाव प्रतिदिन प्रति व्यक्ति के हिसाब से ५ व्यक्तियों

के औसत परिवार के लिए ५½ × ३६५ सेर = लगभग १२ मन फल की आवश्यकता होगी। कुल उपज में से १२ मन घटाकर ३८ मन बिक्री के लिए शेष बचता है, जिसकी कीमत ५ रुपये प्रति मन के हिसाब से १९० रुपये होती है।

इस प्रकार किसान की कुल आमदनी निम्नलिखित होगी।

गन्ना	१८००)
गेहूँ	८००)
धान	३००)
आलू	८००)
दूध	५५०)
अंडा	१८०)
फल	१९०)
जोड़	४६२०) रुपया

खर्चे का अनुमान भी नीचे दिया जाता है--

खर्चे की मद	गन्ना	पेड़ी	गेहूँ-गन्ना सस्य चक्रम	गेहूँ धान गेहूँ सस्य चक्रम	धान	आलू	बरसीम
लोबिया की खेती			१५)			१५)	
जुताई-बोआई, केवल हल चलाने वाले की मजदूरी	५०)		३५)	३५)	३५)	५०)	५)
उर्वरक	१००)	१००)	४०)	४०)	४०)	१००)	२०)
बीज	७५)		१५)	१५)	५)	२००)	२०)
गुड़ाई, निकाई, मिट्टी चढ़ाई इत्यादि	७५)	१००)	१०)	१०)	२५)	२०)	
सिंचाई	५०)	५०)	२०)	२०)	२०)	५०)	५०)

खर्चे की मद	गन्ना	पेड़ी	गेहूँ-गन्ना सस्य चक्र में	गेहूँ-धान सस्य चक्र में	धान	आलू	बरसीम
फसल सुरक्षा	१५)	१५)			५)	१५)	
कटाई, बोआई, खुदाई इत्यादि			४०)	४०)	२०)	६०)	
कुल प्रति एकड़ व्यय	३६५)	२६५)	१७५)	१६०)	१५०)	५१०)	९५)
.८ एकड़ का व्यय	२९२)	२१२)	१४०)	१२८)	१२०)	४०८)	७६)

पशुपालन का व्यय——किसान के पास दो गाये और दो बैल होंगे, जो १० सेर प्रति जानवर के हिसाब से प्रति दिन १ मन सूखा चारा खायेंगे। अर्थात् साल भर में उसे ३६५ मन सूखे चारे की या इसी हिसाब से हरे चारे की आवश्यकता होगी। किसान के पास अपने गेहूँ का भूसा और धान का पयाल मिलाकर ९० मन सूखा चारा होगा। सूखे चारे के अतिरिक्त लोबिया और बरसीम मिलाकर ९६० मन हरा चारा होगा, जो ३०% के हिसाब से २८८ मन सूखे चारे के बराबर समझना चाहिए। इस प्रकार ९०+२८८=३७८ मन सूखा चारा किसान के खेत में पैदा होगा, जो उसकी आवश्यकता पूरी करने के लिए काफी है।

चारे के अलावा उसे दाने की भी आवश्यकता होगी। बैलों को प्रति बैल डेढ़ सेर, और दूध दे रही गाय के लिए दो सेर दाना प्रतिदिन के हिसाब से आवश्यक होगा। इस प्रकार उसकी दाने की आवश्यकता ५ सेर प्रतिदिन की होगी। साल भर में $\frac{५ \times ३६५}{४०} = ४५$ मन २५ सेर दाना लगेगा। इसका मूल्य लगभग ६०० रुपया होता है।

मुर्गी-पालन——एक मुर्गी साल भर में लगभग १ मन दाना खाती है। इस प्रकार साल भर में १२ मन दाने की आवश्यकता पड़ेगी, जिसका मूल्य लगभग १५६ रुपया होता है।

फल-उत्पादन——.५ एकड़ की वाटिका में खाद इत्यादि के लिए ५०) का व्यय होगा।

इस प्रकार कुल आनुमानिक उत्पादन-व्यय निम्नलिखित होगा--

गन्ना नया	२९२)
पेड़ी	२१२)
गेहूँ (गेहूँ-गन्ने के सस्य-चक्र में)	१४०)
गेहूँ (धान-गेहूँ के सस्य-चक्र मे)	१२८)
धान	१२०)
आलू	४०८)
बरसीम	७६)
पशुपालन	६००)
मुर्गी पालन	१५६)
फल उत्पादन	५०)
योग	२१८२)

इसके अतिरिक्त सूद और ह्रास भी जोड़ना चाहिए--

सूद ६%	५०००) की पूँजी पर	३००)
ह्रास--		
कुआँ और बोरिग पर	१८००) ,, ,, २%	३६)
पशुशाला	४५०) ,, ,, ५%	२२।।)
शेष	२७५०) ,, ,, १०%	२७५)
		३३३।।)

इस प्रकार कुल व्यय निम्नलिखित होगा--

उत्पादन व्यय	२१८२)
सूद	३००)
ह्रास	३३३।।)
कुल व्यय	२८१५।।)
कुल अनुमानित आय	४६२०)
कुल अनुमानित व्यय	२८१५।।)
कुल अनुमानित शुद्ध लाभ	१८०४।।)

इस प्रकार गहन खेती करनेवाले औसत जोत के किसान को फल, दूध, अंडा आदि के अतिरिक्त, जो उसके परिवार के व्यय में आयेगा, १८०४।।) का शुद्ध लाभ होगा, जो उसकी वर्तमान आय से लगभग दूना है। खाने-पीने के सुख के साथ-साथ, यदि औसत आमदनी दूनी हो जाय, तो उसे काफी महत्त्व-पूर्ण उन्नति समझना चाहिए।

उपर्युक्त कार्यक्रम में खेती करनेवाले किसान, उसकी भूमि तथा पशु-धन, सभी के उचित पोषण का ध्यान रखा गया है। भूमि की उर्वरा शक्ति का विशेष ध्यान रखा गया है। ४.८ एकड़ भूमि में से २.४ अर्थात् आधी भूमि के क्षेत्रफल में दलहन की फसल प्रति वर्ष बोयी जायगी। यदि जानवरों का मल-मूत्र सुरक्षित रखने की ओर पूरा ध्यान दिया जाय तो प्रति वर्ष लगभग ४० गाड़ी उम्दा खाद तैयार होगी, जिसमें अन्य पोषक तत्त्वों के अतिरिक्त १% के हिसाब से ४८० पौंड नाइट्रोजन होगा। इसके अलावा उत्पादन-व्यय में ४४० रुपये की व्यवस्था उर्वरकों को खरीदने के लिए की गयी है, जिससे लगभग ४८० पौंड नाइट्रोजन देनेवाले उर्वरक खरीदे जा सकते हैं। खाद और उर्वरक दोनों में मिलाकर ९६० पौंड नाइट्रोजन होता है, जो ४.८ एकड़ पर २०० पौंड प्रति एकड़ के हिसाब से बैठता है। यह इतनी खाद भूमि की उर्वरा शक्ति बनाये रखने के लिए काफी होगी।

परिशिष्ट–

विभिन्न क्षेत्रों के लिए धान की समर्थित किस्में

जिला	किस्में		
	अगेती या कुआरी	मध्यम या कतिकी	पछेता या अगहनी
	जून-सितम्बर	जून-अक्टूबर	जुलाई-दिसम्बर
१	२	३	४
पहाड़ी क्षेत्र—			
देहरादून	एन. २२, ए. ६४, चाइना १०	टी. ३, एन. १० बी. (महीन उम्दा चावल)	उपयुक्त नहीं है, क्योंकि पहाड़ी क्षेत्रों में सिंचाई की सुविधाएँ नहीं हैं और वहाँ का जलवायु भी पछेते धान के लिए अनुकूल नहीं है।
पौड़ी-गढ़वाल	,,	एन. १०बी (महीन उम्दा चावल)	
टीहरी-गढ़वाल	,,	,,	
अलमोड़ा	,,	,,	
नैनीताल	,,	,,	

१	२	३	४
तराई क्षेत्र—			
नैनीताल	एन. २२, चाइना १०, टी. १३६	टी. २१, एन. १०बी, टी. ४३, टी. ३,	टी. ३६, टी. १००, टी. ९
रामपुर	एन. २२, चाइना १०, टी. १३६,	टी. २१, एन. १०बी, टी. ४३, टी. ३	टी. ३६, टी. १००, टी. ९
पीलीभीत	,,	,,	,,
लखीमपुर-खीरी	,,	,,	,,
पश्चिमी क्षेत्र—			
सहारनपुर	टी. २२, चाइना १०, टी. १३६	टी. १, एन. १२, टी. ३	टी. ९, टी. १००
मुजफ्फरपुर	,,	,,	,,
मेरठ	,,	,,	,,
बुलंदशहर	,,	टी. १, टी. २१, चाइना ४	पछेता धान के लिए उपयुक्त नहीं है।
पश्चिमोत्तर क्षेत्र—			
बिजनौर	एन २२, टी. १३६, चाइना १०	टी. २१, टी. ४३, टी. ३ एन. १०बी	टी. ९, टी. ३६, टी. १००,

१	२	३	४
मुरादाबाद	,,	टी. २१, टी. ४३, टी. ३	टी. ९, टी. ३६, टी. १००, टी. २२ ए.
बदायूं	,,	,,	,,
बरेली	एन. २२, टी. १३६, चाइना १०	टी. ११, टी. ४३, टी. ३	टी. ९, टी. ३६, टी. १००, टी. २२ ए.
रामपुर	,,	,,	टी. ९, टी. ३६, टी. १००
पीलीभीत	.....	टी. ४३, टी. ३, एन. १० बी, टी २१	टी. ९, टी. ३६, टी. १००,
दक्षिण-पश्चिमी क्षेत्र—			
अलीगढ़	एन. २२, टी. १३६, चाइना १०	टी. १, टी. २१, चाइना ४	उपयुक्त नहीं है
मथुरा	,,	टी. १, टी. २१, चाइना ४, टी. ४३	,,
आगरा	,,	,,	,,
इटावा	,,	,,	टी. ९, टी. २२ ए., टी. ३६, टी. १००
मैनपुरी	,,	टी. २१, एन. १०बी., चाइना ४	,,
एटा	,,	,,	,,

१	२	३	४
बुंदेलखंड—			
झाँसी	ए. २२, चाइना १०	टी. ४३, टी. १	टी. १००, टी. ९, टी. २३, टी. ३६, टी. २२ ए.
जालौन	एन. २२, चाइना १०	टी. ४३, टी. १	टी. १००, टी. ९, टी. २३, टी. ३६, टी. २२ ए.
हमीरपुर	,,	,,	,,
बाँदा	,,	,,	,,
मध्यक्षेत्र—			
कानपुर	एन. २२, चाइना १०, टी. १३६	चाइना ४, टी. २१, टी. ३ एन. १०बी.	टी. ९, टी. ३६, टी. १००
फतेहपुर	,,	,,	,,
रायबरेली	,,	,,	,,
सुलतानपुर	एन. २२	टी. २१, टी. १,	उपयुक्त नही है
फैजाबाद	एन. २२, चाइना १०	टी. २१, टी. १,	टी. ९, टी. ३६, टी. १००
बाराबंकी	,,	टी. २१, चाइना ४, टी. ३, एन. १०बी.	,,
सीतापुर	,,	,,	,,

१	२	३	४
लखनऊ	,,	,,	,,
उन्नाव	,,	,,	,,
हरदोई	एन. २२, चाइना १०	चाइना ४, टी. २१	टी. ९, टी. ३६, टी. १००
शाहजहाँपुर	,,	,,	,,
फरुखाबाद	एन. २२, चाइना १०, टी. १३६	चाइना ४, टी. २१, एन. १० बी.	टी. ९, टी. ३६, टी. १००, टी. २२ए., टी. ३६
पूर्वोत्तर क्षेत्र—			
बहराइच	एन. २२, चाइना १०, टी. १३६	उपयुक्त नहीं है	टी. ९, टी. २२ए., टी. ३६, टी. १००
गोन्डा	एन. २२, चाइना १०, टी. १३६	,,	,,
बस्ती	,,	,,	,,
गोरखपुर	,,	,,	,,
देवरिया	,,	,,	,,
पूर्वी विंध्य क्षेत्र—			
इलाहाबाद	एन. २२, चाइना १०, टी. १३६	उपयुक्त नहीं है	टी. ९, टी. ३६, टी. २२ए., टी. १००
प्रतापगढ़, जौनपुर	,,	,,	,,

१	२	३	४
मिर्जापुर	एन. २२, चाइना १०, टी. १३६, ए. ६४	,,	टी. ९, टी. ३६, टी. २२ए., टी. १००, टी. ३६
वाराणसी	एन २२, चाइना १०, टी. १३६	उपयुक्त नहीं है	टी. ९, टी. ३६, टी. २२ए., टी. १००, टी. २६
गाँजीपुर	,,	चाइना ४	,,
आजमगढ़	,,	,,	,,
बलिया	,,	,,	,,

राज्य के विभिन्न जिलों के लिए उपयुक्त गेहूँ की समर्थित किस्में

जिला	सिंचित क्षेत्र	असिंचित क्षेत्र
अलमोड़ा	एन. पी ७७०, रिडले, पडोवा २	एन. पी ४, पडोवा २
टीहरी-गढ़वाल	,, ,,	,, ,,
पौड़ी-गढ़वाल	,, ,,	,, ,,
नैनीताल	,, ,,	,, ,,
नैनीताल तराई	एन. पी ७२०, एन. पी ७९८, एन. पी ७७५	एन. पी ७७५, एन. पी ७९८
देहरादून पहाड़ी	एन. पी ७७०, रिडले	एन. पी ७७०, रिडले
देहरादून तराई	एन. पी ७२०, पंजाब ५९१	एन. पी ७२०, पंजाब ५९१
बिजनौर	एन. पी ७२०, एन. पी ७७५, एन. पी १६५	एन. पी ७७५, कानपुर १३
बरेली	कानपुर १३, एन. पी ७२०, एन. पी १२५	,, ,,
रामपुर	एन. पी ७२०, पंजाब ५९१, एन. पी ७१०	कानपुर १३, पंजाब ५९१
पीलीभीत	पंजाब ५९१, एन. पी ७१०, एन. पी १२५	एन. पी १२५, पंजाब ५९१
खीरी	कानपुर ४९, एन. पी १२५, एन. पी ७२०	कानपुर १३, एन. पी १२५
बहराइच	एन. पी ७१०, एन. पी ५२, कानपुर १३	,, ,,
गोन्डा	कानपुर १३, एन. पी ७१०, एन. पी ७६०	,, एन. पी ५२
बस्ती	एन. पी ७२०, कानपुर १३, एन. पी ७१०	,, ,,

गोरखपुर	एन. पी ७५८, एन. पी ७७५, कानपुर १३	कानपुर १३, एन. पी ७७५
देवरिया	,, ,, ,,	,, ,,
सहारनपुर	एन. पी ७२०, एन. पी ७७५, पंजाब ५९१	एन. पी ७२०, एन. पी ७७५
मुजफ्फरनगर	एन. ७२०, पंजाब ५९१	एन. पी ७२०, पंजाब ५९१
मेरठ	पंजाब ५९१	पंजाब ५९१
मुरादाबाद	एन. पी १२५, कानपुर १३, एन. पी ७२०	एन. पी १२५, एन. पी ७७५
बुलंदशहर	पंजाब ५९१, एन. पी ७८१, एन. पी ७१०	पंजाब ५९१
अलीगढ़	एन. पी ७२०, पंजाब ५९१, एन. पी ७१०	कानपुर १३, पंजाब ५९१
बदायूँ	पंजाब ५९१, एन. पी ७२०, एन. पी ७१०	पंजाब ५९१, एन. पी १२५
एटा	एन. पी ७१०, कानपुर १३	एन. पी ७१०, कानपुर १३
मैनपुरी	एन. पी १२५, येन. पी ७७५, एन. पी ७१०	एन. पी १२५, एन. पी ७७५
फरुखाबाद	एन. पी ७१०, एन. पी ७२०	एन. पी ७१०, एन. पी ७२०
मथुरा	एन. पी १२५, पंजाब ५९१, एन. पी ७२०	एन. पी १२५, पंजाब ५९१
आगरा	पंजाब ५९१, एन. पी ७२०	पंजाब ५९१, एन. पी ७२०
जालौन	कानपुर ५३, कनपूर ५४, स्थानीय	कानपुर ५३, कानपुर ५४, स्थानीय
झाँसी	,, ,, ,,	,, ,, ,,
हमीरपुर	,, ,, ,,	,, ,, ,,
बाँदा	,, ,, ,,	,, ,, ,,

मिरजापुर	एन. पी ५२, कानपुर ५३, कानपुर १३	एन. पी ५२, कानपुर ५३
शाहजहाँपुर	एन. पी ७१०, एन. पी ७२०, कानपुर १३	कानपुर १३, एन. पी १२५
हरदोई	कानपुर १३, एन. पी ७१०, एन. पी ७२०	,, ,एन. पी ७१०
सीतापुर	एन. पी ७१०, एन. पी ७७५, कानपुर १३	पंजाब ५९१, कानपुर १३
लखनऊ	एन. पी ७१०, कानपुर १३	कानपुर १३, एन. पी १२५
बारावंकी	,, ,,	,, ,,
रायबरेली	कानपुर १३, एन. पी ५२, एन. पी १२५	कानपुर १३, एन. पी ५२
उन्नाव	एन. पी ७१०, कानपुर १३	कानपुर १३, एन. पी १२५
कानपुर	एन. पी ७१०, कानपुर १३	कानपुर १३, एन. पी १२५
इटावा	एन. पी ७२०, एन. पी ७१०, पंजाब ५९१	पंजाब ५९१, कानपुर १३
फतेहपुर	कानपुर १३, एन. पी ७१०	कानपुर १३, एन. पी १२५
इलाहाबाद	कानपुर १३, एन. पी ७१०	कानपुर १३, एन. पी १२५
प्रतापगढ़	कानपुर १३, एन. पी ७५८, एन. पी ७७५	कानपुर १३, एन. पी ५२
सुलतानपुर	एन. पी ७१०, कानपुर १३, एन. पी ५२	,, ,,
फैजाबाद	एन. पी ७६०, एन. पी ७७५, एन. पी ५२	कानपुर १३, एन. पी ५२
वाराणसी	एन. पी १२५, एन. पी ५२, कानपुर १३	,, ,,
जौनपुर	एन. पी ७१०, कानपुर १३, एन. पी ५२	,, ,,
गाजीपुर	कानपुर १३, एन. पी ५२, एन. पी ७१०	,, ,,

आजमगढ़	एन. पी ७७५, कानपुर १३, एन. पी ५२	,,	,,
बलिया	कानपुर १३, एन. पी ५२	,,	,,

जौ की उन्नतिशील किस्में

(१) कानपुर २५१–: अच्छी पैदावार देनेवाला, अच्छे दाने और शराब बनाने के लिए अच्छी किस्म का जौ, जो पूर्वी जिलों को छोड़कर, पूरे उत्तर प्रदेश में पैदा किया जा सकता है।

(२) एन. पी. २१–: अधिक पैदावार देनेवाला औसत किस्म का जौ, जो पूर्वी जिलों को छोड़कर पूरे उत्तर प्रदेश में पैदा किया जा सकता है।

(३) कानपुर १२–: अधिक पैदावार देनेवाला अच्छी किस्म का जौ, जो पूर्वी उत्तर प्रदेश में पैदा किया जा सकता है।

(४) कानपुर ५०–: बरेली-क्षेत्र के लिए अच्छी पैदावार देनेवाला अच्छी किस्म का जौ।

(५) कानपुर ८४–: मथुरा-क्षेत्र के लिए अच्छी पैदावार देनेवाला औसत किस्म का जौ।

(६) बलिया जौ–: बलिया-क्षेत्र के लिए अच्छी पैदावार देनेवाला अच्छी किस्म का जौ।

(७) सी. एन २९२–: अच्छी पैदावार देनेवाला बिना भूसी का औसत किस्म का जौ, जो पूरे उत्तर प्रदेश में पैदा किया जा सकता है।

(८) सी. एन २९४–: अच्छी पैदावार देनेवाला बिना भूसी का अच्छी किस्म का जौ, जो पूरे उत्तर प्रदेश मे पैदा किया जा सकता है।

चने की उन्नतिशील किस्में

टाइप १, बांदा चना	बुंदेलखंड-क्षेत्र में
टाइप ८७	पूरे उत्तर प्रदेश में

मटर की उन्नतिशील किस्म

टाइप १६३	पूरे उत्तर प्रदेश में

सरसों, लाही और राई की उन्नतिशील किस्में

पश्चिमी क्षेत्र में	पीली सरसों नं १५१
मध्य क्षेत्र में	पीली सरसों नं १५१, पीली सरसों नं १०, पीली सरसों नं १
पूर्वी क्षेत्र में	पीली सरसों नं १ , नं. १०
बुंदेलखंड और तराई को छोड़कर राज्य के सभी क्षेत्रों के लिए	राई ११
वाराणसी और गोरखपुर कमिश्नरी छोड़कर राज्य के सभी क्षेत्रों के लिए	लाही १०१

अलसी की उन्नतिशील किस्में

उत्तर प्रदेश के सभी क्षेत्रों के लिए	टाइप १, टाइप १२६ और स्थानीय किस्में

ज्वार और बाजरा

ज्वार	टाइप ८ बी (देर में पकनेवाली) पहाड़ी क्षेत्र, तराई, पश्चिमी, मध्य पश्चिमी, मध्य पूर्वी, उत्तर-पूर्वी और बिंध्य दक्षिणी, पश्चिमी।
	टाइप ५ लम्बे कद का (देर में पकनेवाली)
	पूर्वी क्षेत्र और बुंदेलखंड के लिए कोई किस्म उपयुक्त नहीं है।
बाजरा	बाजरे की कोई उन्नतिशील किस्म नहीं है।
अरहर	टाइप १ जल्द तैयार होनेवाली
	टाइप १७ और १०५ (देर में तैयार होनेवाली)
	टाइप १९
	टाइप १३२ (५ महीने में जल्द पककर तैयार होनेवाली)
मूंगफली	टाइप २५, टाइप ९९
कपास	३५।१, २१६ एफ, ३२० एफ, एच–१४, अलीगढ़ १९, कानपुर ५२०
जूट	जे. आर. सी ३२१ जल्द पकनेवाला–बाढ़ क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है।
	जे. आर. सी २१ मध्य कालीन किस्म उन क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है, जहाँ बाढ़ नहीं आती।
	डी. १५४ देर में पकनेवाला
	जे. आर. ओ ६२०, ६३२ और ७५३
तिल	टाइप १०, स्थानीय सफेद, काला और भूरा

रेड्डी	टाइप ३
भुट्टा	टाइप ४१, संकर जाति टाइप १९
साँवा	टाइप ४६, टाइप २५
कोदो	८/१ और २–बी/१
मड़ुवा	एन. १३७, एच. १०४
काकुन	टाइप ४
चेना	स्थानीय
मूंग	नं० १ और स्थानीय
उर्द	टाइप १२ देर में पकने वाला
	एन. एस. २१०
सोयाबीन	टाइप १०१ (देर में तैयार होनेवाला) टाइप ६३ (मध्य कालीन)
तम्बाकू	एन. पी ७० (खाने वाली) जी. ६ (बीड़ी)
	एस. पी एस.
	५३६०

उत्तर प्रदेश के विभिन्न जिले के लिए समर्थित गन्ने की किस्में

जिला	जल्द तैयार होनेवाली	मध्य कालीन और देर में तैयार होनेवाली किस्में
गोरखपुर और देवरिया	सीओ. एस ४१६, सीओ ३९५,	सीओ. एस १०९, सीओ. एस ५२४ सीओ. एस. ४४३
	सीओ. ८५९, बीओ १०	सीओ. एस ५१०, सीओ ६१७, वीओ. ३, बीओ १७
गोन्डा	सीओ. एस. ४१६, सीओ. ३१३	सीओ. १०९, सीओ. एस ४४३, सीओ. एस ५१०
बहराइच, बस्ती	सीओ. ३९५, सीओ ३५९ बीओ १०,	सीओ. एस ५२४, सीओ ६१७, बीओ ३, बीओ १७
फैजाबाद	सीओ. एस ४१६, सीओ ३१३	सीओ. एस १०९, सीओ. एस ४४३, सीओ. एम ५१०
जौनपुर	सीओ. ५२७, सीओ. ३५९,	सीओ. एस ५२४, सीओ ३९३, सीओ ६१७, वीओ ३, बीओ १७
बाराबंकी और लखनऊ	सीओ. एस ४१६, सीओ ३१३,	सीओ. एस ४४३, सीओ. एस ५१०, सीओ. ३९३,
	सीओ ५२७, सीओ. ३५९,	सीओ ८४६
हरदोई	सीओ ३१३, सीओ ५२७, सीओ. एस. ८५९	सीओ. एस ४४३, सीओ. एस ५१० सीओ ८४६
सीतापुर	सीओ ३१३, सीओ ५२७	सीओ. एस ४४३, सीओ. एस ५१०, सीओ ८४६
	सीओ ८५९, बीओ. १०,	वीओ १७
लखीमपुर	सीओ. ३१३, सीओ ५२७ सीओ. ८५९, बीओ १०	सीओ. एस ५१०, सीओ. ४४६, बीओ ३, बीओ १७

शाहजहाँपुर, पीलीभीत, मुरादाबाद	सीओ ५२७, सीओ ८५९,	सीओ. एस २४५, सीओ. एम ४४३, सीओ एस ५१०, सीओ. ८४६
बरेली	सीओ ५२७, सीओ ८५९,	सीओ. एस २४५, सीओ. एस ४४३, सीओ. एम ५१०, सीओ ८४६, बीओ १७
बिजनौर	सीओ ५२७, सीओ ८५९,	सीओ. एस २४५, सीओ. एस ४४३, सीओ. एस ५१०, बीओ १७
बदायूं और एटा	सीओ ५२७, सीओ ८५९,	सीओ. एम ४४३, सीओ. एस ५१०, सीओ ८४६
रामपुर	सीओ ५२७, सीओ ८५९,	सीओ. एस २४५, सीओ एस ५१०, सीओ ३९३, सीओ ८४६, बीओ. १७,
नैनीताल	सीओ ५२७, सीओ ८५९,	सीओ. एस २४५, सीओ. एम ४४३, सीओ. यस ५१०, सीओ ३९३, सीओ ८४६, बीओ. १७,
बुलंदशहर, मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर, देहरादून	सीओ. एस ३२१, सीओ. ५२७	सीओ. एम २४५, सीओ. एम ५१०, सीओ. एम ५१५, सीओ ४२१, सीओ ९५१, सीओ. ९७५।